स्वाध्याय स्वमन्थन स्वावलम्बन

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त विश्वविद्यालय

इलाहाबाद

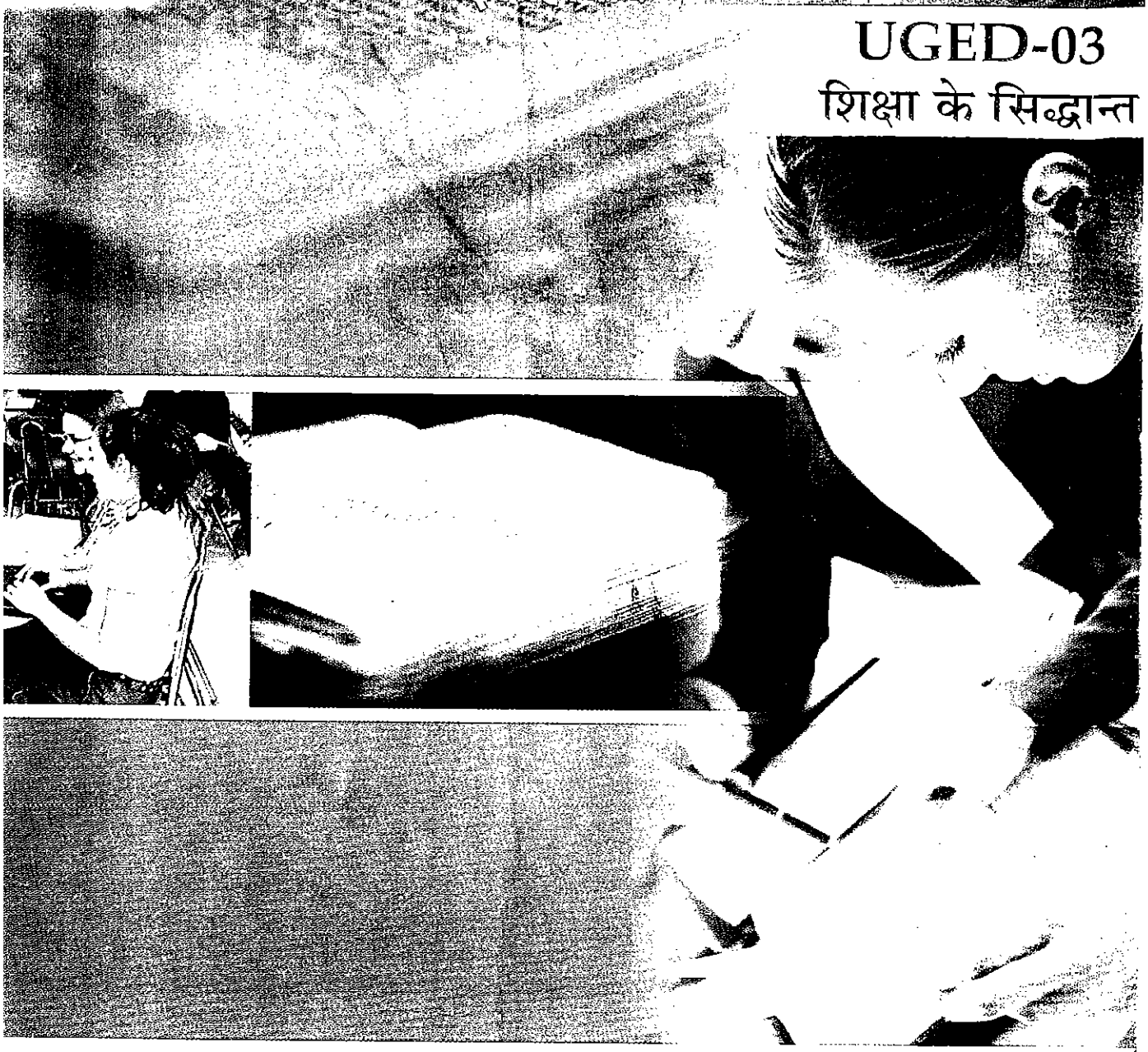

UGED-03

शिक्षा के सिद्धान्त

प्रथम खण्ड : शिक्षा के सिद्धान्त

विश्वविद्यालय परिसर
शान्तिपुरम (सेक्टर-एफ), फाफामऊ, इलाहाबाद -211013

खण्ड

1

शिक्षा के सिद्धान्त

इकाई- 1 5
शिक्षा की अवधारणा

इकाई- 2 27
शिक्षा के सामाजिक एवं वैयक्तिक उद्देश्य

इकाई- 3 44
शिक्षा के अन्य उद्देश्य

इकाई- 4 72
शिक्षा के अभिकरण या साधन

UGED-03 - शिक्षा के सिद्धान्त

खण्ड- 1 शिक्षा के सिद्धान्त

इकाई-1 शिक्षा की अवधारणा

इकाई-2 शिक्षा के सामाजिक एवं वैयक्तिक उद्देश्य

इकाई-3 शिक्षा के अन्य उद्देश्य

इकाई-4 शिक्षा के अभिकरण या साधन

खण्ड- 2 पाठ्यक्रम के अन्तर्गत विभिन्न सोपान

इकाई-5 पाठ्यक्रम का अर्थ, प्रकार एवं सिद्धान्त

इकाई-6 पाठ्यक्रम विकास की प्रक्रिया

इकाई-7 पाठ्यक्रम - विभिन्न विषयों का महत्व

इकाई-8 सहपाठ्यक्रमीय क्रियाकलाप

खण्ड- 3 जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में शिक्षा के मूल्य

इकाई-9 जनतन्त्र और शिक्षा

इकाई-10 समुदाय और शिक्षा

इकाई-11 समाजिक परिवर्तन और गतिशीलता

इकाई-12 समाजवाद और शिक्षा

खण्ड- 4 वैश्वीकरण और शिक्षा

इकाई-13 राज्य और शिक्षा

इकाई-14 राष्ट्रीयता के लिए शिक्षा

इकाई-15 अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध के लिए शिक्षा

इकाई-16 भावात्मक एकता के लिए शिक्षा

खण्ड परिचय-1 शिक्षा के सिद्धान्त

परिचय :

अपने स्वभाव से इस संसार में मानव प्राणी सुरक्षा सुस्थिति के लिए संघर्ष करता है और आगे बढ़ता है। सभी प्राणियों को जन्म लेने के लिए बाद से ही तथा जन्म-जन्मान्तर अपनी परिस्थिति के अनुकूल कर्म करना पड़ता है। इस प्रकार के कार्य के लिए मानव प्राणी को 'सीखना' भी पड़ता है अथवा शिक्षा लेनी पड़ती है। जिसके फलस्वरूप उसे ज्ञान-अनुभव मिलता है उसे वह संचित करता अपने आप के लिए तथा अपने आगे आने वाली संतानों के लिए तथा समूहों के लिए जिनके साथ वह रहता है। यह विशेषता मनुष्य के साथ खासकर पायी जाती है। अतः मनुष्य के लिए शिक्षा जरुरी होती ऐसा विचार शिक्षार्थियों का है।

इकाई-1: शिक्षा सम्प्रत्य में हमने शिक्षा का स्वरूप, शिक्षा का व्यापक एवं संकुचित अर्थ शिक्षा सूचनाएँ, शिक्षा और अध्यापन, शिक्षा और अध्यापन, शिक्षा और उपाधियाँ, शिक्षा और प्रशिक्षण, शिक्षा की प्रक्रिया तथा अन्त में हमने शिक्षा के अन्य प्रकारों का वर्णन विस्तृत रूप से किया। अतः छात्र उपरोक्त सम्प्रत्य को समझ सकेंगे।

इकाई-2 : में शिक्षा के सामाजिक एवं वैयक्तिक उद्देश्यों के अन्तर्गत शिक्षा के उद्देश्यों के निर्धारण की आवश्यकता, शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण, समाज, व्यक्तित्व और शिक्षा, शिक्षा का सामाजिक एवं वैयक्तिक उद्देश्यों को रखा गया है। जिसमें बालकों के वैयक्तिक तथा सामाजिक व्यक्तित्व में विकास हो सकेगा। अतः छात्र उपरोक्त सम्प्रत्य को समझ सकेंगे।

इकाई-3 : शिक्षा के अन्य उद्देश्य में शिक्षा देने के कुछ महत्वपूर्ण उद्देश्यों की चर्चा की गयी है तथा सभी प्रकार के उद्देश्यों को मनुष्य के विकास के लिए पूर्ण रूप में आवश्यक स्वीकार किया गया है। अतः उपरोक्त सम्प्रत्य को समझ सकेंगे।

इकाई-4 : प्रस्तुत अभिकरणों के वर्गीकरण के द्वारा इनकी आवश्यकता महत्व एवं कार्यों को प्रतिपादित किया गया है। जिनको जानकर शिक्षा में इनकी भूमिका को समझा जा सकता है। परिवार जो कि शिक्षा का एक अनौपचारिक अभिकरण है, बच्चे की प्राथमिक पाठशाला भी कहा जाता है और जहाँ पर संस्कार दिया जाता है। विद्यालय जो कि शिक्षा का एक अनौपचारिक अभिकरण है वह परिवार में संस्कारित बच्चे के सर्वांगीण विकास का प्रयास करता है। इकाई के अन्त में राज्य विद्यालय और समाज के आपसी महत्व की चर्चा की गई है। अतः छात्र उपरोक्त सम्प्रत्य को समझ सकेंगें।

इकाई – 1 शिक्षा की अवधारणा के उद्देश्य

शिक्षा का सम्प्रत्यय

1.1 प्रस्तावना

1.2 उद्देश्य

1.3 शिक्षा क्या है

1.4 शिक्षा का स्वरूप

1.5 शिक्षा शब्द की व्युत्पत्ति

1.6 शिक्षा का अर्थ

.7 शिक्षा और सूचनाएं

.8 शिक्षा का व्यापक एवं संकुचित अर्थ

1.8.1 शिक्षा का व्यापक अर्थ

1.8.2 शिक्षा का संकुचित अर्थ

.9 शिक्षा का त्रिध्रुवीय पक्ष

.10 शिक्षा और अध्यापन

.11 शिक्षा की उपाधियाँ

.12 शिक्षा, शिक्षण और सीखना

1.12.1 शिक्षा का सम्प्रत्यय

1.12.2 शिक्षण का सम्प्रत्यय

1.12.3 सीखने का सम्प्रत्यय

1.12.4 शिक्षा, शिक्षण और सीखने में अन्तर

.13 शिक्षा, अनुदेशन और प्रशिक्षण

1.13.1 अनुदेशन का सम्प्रत्यय

1.13.2 प्रशिक्षण का सम्प्रत्यय

1.13.3 शिक्षा अनुदेशन और प्रशिक्षण में अन्तर

14 शिक्षा के रूप

1.14.1 औपचारिक शिक्षा

1.14.2 निरौपचारिक शिक्षा

1.14.3 अनौपचारिक शिक्षा

1.14.4 औपचारिक, निरौपचारिक और अनौपचारिक शिक्षा का सापेक्षिक महत्व

1.14.5 विशेष

1.15 सारांश

1.16 अभ्यास प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

अपने स्वभाव से इस संसार में मानव प्राणी अपनी सुरक्षा सुस्थिति के लिये संघर्ष करता है और आगे बढ़ता है। सभी प्राणियों को जन्म लेने के बाद से ही तथा जन्म–जन्मान्तर अपनी परिस्थिति के अनुकूल कर्म करना पड़ता है। इस प्रकार के कार्य के लिये मानव प्राणी को 'सीखना' भी पड़ता है अथवा शिक्षा लेनी पड़ती है। जिसके फलस्वरूप उसे ज्ञान–अनुभव मिलता है उसे वह संचित करता अपने आप के लिए तथा अपने आगे आने वाली संतानों के लिए तथा समूहों के लिये जिनके साथ वह रहता है। यह विशेषता मनुष्य के साथ खासकर पायी जाती है। अतः मनुष्य के लिये शिक्षा जरूरी होती है ऐसा विचार शिक्षाशास्त्रियों का है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो जायेंगे कि:–

- शिक्षा के स्वरूप को बता सकेंगे।
- शिक्षा के व्यापक अर्थ को बता सकेंगे।
- शिक्षा के विशेष स्वरूप के बारे में जान सकेंगे।
- शिक्षा प्रक्रिया के बारे में बता सकेंगे।

1.3 शिक्षा का अर्थ

शिक्षा एक प्रक्रिया है। यह कोई ऐसी वस्तु नहीं जो बाहर से दी जा सके। अधिकतर मनुष्य शिक्षा का अर्थ किसी विद्यालय में अध्ययन करना समझते हैं और शिक्षित व्यक्ति से उनका तात्पर्य एक ऐसे व्यक्ति से होता है

जिसने विद्यालय में भिन्न–भिन्न विषयों का अध्ययन किया हो। परन्तु यह उनकी मूल है। मनुष्य अनेक विषयों के अध्ययन करने के पश्चात भी अशिक्षित अथवा मूर्ख हो सकता है। क्योंकि शिक्षा ग्रहण करना एक बात है और अध्ययन करना दूसरी बात है। शिक्षा की परिधि केवल शिक्षालय तथा तक सीमित नहीं, शिक्षा का क्षेत्र तो अत्यन्त विस्तृत है। शिक्षा केवल बौद्धिक विकास ही नहीं करती, वरन् मनुष्य की समस्त शक्तियों का भी विकास करती है।

इस प्रकार शिक्षा उस विकास का नाम है जो बाल्यावस्था से जीवन के अन्तिम क्षण तक होता है। इसी विकास के बल पर मनुष्य अपने व्यवहार तथा विचारों में परिवर्तन करता है और जीवन में आने वाली विभिन्न समस्याओं को समझता है। शिक्षा के उपयुक्त अर्थ के अनुसार संसार के सभी व्यक्ति विद्यार्थी हैं। मनुष्य स्वयं भी सीखता है और दूसरों को भी सिखाता है।

1.4 शिक्षा का स्वरूप

शिक्षा एक ऐसी प्रक्रिया है जो व्यक्ति के जन्मजात शक्तियों को विकसित करती है। मानव को पूर्ण रूप से मानव बनाती है। उसे अपने वातावरण से सामन्जस्य स्थापित करने में सहायता प्रदान करती है। शिक्षा व्यक्ति को पूर्ण रूप से विकसित करती है और व्यक्ति को अपने जीवन और नागरिकता के कर्तव्यों का दायित्व को पूर्ण करने के लिये तैयार करती है जिससे की व्यक्ति अपने देश तथा अपने समाज का विकास कर सके।

शिक्षा का अर्थ केवल वही नहीं होता है जो विद्यालय में मिलती है। बल्कि शिक्षा का कार्यक्रम तो जीवन पर्यन्त चलता रहता है। मनुष्य अपने अनुभवों द्वारा जीवन भर कुछ न कुछ सीखता रहता है।

प्राचीन समय की अपेक्षा शिक्षा का अर्थ बालक के मस्तिश्क में ज्ञान को भरना था। लेकिन अब ऐसा नहीं, आज शिक्षा का अर्थ बालक की जन्मजात षक्तियों को पूर्ण रूप से विकास करने से लगाया जाता है। द्विमुखी प्रक्रिया शिक्षा को इसलिये कहा है क्योंकि इसमें शिक्षक और शिक्षार्थी दोनों सक्रिय रहकर भाग लेते हैं। शिक्षा और समाज को साथ–साथ चलना आवश्यक है क्योंकि जब–जब समाज में परिवर्तन होता है तब–तब शिक्षा में भी परिवर्तन होता है।

एडम्स महोदय के अनुसारः– शिक्षा द्विध्रुवीय प्रक्रिया है जिसमें एक

ध्रुव पर सीखने वाला अर्थात शिक्षार्थी रहता है तथा दूसरे ध्रुव पर सिखाने वाला अर्थात शिक्षकहोता है।

1.5 शिक्षा शब्द की व्युत्पत्ति

शिक्षा को अंग्रेजी में एजूकेशन (Education) कहते हैं। एजूकेशन शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के एजूकेटम (Educatum) शब्द से हुई, जिसका अर्थ है शिक्षण कार्य करना। E+Duco जिसमें 'E' का अर्थ है 'अन्दर से' और Duco का अर्थ है 'आगे बढ़ाना' अतएव इसका अर्थ हुआ अन्दर से बाहर निकालना (From in side out) न कि ज्ञान को अन्दर ढकेलना। लैटिन भाषा के दो शब्द 'एजूसीयर' (Educere) और 'एजूकेयर' (Educare) भी शिक्षा के इसी अर्थ की ओर संकेत करते हैं। एजूसीयर का अर्थ पथ प्रदर्शन करना है और एजूकेयर का अर्थ है शिक्षित करना अर्थात विकसित करना या बाहर निकालना। इसी प्रकार शिक्षा का अर्थ बाहर की तरफ खोलना है।

1.6 शिक्षा का अर्थ

शिक्षा के द्वारा ही संसार की आर्थिक, वैज्ञानिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक, राजनीतिक, आध्यात्मिक तथा मनोवैज्ञानिक उन्नति होती है। शिक्षा के वास्तविक तथा व्यापक अर्थ में प्रत्येक शिक्षार्थी और शिक्षक हैं। राज्य अपने प्रचार एवं अपनी संस्थाओं द्वारा हमें शिक्षित करना है। और हमें धार्मिक आयोजनों में भाग लेकर भी कुछ न कुछ अवश्य सीखते हैं। यात्रा के समय भी हमारी शिक्षा चलती रहती है। शिक्षा शब्द से यह पता चलता है कि यह प्रक्रिया अपने आप में व्यापक है।

1.7 शिक्षा और सूचनाएँ

शिक्षा का हम व्यापक अर्थ लें या सीमित अर्थ लें, दोनों स्थिति शिक्षा की सूचनाएं एकत्र करती हैं। हम कभी–कभी ज्ञान के नाम पर बहुत सी अनर्गल बातें सीखते हैं और इन निरर्थक बातों को अपने छात्रों को भी देने में उतावले दिखते हैं। हमारे घर के पड़ोस में बजरंग बली का घर है। यह जानकारी प्राप्त करना केवल सूचना प्राप्त करना है। इसी प्रकार हमारे देश के पड़ोस में पाकिस्तान है, यह जानकारी केवल सूचना है। भूगोल के नाम पर हम अनेक प्रकार की सूचनाएं ही तो देते रहते हैं। मेरे पिताजी पंडित बद्री

प्रसाद के पुत्र हैं और उनका जन्म उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम दशक में हुआ, यह भी सूचना प्राप्त करना ही है। किन्तु इसी प्रकार की सूचना यह भी तो है कि अशोक बिन्दुसार का पुत्र था और वह ईसवी पूर्व में पैदा हुआ था। इतिहास के नाम पर हम अनेकानेक सूचनायें ही तो प्राप्त करते रहते हैं। शायद बालक के लिये पड़ोसी देश की सूचना एवं बिन्दुसार की सूचना इतनी रूचिकर नहीं होगी जितना हम समझते हैं। हम भ्रमवश यह समझ बैठते हैं कि सूचना प्राप्त कर लेना ही शिक्षा है। वस्तुतः सूचनाए शिक्षा के मार्ग में केवल सहायक का कार्य कर सकती हैं। वे शिक्षा का स्थान कभी ग्रहण नहीं कर सकतीं। यह कहना भ्रमात्मक है कि मैने इतिहास में शिक्षा प्राप्त की है। शिक्षा इतिहास से बहुत बड़ी चीज है।

.8 शिक्षा का व्यापक एवं संकुचित अर्थ–

हम जानते हैं कि किसी समाज में किसी बच्चे की शिक्षा उसके रिवार, छोटे–बड़े विभिन्न सामाजिक समूहों, सामुदायिक केन्द्रों और विभिन्न कार के विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में चलती हैं, परन्तु कुछ लोग केवल विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में चलने वाली शिक्षा को ही शिक्षा कहते हैं। इस प्रकार शिक्षा शब्द का प्रयोग दो रूपों में ाता है– एक व्यापक रूप में तथा दूसरा संकुचित रूप में।

.8.1 शिक्षा का व्यापक अर्थ

हम जानते हैं कि प्रत्येक प्राणी अपनी जाति में जन्म लेता है और सके बीच रहकर अपनी जाति के प्राणियों की तरह चलना–फिरना, खाना–पीना, नना–बोलना और अनके प्रकार की अन्य क्रियायें सीखता है। मनुष्य जब ा होता है तो बहुत ही असहाय अवस्था में होता है। परन्तु जन्म के कुछ न बाद ही वह अपनी जाति के प्राणियों का अनुकरण कर चलना–फिरना, ाना–पीना और सुनना–बोलना सीखने लगता है और धीरे–धीरे अनेक ार की अन्य क्रियाएँ करना सीखता है। वह सबसे पहला पाठ अपनी माँ की द में पढ़ता है, फिर अपने घरेलू पर्यावरण में सीखता है और उसके बाद सके भी सम्पर्क में आता है उसी से कुछ न कुछ सीखता है। सभ्य समाज ाने बच्चों की जन्मजात शक्तियों के उचित विकास करने और उनके व्यवहार ांछित परिवर्तन करने के लिये विद्यालयों की व्यवस्था करते हैं। परन्तु बच्चे ालयों के अन्य स्थानों पर भी कुछ न कुछ सीखते रहते हैं और सच्च बात

तो ये है कि विद्यालय छोड़ने के बाद भी सीखने–सिखाने की प्रक्रिया चलती रहती है और जीवन पर्यन्त चलती रहती है। व्यापक अर्थ में जीवन पर्यन्त चलने वाली सीखने–सिखाने की प्रक्रिया ही शिक्षा है। इस शिक्षा के उद्देश्य पाठ्यचर्या और शिक्षण विधियाँ सभी बहुत व्यापक होते हैं उन्हें सीमा में नहीं बाधा जा सकता, पर होते सब विकासोन्मुख ही हैं। अनके विद्वानों ने शिक्षा के इस रूप को परिभाषा में बाधने का प्रयास किया है। उनमें से जे.एस. मैकेन्जी का प्रयास सराहनीय है। उनके शब्दों में –

"व्यापक दृष्टि से शिक्षा जीवनोपर्यन्त चलने वाली प्रक्रिया है और जीवन के प्रत्येक अनुभव के द्वारा इसका विकास होता है।"

अधिकतर विद्वान व्यापक अर्थ में इस शिक्षा की परिभाषा से सहमत हैं, परन्तु इस परिभाषा से न तो शिक्षा प्रक्रिया के स्पष्ट स्वरूप का ज्ञान होता है और न उसके परिणाम का। हमारी दृष्टि से व्यापक अर्थ में शिक्षा को निम्नलिखित रूप में परिभाषित करना चाहिए–

"व्यापक अर्थ में शिक्षा किसी समाज में सदैव चलने वाली वह सोद्देष्य सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कला–कौशल में वृद्धि एवं व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है। इसके द्वारा व्यक्ति एवं समाज दोनों विकास करते हैं।"

1.8.2 शिक्षा का संकुचित अर्थ

सामान्यतः लोग विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में चलने वाली शिक्षा को ही शिक्षा कहते हैं। यह शिक्षा का संकुचित अर्थ है। हम जानते हैं कि प्रत्येक समाज की अपनी जीवन शैली होती है और अपनी आकाँक्षाए होती हैं और समाज के पौढ़ सदस्य अपने आने वाली पीढ़ी को इस जीवन शैली में प्रशिक्षित करना और अपनी आकांक्षाओं की पूर्ति के लिये शिक्षा की व्यवस्था करते हैं। इस शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यचर्या और शिक्षण विधियाँ सभी निश्चित होते हैं। यह शिक्षा बच्चे की एक निश्चित आयु से प्रारम्भ होती है और एक निश्चित काल तक चलती है। यह शिक्षा निश्चित स्थानों (विद्यालयों) के बीच चलती है। आज इस शिक्षा व्यवस्था समाज अथवा राज्य द्वारा की जाती है। तब शिक्षा का समाज अथवा राज्यों की प्राप्ति का साधन होना स्वाभाविक है। किसी राष्ट्र की उन्नति विशेष रूप से इसी शिक्षा पर निर्भर करती है। इस अर्थ में विद्यालय में प्रवेश लेने से पहले और विद्यालय छोड़ने के बाद शिक्षा की प्रक्रिया नहीं चलती। अनेक विद्वानों ने

शिक्षा के इस रूप को परिभाषा में बाधने का प्रयत्न किया है। उनमें से जे.एम. मैकेन्जी का प्रयास सराहनीय है। उनके शब्दों में:–

"संकुचित दृष्टि से शिक्षा का अर्थ अपनी शक्तियों के विकास और सुधार के लिये किये गये किन्हीं भी चेतनापूर्ण प्रयासों से लिया जा सकता है।"

अधिकतर विद्वान संकुचित अर्थ की इस परिभाषा से सहमत हैं परन्तु इससे न तो शिक्षा प्रक्रिया के स्पष्ट स्वरूप का ज्ञाना होता है औन न उसके परिणाम का। हमारी दृष्टि से संकुचित अर्थ में शिक्षा को निम्नलिखित रूप में परिभाषित करना चाहिए।

"संकुचित अर्थ में शिक्षा किसी समाज में एक निश्चित समय तथा निश्चित स्थानों (विद्यालयों) में सुनियोजित ढंग से चलने वाली वह सोद्देष्य सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कला कौशल में वृद्धि एवं व्यवहार परिवर्तन किया जाता है और इस प्रकार से सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है। इसके द्वारा व्यक्ति एवं समाज दोनों निरन्तर विकास करते हैं।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

प्रश्न 1:– शिक्षा के स्वरूप से क्या अभिप्राय है?

.....

.....

प्रश्न 2:– शिक्षा के संकुचित अर्थ को बताइये।

.....

.....

प्रश्न 3:– शिक्षा के विस्तृत अर्थ को बताइये।

.....

.....

9 शिक्षा का त्रिध्रुवीय पक्ष

शिक्षा के ध्रुवों के विषय में शिक्षाषास्त्री एक मत नहीं हैं। जॉन एडम

इसे द्विध्रुवीय प्रक्रिया मानते थे। उनके अनुसार शिक्षा की प्रक्रिया शिक्षार्थी और शिक्षक के बीच चलती है। इसे हम निम्नलिखित रूप में प्रकट कर सकते हैं:–

जॉन डीवी ने भी इसे द्विध्रुवीय प्रक्रिया माना है। उनके अनुसार शिक्षा प्रक्रिया के दो ध्रुव होते हैं– मनोवैज्ञानिक और सामाजिक। इसे हम निम्नलिखित रूप में प्रकट कर सकते हैं–

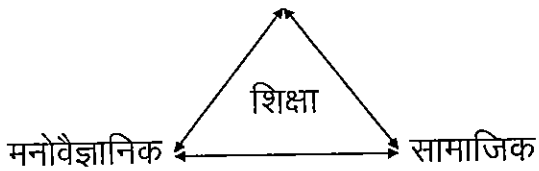

रायबर्न ने शिक्षा को त्रिध्रुवीय प्रक्रिया माना है। उनके अनुसार शिक्षा प्रक्रिया के तीन ध्रुव होते हैं– शिक्षार्थी, शिक्षक और पाठ्यचर्या। शैक्षिक तकनीकी के विकास से पूर्व तक शिक्षा के यही तीन अंग अथवा ध्रुव माने जाते रहे। इसे हम निम्नलिखित रूप में प्रकट कर सकते हैं।

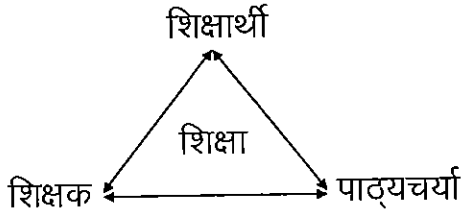

शैक्षिक मूल्यांकन विशेषज्ञों ने शैक्षिक प्रक्रिया को लक्ष्यों, उनके प्राप्ति के लिये सीखने–सीखाने की परिस्थितियों और मूल्यांकन विधियों, इन तीन अंगों में विभाजित किया है। उनके अनुसार शिक्षा की प्रक्रिया इन तीनों के बीच ही चलती है। इसे हम निम्नलिखित रूप में प्रकट कर सकते हैं।

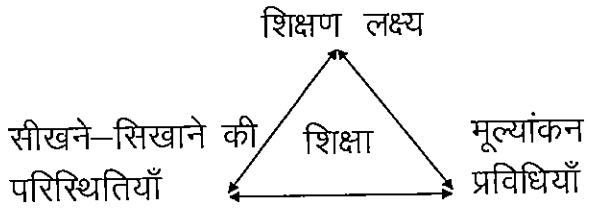

इस युग में इस क्षेत्र में सबसे अधिक कार्य शैक्षिक तकनीशियनों ने किया है। शैक्षिक तकनीकी विशेषज्ञों की दृष्टि से भी शिक्षा के तीन अंग अथवा ध्रुव होते हैं, परन्तु उन्होंने इन्हें कुछ भिन्न रूप में प्रकट किया है और

वे हैं– शिक्षक, शिक्षार्थी और सीखने–सिखाने की परिस्थितियाँ। इसे हम निम्नलिखित रूप में प्रकट कर सकते हैं–

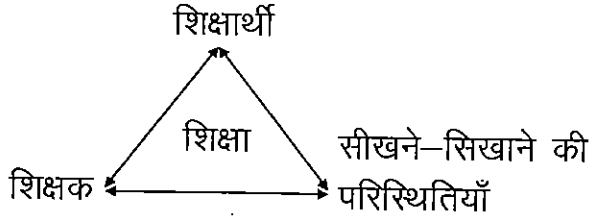

हमारी अपनी दृष्टि से शिक्षा प्रक्रिया को इन्हीं तीनों अंगों अथवा ध्रुवों में देखना–समझना चाहिए। जहाँ शिक्षा है वहाँ सीखने वाला (शिक्षार्थी) तो अवश्य ही होगा। इसके साथ जो कुछ सीखा जा रहा है उसको सिखाने वाला भी कोई होगा ही। वह व्यक्ति भी हो सकता है, वस्तु भी हो सकता है, प्राकृतिक पर्यावरण भी हो सकता है और सामाजिक पर्यावरण भी हो सकता है। शून्य में तो सीखने की प्रक्रिया चल नहीं सकती, और इन्हें हम शिक्षक वर्ग में रख सकते हैं। फिर जो कुछ शिक्षार्थी सीख रहा है वह तभी सम्भव है जब उसे सीखने की लिये तत्पर हो अथवा उसे सीखने के लिए तत्पर करे। वह क्या सीख रहा है इसे अब पाठ्यचर्या कहते हैं। वह कैसे सीख रहा है अथवा उसे कैसे सिखाया जा रहा है, इन्हें अब शिक्षण विधियाँ कहते हैं। सीखने की इस प्रक्रिया में जिन उपकरणों का प्रयोग किया जाता है, उन्हें शिक्षोपकरण कहते हैं और सीखने वाला जिस प्राकषतिक वातावरण में है और उसका उस पर जो प्रभाव पड़ रहा है, उसे उसका प्राकृतिक पर्यावरण कहते हैं। इसी प्रकार सीखने वाला जिस सामाजिक क्षेत्र में है, उसे उसका सामाजिक पर्यावरण कहते हैं और इन सबको शैक्षिक तकनीकी में सीखने–सिखाने की परिस्थियाँ कहा जाता है और इन सबका वर्णन हम शिक्षा के अंग, घटक अथवा तत्वों के रूप में कर ही चुके हैं।

1.10 शिक्षा और अध्यापन

कभी–कभी हम यह समझ लेते हैं कि शिक्षा का अर्थ है अध्ययन। किन्तु हम वर्तमान काल में प्रयुक्त शिक्षण अथवा अध्यापन शब्द की सीमाओं को देखें तो हमें यह ज्ञात होगा कि शिक्षा और अध्यापन में अन्तर है। हम बालकों को कोई विषय पढ़ाकर भी हो सकता है कि, शिक्षा न दे पाएँ। पढ़ाना और शिक्षा देना एक ही बात नहीं है। अध्यापन और शिक्षा में अन्तर नहीं करते थे, इसीलिए प्रशिक्षण महाविद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों के शिक्षा विभागों में छात्रों को लाइसेन्शियेट इन टीचिंग या बैचलर आफ टीचिंग जैसी उपाधियों

के लिये तैयार किया जाता था और शिक्षाशास्त्र की उपाधियों के रूप में ये ही टीचिंग सर्टीफिकेट और अध्ययन से सम्बन्धित अन्य प्रमाणपत्र दिये जाते थे। इन उपाधियों में टीचिंग शब्द इसी भ्रम के कारण रखा गया था कि छात्राध्यापकों से यह आषा की जाती है कि वे शिक्षक बनेंगे, न कि किसी विशेष विषय के अध्यापक मात्र। इसीलिये अध्यापकों के प्रशिक्षण का क्षेत्र अब व्यापक कर दिया गया है। दूसरे शब्दों में अब यह अध्यापकों का कुछ विषयों के अध्यापन में प्रशिक्षण मात्र न होकर 'अध्यापकों की शिक्षा' के रूप में व्यापक प्रत्यय हो गया है। अध्यापन के अर्थ में हम छात्रों को कुछ विशिष्ट विषयों का ज्ञान प्रदान करते हैं। शिक्षा में वस्तुतः हम इस ज्ञान को सम्मिलित कर लेते हैं किन्तु यहीं तक सीमित नहीं रहते। शिक्षा बालकों के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास है और अध्यापकों को सदा केवल विषयों के अध्यापन तक ही सीमित न रहकर बालकों के इस चतुर्दिक विकास में योगदान देने के लिए तत्पर रहना चाहिए।

1.11 शिक्षा और उपाधियाँ

कभी–कभी हम सोचने लगते हैं कि उपाधियाँ अथवा प्रमाण पत्र शिक्षा के द्योतक हैं। इसीलिये हम यह भी कहते हैं कि अमुक व्यक्ति ने शिक्षा प्रारम्भ कर दी है या हमारे पुत्र ने अभी शिक्षा प्रारम्भ नहीं की अथवा हमारी पुत्री ने शिक्षा समाप्त कर दी है। उपाधियाँ या प्रमाण पत्र यह बताते हैं कि उपाधिकारी व्यक्ति ने एक निश्चित प्रमाण पत्र पूरा किया है और उसमें एक निश्चित सीमा तक उसकी उपलब्धि है, किन्तु इनसे यह कदापि नहीं पता चलता कि उपाधिकारी व्यक्ति कितना शिक्षित है। यह बहुत सम्भव है कि बी0ए0 पास एक छात्र एक ग्रामीण से कम शिक्षित हो अथवा एक ग्रामीण एम0ए0 पास छात्र से अधिक शिक्षित हो। शिक्षा का एक बहुत बड़ा साधन विद्यालयी अनुभव है और विद्यालय में जाकर छात्र–छात्राएं कुछ सीमा तक शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु सभी छात्र विद्यालय में जाकर शिक्षा ही प्राप्त करेंगे, यह निश्चित नहीं है फिर जहाँ पर एक ही प्रकार के विद्यालय हो, वहाँ पर तो यह सम्भावना और भी कम हो जाती है। अतः उपाधियों अथवा प्रमाण पत्रों की प्राप्ति से शिक्षा भिन्न है। इसीलिए परीक्षा केन्द्रित शिक्षा में अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं क्योंकि परीक्षाओं का ध्येय किसी प्रमाण पत्र को प्रदान करने के लिये परीक्षार्थियों की जाँच करना है, न कि निदानात्मक एवं उपचारात्मक शिक्षा प्रदान करना।

कृष्णमूर्ति इस युग के भारतवर्ष में ऐसे दार्शनिक और चिन्तक हुए हैं जिन्होंने शिक्षा को नई तथा मौलिक अवधारणा प्रदान की है। उनका मानना है कि शिक्षा सम्प्रेषण का सबसे महत्वपूर्ण साधन है। इसी माध्यम से मानवीय चेतना में परिवर्तन लाया जा सकता है और नई संस्कृति का निर्माण किया जा सकता है। बच्चे में मौलिक परिवर्तन तभी आ सकता है जबकि स्कूली शिक्षा के साथ–साथ उसमें मानवीय चेतना भी पैदा की जाय ताकि वे अपने सोचने, अनुभव तथा कार्यों की प्रक्रिया के प्रति जागरूक हो सके। यह चेतना उसे आत्मलोचक बना देगी। इस तरह उसके व्यक्तित्व में अखण्ड ज्ञान, विवेकशीलता और निर्णय लेने की वह क्षमता आ जायेगी जो उसे मानवता और प्रकृति के साथ सामन्जस्य स्थापित करने में सहायता करेगी।

पुस्तकीय ज्ञान और विभिन्न परीक्षाएँ पास करने और उपाधियाँ प्राप्त करना शिक्षा नहीं है। सार्थक शिक्षा तभी हो सकती है जब वह अखण्ड मानव का विकास कर सके। ऐसे वातावरण का निर्माण करना चाहिए ताकि विद्यार्थी में चेतना का विकास हो जो उसे अपने जीवन, विचार और आदर्श से सही रूप में जोड़ सके। शिक्षा में 'ध्यान' और 'श्रुति' पर कृष्णमूर्ति बहुत बल देते हैं।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

प्रश्न 1:– शिक्षा में उपाधियों का क्या महत्व है, बताइये?

.....

.....

प्रश्न 2:– शिक्षा में सूचनाए किस प्रकार भूमिका अपनी निभाती हैं, समझाइये?

.....

.....

1.12 शिक्षा, शिक्षण और सीखना

प्रायः लोग शिक्षा, शिक्षण और सीखने को एक ही अर्थ में लेते हैं और

इस भूल का मुख्य कारण यह है कि ये तीनों सोद्देश्य प्रक्रियाएँ हैं और मनुष्य के व्यवहार से सम्बन्धित हैं परन्तु इन तीनों में बड़ी भिन्नता है। इस भिन्नता को समझने के लिये हमें सर्वप्रथम इन तीनों सम्प्रत्यों को अलग–अलग समझना होगा।

1.12.1 शिक्षा का सम्प्रत्ययः–

शिक्षा को सामान्यतः ज्ञान एवं कौशल के रूप में देखा–समझा जाता है परन्तु वास्तव में यह एक प्रक्रिया है, ज्ञान एवं कौशल तो इस प्रक्रिया के परिणाम हैं। विद्वानों ने इस प्रक्रिया की व्याख्या भिन्न–भिन्न रूपों में की है और इसे परिभाषित भिन्न–भिन्न रूपों में किया है। शिक्षा की उन सब व्याख्याओं और परिभाषाओं और आज जो शिक्षा का वास्तविक स्वरूप एवं कार्य हैं उस सबके आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि–

शिक्षा किसी समाज में सदैव चलने वाली वह सोद्देष्य सामाजिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात शक्तियों का विकास, उसके ज्ञान एवं कला कौशल में वृद्धि एवं व्यवहार में परिवर्तन किया जाता है और इस प्रकार उसे सभ्य, सुसंस्कृत एवं योग्य नागरिक बनाया जाता है इसके द्वारा व्यक्ति एवं समाज दानों निरन्तर विकास करते हैं।

1.12.2 शिक्षण का सम्प्रत्ययः–

शिक्षण को सामान्यतः ज्ञान एवं कौशल के रूप में देखा–समझा जाता है परन्तु वास्तव में यह एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें सिखाने वाला सीखने वाला को प्रभावित करता है और सीखने में उसकी सहायता करता है। विद्वानों ने इस प्रक्रिया की व्याख्या भिन्न–भिन्न रूपों में की है और इसे परिभाषित भी भिन्न–भिन्न रूपों में किया है। शिक्षण की उन सब व्याख्याओं और परिभाषाओं और आज शिक्षण का जो वास्तविक स्वरूप एवं कार्य हैं उस सबके आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं किः–

शिक्षण वह प्रक्रिया है जिसमें सिखाने वाले सीखने वालों के लिए विभिन्न विधियों, युक्तियों और साधनों द्वारा सीखने की परिस्थितियों का निर्माण करते हैं और सीखने वाले इनकी सहायता से सीखते हैं। शिक्षण का तब तक कोई अर्थ नहीं जब तक सीखने वाले सीख नहीं जाते, उनके व्यवहार में वांछित परिवर्तन नहीं हो जाता।

.12.3 सीखने का सम्प्रत्ययः–

सीखने को सामान्यतः ज्ञान के एवं कौशल के अर्जन के रूप में खा–समझा जाता है। विद्वानों ने इसकी व्याख्या भी भिन्न–भिन्न रूपों में की और इसे परिभाषित भी भिन्न–भिन्न रूपों में किया है। सीखने सम्बन्धी उन ब व्याख्याओं और परिभाषाओं और आज सीखने की प्रक्रिया का वास्तविक वरूप है उस सबके आधार पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि–

सीखने का अर्थ है अनुभव, शिक्षण, प्रशिक्षण अथवा अध्ययन द्वारा ए–नए तथ्यों को जानना और नई–नई क्रियाओं को करना और इन्हें बहुत मय तक धारण करना तथा आवश्यकता पड़ने पर इनका प्रयोग करना। खने का तब तक कोई अर्थ नहीं जब तक उससे सीखने वालों के व्यवहार इस प्रकार का परिवर्तन नहीं हो जाता।

12.4 शिक्षा, शिक्षण और सीखने में अन्तरः–

यदि हम शिक्षा, शिक्षण और सीखने के सम्प्रत्ययों को बारीकी से ब्रें–समझे तो इनमें निम्नलिखित अन्तर स्पष्ट होंगेः–

1. शिक्षा एक वृहत सम्प्रत्यय हैं, इसके तीन पक्ष हैं– सिद्धान्त (उद्देश्य एवं विषयवस्तु), क्रिया (शिक्षण) और परिणाम (सीखना)। स्पष्ट है कि शिक्षण शिक्षा का क्रियात्मक पक्ष है और सीखना परिणात्मक।
2. शिक्षा के उद्देश्य समाज द्वारा निश्चित होते हैं, ये व्यक्ति एवं समाज दोनों के विकास से सम्बन्धित होते हैं जबकि शिक्षण और सीखने के उद्देश्य तद्नुकूल भी हो सकते हैं और प्रतिकूल भी। दूसरे शब्दों में शिक्षा सदैव विकासोन्मुख होती है परन्तु शिक्षण और सीखना विकासोन्मुख भी हो सकते हैं और अधोगामी भी।
3. शिक्षा द्वारा व्यक्ति एवं समाज दोनों विकास करते हैं परन्तु शिक्षण और सीखना इस विकास में सहायक भी हो सकते हैं और बाधक भी। किसी समाज के सदस्य जो कुछ व्यक्ति एवं समाज के हित में सीखते–सिखाते हैं वह उनके विकास में सहायक होता है और जो कुछ प्रतिकूल सीखते–सिखाते हैं वह बाधक होता है।
4. आज शिक्षा, शिक्षण और सीखने का स्वरूप प्रायः शासनतंत्र पर आधारित होता है परन्तु जहाँ शिक्षा प्रायः शासनतंत्र की चोरी होती है

वहाँ शिक्षण शासनतंत्र आधारित होते हुए भी व्यक्तिपरक अधिक होता है और सीखना तो और भी अधिक व्यक्तिपरक होता है।

5. शिक्षा की पहचान व्यक्ति एवं समाज की प्रगतिशीलता होती है, उत्तम शिक्षा की पहचान उत्तम सीखना होता है और उत्तम सीखने की पहचान अपेक्षित व्यवहार परिवर्तन होता है।

1.13 शिक्षा अनुदेशन और प्रशिक्षणः–

प्रायः लोग शिक्षा, अनुदेशन और प्रशिक्षण को भी एक अर्थ में लेते हैं और इस भूल का भी मुख्य कारण यह है कि ये तीनों प्रक्रियाएँ है और इन तीनों का उद्देश्य मनुष्यों को कुछ सिखाना होता है, उनके व्यवहार में परिवर्तन करना होता है परन्तु इन तीनों में भी बड़ी भिन्नता है। इस भिन्नता को समझने के लिये हमें सर्वप्रथम इन तीनों सम्प्रत्यों को अलग–अलग समझना होगा।

1.13.1 अनुदेशन का सम्प्रत्ययः–

अनुदेशन को सामान्यतः शिक्षकों द्वारा शिक्षार्थियों के सम्मुख तथ्यों को सीधे प्रस्तुत करने की प्रक्रिया के रूप में लिया जाता है। सीधे प्रस्तुत करने का अर्थ है– शिक्षक–शिक्षार्थियों के बीच अन्तः क्रिया न होना, प्रश्नोत्तर न होना, शंका समाधान न होना और तर्क–वितर्क न होना। परन्तु अब अनुदेशन के लिए यह आवश्यक नहीं कि सिखाने वाला सीखने वालों के बीच उपस्थित हो, अब यह कार्य मुद्रित सामग्री, शिक्षण मशीनों, रेडियो, टेपरिकार्डरों, टेलीविजन और कम्प्यूटर आदि के द्वारा भी किया जाता है। दूसरी बात यह है कि अब अनुदेशन द्वारा तथ्यों का ज्ञान ही नहीं कराया जाता और तीसरी बात यह है कि अभिक्रमित अनुदेशन और कम्प्यूटर द्वारा अनुदेशनों में दूरवर्ती संवाद (Tele confernce) की व्यवस्था भी की जा रही है। पर इस प्रकार के किसी भी शिक्षण में सिखाने वाले और सीखने वालों के बीच सामाजिक अन्तः क्रिया नहीं होती इसलिए इन सभी को अनुदेशन कहा जाता है। तब अनुदेशन को निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया जाना चाहिए।

अनुदेशन शिक्षण की एक ऐसी विधि है जिसमें सिखाने वाले सीखने वालों तथ्यों अथवा क्रियाओं का ज्ञान स्वयं अथवा किसी अन्य माध्यम से सीधे कराते हैं और सीखने वाले इन तथ्यों एवं क्रियाओं को अपनी सामर्थ्यानुसार सीखते हैं। इसमें सिखाने वालों के बीच बहुत कम अन्तःक्रिया होती हैं।

1.13.2 प्रशिक्षण का सम्प्रत्ययः–

प्रशिक्षण को सामान्यतः कौशलों के विकास की प्रक्रिया के रूप में देखा–समझा जाता है और इसीलिए विद्वान अनुदेशन को बुद्धिपरक और प्रशिक्षण को क्रियात्मकपरक करते हैं। परन्तु आज किसी भी कला कौशल और व्यवसाय के क्षेत्र में इतना विकास हो चुका है कि उसके सिद्धान्त पक्ष को समझे बिना उसमें दक्षता नहीं प्राप्त की जा सकती। आज किसी भी प्रशिक्षण कार्यक्रम में उसके सिद्धान्त एवं क्रिया दोनों पक्षों को सम्मिलित किया जाता है और सिद्धान्त पक्षा का ज्ञान बुद्धिपरक विधियों (आगमन, निगमन, विष्लेशण–संश्लेषण आदि) की सहायता से विकसित किया जाता है और उसका अनुप्रयोग करना मनोदैहिक विधियों (अभ्यास आदि) द्वारा सिखाया जाता है। आज किसी भी कला–कौशल अथवा व्यवसाय के सिद्धान्त पक्ष के ज्ञान के बाद उसके सम्पादन में दक्ष करने की दिशा को प्रशिक्षण कहते हैं। तब प्रशिक्षण को निम्नलिखित रूप में परिभाषित किया जा सकता है:–

प्रशिक्षण का अर्थ है सीखने वालों को किसी, कला–कौशल अथवा व्यवसाय में अभ्यास द्वारा दक्ष बनाना।

1.13.1 शिक्षा, अनुदेशन और प्रशिक्षण में अन्तरः–

अब यदि हम शिक्षा, अनुदेशन और प्रशिक्षण के सम्प्रत्ययों को बारीकी से देखे–समझे तो इसमें निम्नलिखित अन्तर स्पष्ट होंगे–

1. शिक्षा एक वृहत, सम्प्रत्यय है, इसके तीन पक्ष होते हैं– सिद्धान्त (उद्देश्य एवं पाठ्यचर्या), क्रिया (शिक्षक) और परिणाम (सीखना) जबकि अनुदेशन एवं प्रशिक्षण शिक्षण की विधि मात्र होती हैं।
2. शिक्षा का उद्देश्य मनुष्यों के तीनों पक्षों– ज्ञानात्मक, भावात्मक और क्रियात्मक का विकास करना होता है जबकि अनुदेशन में अनुदेशन और प्रशिक्षण में क्रियात्मक पक्ष के विकास पर बल रहता है।
3. शिक्षा का उद्देश्य समाज द्वारा निश्चित होते हैं, ये व्यक्ति एवं समाज दोनों से सम्बन्धित होते हैं जबकि अनुदेशन और प्रशिक्षण के उद्देश्य तदनुकूल भी हो सकते हैं और प्रतिकूल भी।
4. शिक्षा की विषयवस्तु अति विस्तृत होती हैं, इसमें तथ्यों का ज्ञान एवं क्रियाओं में प्रशिक्षण सभी समाहित होता है जबकि अनुदेशन द्वारा तथ्यों का ज्ञान भर कराया जाता है और प्रशिक्षण द्वारा क्रियाओं को

करना भर सिखाया जाता है।

5. उत्तम शिक्षा की पहचान व्यक्ति एवं समाज की प्रगतिशीलता होती है, उत्तम अनुदेशन की पहचान तथ्यों को स्मरण रखना होता है और उत्तम प्रशिक्षण की पहचान सीखे हुए कला–कौशल अथवा व्यवसाय को सफलतापूर्वक करना होता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी–(i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

प्रश्न 1:– शिक्षा, शिक्षण और सीखने में अन्तर को स्पष्ट कीजिए?

.....

.....

प्रश्न 2:– अनुदेशन और प्रशिक्षण को समझाइए?

.....

.....

1.14 शिक्षा के रूप

शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है। अपने व्यापक अर्थ में यह हर समय और प्रत्येक स्थान पर चलती है और इसके अनेक रूप हैं। यहाँ उसके कुछ मुख्य रूपों का वर्णन प्रस्तुत है।

व्यापक दृष्टि से शिक्षा के तीन रूप होते हैं– औपचारिक, निरौपचारिक और अनौपचारिक।

1.14.1 औपचारिक शिक्षा

वह शिक्षा जो विद्यालयों, महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों में चलती है, औपचारिक शिक्षा कही जाती है। इस शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यचर्या और शिक्षण विधियाँ, सभी निश्चित होते हैं। यह योजनाबद्ध होती है और इसकी योजना बड़ी कठोर होती है। इसमें सीखने वालों को विद्यालय, महाविद्यालय अथवा विश्वविद्यालय की समय सारणी के अनुसार कार्य करना होता। इसमें परीक्षा लेने और प्रमाण पत्र प्रदान करने की व्यवस्था होती है।

औपचारिक शिक्षा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह व्यक्ति,

समाज और राष्ट्र की आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। यह व्यक्ति में ज्ञान और कौशल का विकास करती हैं और उसे किसी व्यवसाय अथवा उद्योग के लिये योग्य बनाती है। यह समाज की दार्शनिक, सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक माँगों की पूर्ति करती है और उसके लिए विशेषज्ञ तैयार करती है। इसके द्वारा समाज उन्नति करता है। शिक्षक, वकील, वैद्य, हकीम, डॉक्टर, इन्जीनियर, वैज्ञानिक और तकनीशियन, ये सब औपचारिक शिक्षा द्वारा ही तैयार किये जाते हैं। ओपचारिक शिक्षा के अभाव में इन सबका निर्माण सम्भव नहीं है और जिस समाज में इनका निर्माण नहीं होता वह समाज उन्नति नहीं कर सकता।

परन्तु यह शिक्षा बड़ी व्यय साध्य होती है। जो इसकी व्यवस्था करते हैं उन्हें भी अधिक समय और अधिक धन लगाना होता है और जो इसे प्राप्त करते हैं उन्हें भी अधिक समय और अधिक धन व्यय करना होता है। इसीलिये बहुत से छात्र इसे बीच में ही छोड़ देते हैं और इस प्रकार इसमें अपव्यय और अवरोधन होता है। इस शिक्षा को कई स्तरों में व्यवस्थित किया जाता है। प्रत्येक स्तर पर परीक्षा होती है और प्रमाणपत्र दिये जाते हैं और उन्हीं के आधार पर उन्हें सरकारी या गैरसरकारी नौकरियाँ प्राप्त होती हैं। प्रमाणपत्रों की इस उपयोगिता के कारण यह शिक्षा प्रायः परीक्षा प्रधान होती है और पढ़ने वाले छात्र ज्ञान एवं कला–कौशल प्राप्त करने की अपेक्षा परीक्षा में अच्छे अंक प्राप्त करने की ओर अधिक प्रवष्त होते हैं। इसके साथ–साथ इसमें स्थान, समय और पाठ्यक्रम आदि के इतने बन्धन होते हैं कि सब बच्चे इसका लाभ नहीं उठा पाते। हमारे देश भारत में यह शिक्षा सबको सुलभ भी नहीं है।

1.14.2 निरौपचारिक शिक्षा

वह शिक्षा जो न तो औपचारिक शिक्षा की भाँति विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालयों की सीमा में बाँधी जाती हे और न ही अनौपचारिक शिक्षा की भाँति आकस्मिक रूप से चलती हैं, निरौपचारिक शिक्षा कही जाती है। इस शिक्षा के उद्देश्य पाठ्यचर्या और शिक्षण विधियाँ प्रायः निश्चित होते हैं परन्तु औपचारिक शिक्षा की भाँति कठोर नहीं होती है। इसकी योजना बहुत लचीली होती है। इसका मुख्य उद्देश्य सामान्य शिक्षा का प्रसार और सतत शिक्षा का विस्तार करना होता है। इसकी पाठ्यचर्या सीखने वालों की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर निश्चित की जाती है और वह बहुत

लचीली होती है। शिक्षण विधियों के सम्बन्ध में भी यही दृष्टिकोण अपनाया जाता है। इसका आयोजन भी सीखने वालों के लिये सुविधाजनक स्थानों– विद्यालयों, मन्दिर, मस्जिद, गिरजाघर एवं गुरूद्वारों, धर्मशालाओं एवं अन्य सार्वजनिक स्थानों, खेत एवं खलिहानों और फैक्ट्रियों तथा मिलों के प्रांगणों में किया गया जाता है। समय भी सीखने वालों के सुविधानुसार निश्चित होती है। इस शिक्षा योजना में परीक्षा लेना और प्रमाणपत्र देना भी अनिवार्य नहीं होता। कुछ योजनाओं में परीक्षा ली जाती है और प्रमाणपत्र दिये जाते हैं, और कुछ योजनाओं में ऐसा कुछ भी नहीं किया जाता। विद्यालयों से बाहर की प्राथमिक शिक्षा, माध्यमिक एवं उच्चतर शिक्षा खुली शिक्षा और प्रौढ़ शिक्षा, ये सब निरौपचारिक शिक्षा की व्यवस्था हेतु औपचारिक शिक्षा के समानान्तर चलाई जाने वाली शिक्षा व्यवस्था को ही निरौपचारिक शिक्षा कहते हैं शेष को भिन्न–भिन्न नामों– खुली व्यवस्था और प्रौढ़ शिक्षा आदि से पुकारते हैं।

निरौपचारिक शिक्षा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसके द्वारा उन वच्चों को शिक्षित किया जाता है जो औपचारिक अर्थात विद्यालयों की शिक्षा का लाभ नहीं उठा पाते और उन प्रौढ़ों को शिक्षित किया जाता है जो या तो अपने बचपन में पढ़ नहीं पाते या जो प्राथमिक शिक्षा के ही किसी स्तर पर पढ़ना छोड़कर किसी कार्य में लग जाते हैं, उन्हें अपने–अपने क्षेत्र के नए–नए आविष्कारों से परिचित कराया जाता है और तत्कालीन अपेक्षाओं की पूर्ति के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। इस प्रकार यह शिक्षा समाज की सामाजिक आवश्यकताओं और राजनीतिक आवश्यकताओं की पूर्ति करती है। जन शिक्षा के लिए तो इस प्रकार की शिक्षा योजना आवश्यक होती है। भारत जैसे विशाल और सीमित साधन वाले देश के लिये तो बहुत ही लाभकारी है। इसके द्वारा कम व्यय से अधिक व्यक्तियों को सामान्य शिक्षा प्रदान की जा सकती है।

परन्तु इस शिक्षा के द्वारा समाज के लिए विशेषज्ञ तैयार नहीं किऐ जा सकते। शिक्षक, वैद्य, वकील, हकीम, डाक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक, टैक्निषियन आदि के निर्माण के लिए हमें औपचारिक शिक्षा पर ही निर्भर करना पड़ता है।

1.14.3 अनौपचारिक शिक्षा

वह शिक्षा जिसकी कोई योजना नहीं बनाई जाती, जिसके न उद्देश्य होते हैं, न पाठ्यचर्या और न शिक्षण विधियाँ और जो आकस्मिक चलती

हती हैं। उसे अनौपचारिक शिक्षा कहते हैं। कुछ विद्वान इसे औपचारिकेतर शेक्षा कहते हैं। मनुष्य जन्म के बाद जिन व्यक्तियों के सम्पर्क में आता है उन्हीं ा अनुकरण कर उनकी बोलचाल की भाषा रहन–सहन तथा खान–पान की ेधियाँ और अनेक अन्य बातें सीखता है। इस प्रकार सीखे हुए कार्यों में कुछ ार्य ऐसे होते हैं जो समाज उसे सिखाना चाहता है एतदर्थ वे उनकी शिक्षा रने के अन्तर्गत आते हैं। यह शिक्षा औपचारिक और निरौपचारिक शिक्षा ाप्त करने के साथ--साथ भी चलती है और उनके बाद भी चलती है। परिवार वं समुदाय में रहकर हम जो कुछ सीखते हैं उसमें से वह सब जो समाज हमें खाना चाहता है अनौपचारिक शिक्षा की कोटि में आता है।

अनौपचारिक शिक्षा की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह मनुष्य के ोवन भर चलती है और इसका उस पर सबसे अधिक प्रभाव होता है। नौवैज्ञानिकों का कहना है कि मनुष्य के व्यक्तित्व का तीन चौथाई निर्माण सके पहले पाँच वर्षों में हो जाता है, और हम जानते हैं कि पहले पाँच वर्षों बच्चों की शिक्षा प्रायः अनौपचारिक रूप से ही चलती है भाषा और आचरण ो शिक्षा का प्रारम्भ अनौपचारिक रूप से ही होता है। सभ्यता और संस्कृति ा ज्ञान भी जितना अनौपचारिक रूप से होता है उतना औपचारिक एवं रौपचारिक रूप से नहीं। इस प्रकार अनौपचारिक शिक्षा का अपना महत्व ।

परन्तु जब तक हम औपचारिक और निरौपचारिक शिक्षा द्वारा व्यक्ति र समाज को शिक्षित नहीं करते तब तक हमें अनौपचारिक रूप से सीखने पर्यावरण कैसे प्राप्त होगा। फिर इस प्रकार बच्चे जो भी ज्ञान एवं कौशल खते हैं वह बड़ा अव्यवस्थित होता है। मनुष्य की भाषा एवं आचरण को चेत शिक्षा देने, उसके अनुभवों को व्यवस्थित करने, उसे उसकी रूचि, ज्ञान और योग्यतानुसार किसी कार्य विशेष में प्रशिक्षित करने तथा जन क्षा के प्रचार एवं प्रसार के लिए हमें औपचारिक और निरौपचारिक शिक्षा विधान करना आवश्यक होता है।

14.4 औपचारिक, निरौपचारिक और औपचारिक शिक्षा का सापेक्षिक महत्वः–

वास्तविकता यह है कि व्यक्ति और समाज के विकास के लिए चारिक, निरौपचारिक और अनौपचारिक तीनों प्रकार की शिक्षा का ना–अपना महत्व है। मनुष्य की शिक्षा अनौपचारिक शिक्षा से प्रारम्भ होती

है और अनौपचारिक शिक्षा से ही अन्त होती है। बच्चे पर प्रारम्भ में जो संस्कार पड़ते हैं वे बड़े स्थायी होते हैं और वे प्रायः अनौपचारिक शिक्षा के परिणाम होते हैं। इसलिए इस शिक्षा को व्यक्ति का आधारशिला कहते हैं। परन्तु अनौपचारिक शिक्षा के लिए उचित पर्यावरण का विधान औपचारिक और निरौपचारिक शिक्षा द्वारा ही दिया जाता है, इसलिए इनका महत्व अपेक्षाकृत अधिक है। व्यक्ति और समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए औपचारिक शिक्षा के महत्व पर हम पर्याप्त प्रकाश डाल चुके हैं। बिना उचित औपचारिक शिक्षा का विधान लिए कोई समाज विशेषज्ञों (अध्यापक, वकील, डॉक्टर, इंजीनियर, वैज्ञानिक तथा तकनीशियनों आदि) का निर्माण कर सकता और इनके अभाव में वह उन्नति नहीं कर सकता। जो बच्चे औपचारिक शिक्षा का लाभ नहीं उठा पाते उन्हें शिक्षित करने के लिए, पौढ़ों को शिक्षित करने के लिए और शिक्षा प्राप्त करने के लिए, प्रौढ़ों को शिक्षित करने और शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों की शिक्षा को निरन्तरता प्रदान करने के लिए निरौपचारिक शिक्षा का विधान किया जाता है। जन शिक्षां के प्रसार में इस शिक्षा का अपना महत्व है। आज संसार के सभी प्रगतिशील देशों में यह औपचारिक शिक्षा के समानान्तर चल रही है। आज सभी शिक्षा विशेषज्ञ इन तीनों प्रकार की शिक्षा के महत्व को स्वीकार करते हैं और इन्हें एक दूसरे का पूरक मानते हैं।

1.14.5 विशेष

कुछ विद्वान नान फार्मल एजूकेशनल को अनौपचारिक शिक्षा कहते हैं। हमारी सरकार ने भी उसे अनौपचारिक शिक्षा की संज्ञा दी है। कुछ विद्वान इसे गैर औपचारिक और कुछ औपचारिकेतर शिक्षा कहते हैं और चूँकि भारत सरकार ने इसे अनौपचारिक शिक्षा की संज्ञा दी है। इसलिए कुछ विद्वान इनफार्मल एजूकेशन को औपचारिकेतर शिक्षा कहने लगे हैं। इससे भ्रम पैदा होना स्वाभाविक है। इस सन्दर्भ में हमारा प्रथम निवेदन यह है कि आज से कुछ वर्ष पूर्व तक शिक्षा के दो ही रूप थे– फार्मल और इनफार्मल इनको क्रमशः औपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा कहते थे और ये शब्द इनके लिए रूढ़ हो चुके हैं। दूसरा निवेदन यह है कि अंग्रेजी शब्द इनफार्मल के लिए शुद्ध हिन्दी शब्द अनौपचारिक ही है। तब नान फार्मल के लिये नये हिन्दी शब्द का निर्माण अपेक्षित है। हमारी दृष्टि से इसे गैर औपचारिक अथवा औपचारिकेतर की अपेक्षा निरौपचारिक कहना अधिक उपयुक्त है। भारत

सरकार को भी अपनी भूल का सुधार करना चाहिए। जब तक भारत सरकार भूल सुधार नहीं करती तब तक हम अनौपचारिक शिक्षा का अर्थ सदर्भ वश समझें यह आवश्यक है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

प्रश्न 1:– औपचारिक, निरौपचारिक एवं अनौपचारिक शिक्षा में अन्तर को संक्षेप में समझाइए?

.....

.....

प्रश्न 2:– जीवन में इनके महत्व को बताइए।

.....

.....

15 सारांश

शिक्षा के सम्प्रत्यय में शिक्षा के स्वरूप को विस्तृत बताया गया है। इसमें यह भी बताया गया है कि वर्तमान समय में शिक्षा का सम्बन्ध किन–किन विशयों के साथ है। एक प्रकार से देखा जाय तो शिक्षा का सम्बन्ध लगभग सभी विशयों के साथ रहा है। शिक्षा का स्वरूप इतना व्यापक है कि इसका पूर्ण रूप से वर्णन करना शिक्षाविदों के बाहर है। शिक्षा के इस रूप में ही शिक्षा क्या है, कैसे इसका निर्माण हुआ, इसके साथ ही अन्य बातों पर भी विस्तृत वर्णन भी किया गया है। इसके साथ शिक्षा के व्यापक एवं संकुचित अर्थ को भी बताया है जिससे यह पता चलता है कि शिक्षा किस प्रकार से व्यापक होती है और किस प्रकार से संकुचित होती है। इसमें शिक्षा को कुछ विद्वानों ने द्विध्रुवीय प्रक्रिया के रूप में स्वीकार किया है। परन्तु आज इनमें असामन्जस्य बना हुआ है कि शिक्षा द्विध्रुवीय प्रक्रिया है या त्रिध्रुवीय है। इसके साथ ही इस इकाई में शिक्षा का सम्बन्ध सूचनाओं के साथ भी बताया गया है और इसमें कहा गया है कि शिक्षण एक प्रकार से सूचना का कार्य करती है। कुछ विद्वानों ने शिक्षण में निरन्तरता बनाये रखने के लिये इसे

अध्यापन कार्यों से भी जोड़ा है तो कुछ शिक्षाविदों ने इसे उपाधियाँ एवं प्रशिक्षण के कार्यों से भी इसका सम्बन्ध बताया है। इसके साथ ही इसमें सबसे बड़ी बात यह है कि इसमें शिक्षा के प्रकार को विस्तार पूर्वक बताया गया है।

अतः कहा जा सकता है कि शिक्षा के सम्प्रत्यय के अन्तर्गत आने वाले उन सभी पहलुओं पर ध्यान रखा गया है जो शिक्षार्थी एवं शिक्षक के व्यक्तित्व को निखार सके। जिससे उनका आने वाला भविश्य उज्ज्वल हो तथा वह अपने पैरों पर खड़ा हो सकें।

1.16 अभ्यास प्रश्न :–

निबन्धात्मक प्रश्न

1. 'शिक्षा' शब्द का अर्थ स्पष्ट कीजिए। शिक्षा को एक प्रक्रम माना जाय या उपलब्धि? अपने उत्तर की पुष्टि में तर्क दीजिए।
2. शिक्षा के व्यापक तथा संकुचित अर्थ की विवेचना कीजिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

1. शिक्षा प्रमाण–पत्रों की प्राप्ति से किस प्रकार भिन्न है?
2. अनौपचारिक शिक्षा वर्तमान भारत के लिए क्यों आवश्यक है?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. प्रौढ़ शिक्षा किस प्रकार की शिक्षा है?

   (क) औपचारिक शिक्षा (ख) निरौपचारिक शिक्षा

   (ग) अनौपचारिक शिक्षा (घ) इसमें से कोई नहीं

2. राज्य की दृष्टि से शिक्षा का मुख्य कार्य क्या है?

   (क) शारीरिक विकास (ख) मानसिक विकास

   (ग) नागरिकता की शिक्षा (घ) व्यावसायिक विकास

3. पर्यावरण के साथ पूर्ण अनुकूल का अर्थ है– मृत्यु।

   (क) प्लेटो (ख) कमेनियस

   (ग) रूसो (घ) डीवी

उत्तरः–1. (क) निरौपचारिक शिक्षा

2. (ग) नागरिक की शिक्षा

3. (घ) डीवी

इकाई – 2 शिक्षा के सामाजिक एवं वैयक्तिक उद्देश्य

संरचना

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 शिक्षा के उद्देश्यों के निर्धारण की आवश्यकता

2.4 शिक्षा का वैयक्तिक बनाम सामाजिक उद्देश्य

2.5 शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण

2.5.1 व्यक्तिगत उद्देश्य

2.5.2 सामाजिक उद्देश्य

2.5.3 वैयक्तिक एवं सामाजिक उद्देश्यों का समन्वय

2.6 सारांश

2.7 अभ्यास प्रश्न

2.1 प्रस्तावनाः–

इसके पहले वाली इकाई शिक्षा के सम्प्रत्यय में हमने शिक्षा का स्वरूप, शिक्षा का व्यापक एवं संकुचित अर्थ शिक्षा सूचनाएँ, शिक्षा और अध्यापन, शिक्षा और उपाधियाँ, शिक्षा और प्रशिक्षण, शिक्षा की प्रक्रिया तथा अन्त में हमने शिक्षा के अन्य प्रकारों का वर्णन विस्तृत रूप से किया। इन सभी के मूल विन्दुओं पर ध्यान केन्द्रित करते हुए हमने अगली इकाई में शिक्षा की प्रक्रिया को आगे बढ़ाया तथा इस अगली इकाई में हमने शिक्षा के वैयक्तिक एवं सामाजिक उद्देश्यों की कुछ मूल विन्दुओं पर विस्तार पूर्वक वर्णन करेंगे।

इन उद्देश्यों को कुछ शिक्षाविदों ने शिक्षा के अन्तर्गत इसलिए रखा है कि इससे विद्यार्थियों के व्यक्तिगत एवं सामाजिक उद्देश्यों के बारे में समझ सकें। क्योंकि शिक्षा एक किताबी ज्ञान नहीं होती है, शिक्षा का सम्बन्ध व्यक्तियों एवं समाज से भी होना चाहिए। अरस्तू ने कहा है कि "मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है" अर्थात मनुष्य का सम्बन्ध समाज से होता है। बिना सामाजिक सम्बन्ध का व्यक्ति के समान होता है। इसलिए इस इकाई में शिक्षा के सामाजिक एवं वैयक्तिक उद्देश्यों के अन्तर्गत शिक्षा के उद्देश्यों के निर्धारण की आवश्यकता, शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण, समाज, व्यक्ति और शिक्षा,

शिक्षा का सामाजिक एवं वैयक्तिक उद्देश्यों को रखा गया है। जिससे बालकों के वैयक्तिक तथा सामाजिक व्यक्तित्व में विकास हो सकेगा।

2.2 उद्देश्यः–

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो जायेंगे किः–

- शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण कर सकेंगे।
- अपने जीवन में शैक्षिक उद्देश्यों की आवश्यकता कहाँ होती है, का अनुभव कर सकेंगे।
- सामाजिक एवं वैयक्तिक उद्देश्यों की तुलना अपने जीवन में ढंग से कर सकेंगे।

2.3 शिक्षा के उद्देश्यों के निर्धारण की आवश्कयताः–

शिक्षा के उद्देश्यों पर बिना विचार किए हुए शिक्षा की प्रक्रिया का संचालन सुचारू रूप से नहीं किया जा सकता। संसार में जितनी भी क्रियाएं होती हैं वे किसी लक्ष्य की ओर उन्मुख होती हैं। जब हम क्रिया का प्रारम्भ करते हैं तो उस क्रिया का किसी न किसी स्तर पर अन्त भी होता है। क्रिया का अन्त कहाँ होगा, इस बात को यदि हम क्रिया के प्रारम्भ के समय ही हम जान लें तो हम कहेंगे कि क्रिया का लक्ष्य यह है। किसी क्रिया के अन्त की पूर्व दृष्टि ही एक प्रकार से उस क्रिया का उद्देश्य है। लक्ष्य–विहीन क्रिया के अस्तित्व को ही कुछ विद्वान इन्कार करते हैं। शिक्षा भी एक प्रकार की क्रिया है और इसका भी उद्देश्य होता है। लक्ष्य विहीन शिक्षा निरर्थक है।

डीवी ने शिक्षा के उद्देश्यों पर विचार करते समय लिखा है कि शिक्षा का अपना कोई उद्देश्य नहीं होता। बालकों, अभिवावकों अथवा अध्यापकों का ही उद्देश्य होता है, शिक्षा का कोई लक्ष्य नहीं। डीवी से कुछ विद्वान सहमत नहीं है। यदि छात्र, शिक्षक व अभिवावक कुछ उद्देश्यों से शिक्षा का संचालन करते हैं तो शिक्षा की दिशा भी एक प्रकार से निश्चित हो जाती है।

शिक्षा निसन्देह एक प्रक्रिया है किन्तु यह लक्ष्य विहीन नहीं है। यह एक नैतिक प्रक्रिया है और किसी दिशा की ओर उन्मुख होती है। दिशा का निर्धारण ही लक्ष्य का निर्धारण है। दिशा के औचित्य एवं अनौचित्य का विचार ही शिक्षा के उद्देश्यों का विचार–विमर्श है। दिशा के ज्ञान के अभाव में पथिक की यात्रा अधूरी रहेगी। दिशा भ्रम या गलत दिशा में की गयी यात्रा

भी अनुपयोगी होगी। अतः शिक्षा के उद्देश्यों का निश्चय हमारे लिए आवश्यक है।

शैक्षिक उद्देश्यों पर विचार के समय हमें किसी एक उद्देश्य का निश्चय अभिष्ट नहीं। शिक्षा के अनेक उद्देश्य हो सकते हैं। ये उद्देश्य स्थिर या अटल स्थिर न रहकर परिवर्तनशील एवं गतिमान हो सकते हैं। देश व काल के अनुसार इनका रूप परिवर्तन अवष्य होगा। कुछ आधारभूत एवं मौलिक उद्देश्य तो सदा एक से रहते हैं और देश काल के अनुसार इनमें परिवर्तन होना अनिवार्य नहीं, किन्तु इन शाश्वत उद्देश्यों का प्रकटीकरण एवं प्रकाशन देश के अनुसार परिवर्तन होता रहता है। किसी देश के जीवन दर्शन राजनीतिक आदर्श और सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियाँ उस देश के शैक्षिक उद्देश्यों को प्रभावित करते हैं।

2.4 शिक्षा का वैयक्तिक बनाम सामाजिक उद्देश्य

व्यक्ति और समाज में कौन बड़ा है, यह एक विवादास्पद विशय है। विद्वानों के अनुसार व्यक्ति ने समाज की रचना अपने कल्याण के लिए की हैं। इसलिये समाज को व्यक्ति के विकास में सहायक होना चाहिए। इसके विपरीत कुछ विद्वान निःसमाज व्यक्ति की कल्पना ही नहीं करते। उनका कहना है कि समाज से अलग व्यक्ति का कोई मूल्य नहीं होता, प्रत्येक व्यक्ति का कर्तव्य है कि वह समाज के लिए अपने आप को न्यौछावर करे। इन विरोधी विचारधाराओं शिक्षाओं के कारण शिक्षा के क्षेत्र में भी इस विशय पर विवाद है, कुछ विद्वान शिक्षा के द्वारा व्यक्ति के वैयक्तिक विकास की बात करते हैं और कुछ उनके सामाजिक विकास पर बल देते हैं।

2.5 शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण

शैक्षिक उद्देश्य दो प्रकार से वर्गीकृत होते हैं। एक दृष्टि से शिक्षा के उद्देश्यों का वर्गीकरण होता है तो उनके प्रमुख भेद किए जाते हैं–

i. सार्वजनिक उद्देश्य ii. विशिष्ट उद्देश्य

सार्वजनिक उद्देश्यों को ही सामान्य उद्देश्य कहा जाता है। सामान्य या सार्वजनिक उद्देश्य देश व काल से प्रभावित न होकर सदा एक से ही रहते हैं और इनका निर्धारण प्रायः इनके आन्तरिक मूल्यों के आधार पर होता है। इनकी उपयोगिता सभी देशों व सभी समय में होती है। इनमें सार्वजनिक तत्व

होता है। चरित्र–विकास, ज्ञानोपार्जन, सांस्कृतिक उन्नयन, आत्मानुभूति आदि ऐसे ही सामान्य सार्वभौमिक उद्देश्य हैं।

विशिष्ट उद्देश्य किसी देश की सामाजिक व आर्थिक परिस्थितियों पर आधारित होते हैं। ये देश व काल से प्रभावित होते हैं और किसी विशेष परिस्थिति में ही अधिक उपयोगी होते हैं। उदाहरण के लिए, औद्योगिक दृष्टि से पिछड़े हुए देश में तकनीकी शिक्षा की ओर विशेष ध्यान हो सकता है। ऐसे देश में शिक्षा का उद्देश्य आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में तेजी लाना हो सकता है। भारतीय शिक्षा के आर्दशों पर विचार करते हुए कोठारी आयोग ने इस उद्देश्य पर बल दिया है। इस आयोग ने आधुनिकीकरण की प्रक्रिया में गति लाने के लिए विज्ञान की शिक्षा पर विषेश बल दिया है और सभी प्रकार के छात्रों के लिये उच्चतर माध्यमिक स्तर तक विज्ञान के अनिवार्य अध्ययन की संस्तुति की है। विश्वविद्यालयी स्तर पर भी विज्ञान के अध्ययन को अनिवार्य करने का आयोग ने परामर्श दिया है।

दूसरे वर्गीकरण के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य मुख्यतः निम्नलिखित दो प्रकार के हैं–

i. सामाजिक उद्देश्य

ii. व्यक्तिगत उद्देश्य

2.5.1 व्यक्तिगत उद्देश्य

समाज की अपेक्षा व्यक्ति का वैयक्तिक विकास शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए। इस वैयक्तिक विकास पर विचार करने से पता चलता है कि इससे भिन्न–भिन्न अर्थ लिया जाता है।

आदर्शवादियों के अनुसार शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य व्यक्ति को आत्मानुभूति करने योग्य बनाना चाहिए। वे बच्चे के शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक, नैतिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक विकास करने पर बल देते हैं, पर इन सबका अन्तिम उद्देश्य आत्मानुभूति के रूप में समझना चाहिए।

प्रकृतिवादी वैयक्तिक विकास का अर्थ भिन्न–भिन्न लेते हैं। वे इस बात से अवगत हैं कि प्रत्येक व्यक्ति कुछ मूल शक्तियाँ लेकर पैदा होता है। रूसों के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति को अपनी इन मूल प्रवृत्तियों के अनुसार विकास करने की पूर्ण स्वतंत्रता होनी चाहिए। वे व्यक्ति को भाव प्रकाशन की स्वतंत्रता देते थे। इसे ही आज आत्माभिव्यक्ति के उद्देश्य के नाम से पुकारा जाता है।

मनोविश्लेषणवादी भी आत्मप्रकाशन के महत्व को स्वीकार करते हैं। इनके अनुसार आत्मप्रकाशन करने से मनुष्य में मानसिक ग्रन्थियाँ नहीं बनती और वह मानसिक रोगों से बच जाता है और बन जाता है एक अच्छा मनुष्य।

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार कोई दो व्यक्ति आपस में समान नहीं होते, उनकी रूचि, रूझान और आवश्यकताए तक दूसरे से भिन्न होती है। उनके अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बच्चे की रूचि एवं आवश्यकतानुसार उनका विकास होना चाहिए। शिक्षा जगत में इस प्रकार की बात सबसे पहले पैस्टालॉजी ने कही थी। आज तो प्रत्येक व्यक्तिक इस बात को स्वीकार करता है। यह शिक्षा के वैयक्तिक उद्देश्य का ही एक रूप है। लोकतंत्रवादी वैयक्तिक विकास का यही अर्थ लेते हैं। शिक्षा में व्यक्ति विकास का उद्देश्य तक महत्वपूर्ण उद्देश्य है। इसके समर्थक इसके पक्ष में निम्नलिखित तर्क उपस्थित करते हैं–

1. आदर्शवादियों के अनुसार मनुष्य के जीवन का अन्तिम उद्देश्य आत्मानुभूति होता है, यह व्यक्ति के आध्यात्मिक व्यक्तित्व के विकास के द्वारा ही सम्भव होता है। अतः शिक्षा में वैयक्तिक विकास के उद्देश्य पर बल देना चाहिए।

2. मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि से मनुष्य स्वतंत्रता प्रिय प्राणी है और वह स्वतंत्र रूप से अपना पूर्ण विकास करना चाहता है, अतः अपनी मूल प्रवृत्तियों के अनुसार विकास करने की पूरी–पूरी स्वतंत्रता होनी चाहिए। प्रत्येक मनुष्य दूसरे से भिन्न होता है अतः उसे अपनी इस भिन्नता के अनुकूल विकास करने देना उचित होगा। प्रकृतिवादी दर्शन इसका सबसे बड़ा समर्थक है।

3. मनोवैज्ञानिकों की दृष्टि से मनुष्य का विकास अपनी मूल प्रवृत्तियों, रूचि, रूझान और आवश्यकताओं पर निर्भर करता है और चूँकि कोई दो मनुष्य इस दृष्टि से समान नहीं होते, अतः हम उन्हें एक–सा नहीं बना सकते। तब उनके वैयक्तिक विकास की बात सोचना उचित ही है।

4. मनोवैज्ञानिकों ने यह स्पष्ट किया है कि यदि बच्चे के स्वतंत्र विकास में बाधा डाली जाती है तो उसमें अनेक मानसिक ग्रन्थियाँ बन जाती हैं और उस स्थिति में उसका व्यवहार घोर असमाजिक रहने की आशंका रहती है। यथार्थवादियों ने इस सत्य को स्वीकार किया और शिक्षा में वैयक्तिक विकास पर बल दिया है। इस दृष्टि से भी शिक्षा में वैयक्तिक उद्देश्य को स्थान देना चाहिए।

5. लोकतंत्र में विश्वास रखने वालों का यह भी तर्क है कि प्रत्येक मनुष्य को अपना स्वतंत्र विकास करने का पूर्ण अधिकार होता है। अतः उसे अपना वैयक्तिक विकास करने के अवसर प्रदान करने चाहिए। प्रयोजनवादी शिक्षा के इस उद्देश्य का समर्थन करते हैं।

6. विकास की दृष्टि से संसार की समस्त अच्छाइयाँ मानव प्रयत्नों द्वारा हुई हैं। नन के शब्दों में– हमें सदैव इस सिद्धान्त पर विश्वास करना चाहिए कि स्त्री तथा पुरूषों की वैयक्तिक क्रियाओं तथा प्रयत्नों की अपेक्षा मानव जगत में कहीं भी और कभी भी किसी अच्छाई का प्रवेश नहीं होता। अतः शिक्षा की व्यवस्था इसी आधार पर होनी चाहिए। इस दृष्टि से भी व्यक्ति के व्यक्तित्व का स्वतंत्र विकास होना आवश्यक होता है।

7. सामाजिक दृष्टि से– i. समाज का निर्माण व्यक्ति ने अपने हित के लिए किया है। अतः शिक्षा के वैयक्तिक विकास में सहायक होना चाहिए। ii. प्रत्येक व्यक्ति समाज की एक इकाई होता है। समाज का विकास व्यक्ति के अपने विकास पर निर्भर करता है। अतः व्यक्ति के व्यक्तिगत विकास पर ध्यान देना चाहिए। iii. विभिन्नता का नाम ही संसार है। जब संसार के सारे व्यक्ति एक से हो जायेंगे तो उनमें कोई नवीनता नहीं रहेगी। अतः वैयक्तिक विकास पर ध्यान देना चाहिए।

परन्तु शिक्षा में वैयक्तिक उद्देश्य पर आवश्यकता से अधिक बल देने से लाभ के स्थान पर हानियाँ होने लगती हैं, इसलिए बहुत से विद्वान इस उद्देश्य को स्वीकार नहीं करते के विरोध में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत करते हैं–

1. यदि वैयक्तिक विकास का अर्थ आत्मानुभूति से लिया जाता है तो किसी सीमा तक ठीक है पर इसको भी अपने पूर्ण रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति सूक्ष्म आत्मा को समझने में समर्थ नहीं होता। कुछ विद्वानों का तर्क है कि आत्मा एक अदृश्य सत्य है, जिसकी व्याख्या करना कठिन है। आत्मानुभूति के लिये विभिन्न विशयों के माध्यम से सत्य का ज्ञान एवं विभिन्न क्रियाओं के माध्यम से असत्य से हटकर सत्य की ओर ध्यान केन्द्रित करने का प्रशिक्षण आवश्यक होता है और यह कार्य आज के युग में बहुत कठिन है। इसलिए आत्मानुभूति जनसाधारण की शिक्षा का उद्देश्य नहीं बन सकता।

2. वैयक्तिक विकास को आत्माभिव्यक्ति के रूप में भी स्वीकार नहीं किया जा सकता। मनोविष्लेशणवादियों का तर्क है कि व्यक्ति को स्व प्रकाशन के अवसर देने से उसमें मानसिक ग्रन्थियाँ नहीं बनती, वह मानसिक रोगों से बच जाता है और एक मनुष्य के रूप में उसका विकास होता है, उचित नहीं है। वास्तविकता यह है कि आत्म प्रकाशन की स्वतंत्रता मनुष्य को पशुवत व्यवहार करने के अवसर देने के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अतः शिक्षा के वैयक्तिक उद्देश्य के इस रूप को पूर्ण रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता। इससे तो बच्चों के घोर असामाजिक होने का भय रहता है। बच्चों को अपनी पाशविक प्रवषत्तियों के प्रकाशन के लिए कोई स्वतंत्रता नहीं होनी चाहिए।

3. प्रत्येक मनुष्य को अपनी मूल प्रवृत्तियों और रूचियों के अनुसार विकास के अवसर देने का तात्पर्य उसे पशु बनाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं हो सकता।

4. मनोविज्ञान कहता है कि संसार में कोई दो व्यक्ति समान नहीं होते, अतः उनकी विभिन्नता के अनुसार शिक्षा की व्यवस्था होनी चाहिए। परन्तु क्या यह सम्भव है ? संसार के प्रत्येक बच्चे के लिए एक अलग शिक्षक, एक अलग पाठ्यचर्या और एक अलग शिक्षण विधि का विधान नहीं किया जा सकता। कहना न होगा कि अपने इस रूप में व्यक्ति विकास का यह उद्देश्य अव्यावहारिक है।

5. इस सबके साथ–साथ वैयक्तिक विकास के उद्देश्य को आवश्यकता से अधिक महत्व देने पर मनुष्यों में अहंकार की भावना जागृत हो जाती है। जो उनके स्वयं और समाज दोनों के लिए बड़ी अहितकर होती है।

6. 'नन' महोदय का यह कहना कि संसार में समस्त अच्छाइयाँ मनुष्य के वैयक्तिक प्रयत्नों के परिणामस्वरूप आती हैं, किसी सीमा तक ठीक है, पर हम इस सत्य को भी नहीं भुला सकते कि हम समाज से जो कुछ भी सीखते हैं उसी में हम अपना अनुभव जोड़ते चलते हैं और विकास का यही क्रम है। तब व्यक्ति के आगे समाज को भूल जाना उचित नहीं है। समाज से दूर रहकर कोई व्यक्ति किसी प्रकार की अच्छाई ला सकता है। यह सोचना कोरी कल्पना है।

7. यह बात सही है कि व्यक्ति ने समाज का निर्माण अपने हित के लिये किया है और समाज को उसके वैयक्तिक विकास में सहायक होना

चाहिए, पर इस सम्बन्ध में हमें यह भी जान लेना चाहिए कि समाज तो एक अदृश्य विचार है। उसके प्रत्यक्ष अंग व्यक्ति ही है और जब तक इन व्यक्तियों में सामाजिक भावना (प्रेम, सहानुभूति, सहयोग, दया, क्षमा, सहनशीलता आदि) नहीं होगी तब तक समाज से व्यक्ति को कोई लाभ नहीं हो सकता। अतः शिक्षा में केवल वैयक्तिक विकास को महत्व नहीं दिया जा सकता, सामाजिक विकास भी आवश्यक है।

उपर के विवेचन से यह स्पष्ट है हो जाता है कि शिक्षा को बच्चों के वैयक्तिक विकास में सहायक तो होना चाहिए पर केवल उसी तक सीमित रहना उचित नहीं है। व्यक्ति के वैयक्तिक विकास के साथ–साथ शिक्षा को उसके सामाजिक विकास की ओर भी उन्मुख रहना चाहिए। किसी भी व्यक्ति को ऐसा विकास नहीं करने दिया जा सकता जिससे समाज का अहित हो। हमें किसी व्यक्ति के वैयक्तिक विकास में उसी सीमा तक सहायता करना चाहिए जिस सीमा तक उसका अपना और समाज दोनों का भला होता है।

2.5.2 सामाजिक उद्देश्य

व्यक्ति की अपेक्षा समाज को अधिक महत्व देने वालों के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य सामाजिक भावना का विकास करना होना चाहिए। यही शिक्षा का सामाजिक उद्देश्य है। विद्वानों ने सामाजिक उद्देश्य की सीमाएँ अपने–अपने दृष्टिकोण से निश्चित की है।

आदर्शवादियों का विश्वास है कि सभी प्राणियों में एक समान तत्व 'आत्मा' है। इस दृष्टिकोण के अनुसार सारा संसार एक कुटुम्ब है हम सब प्राणी उसके सदस्य हैं। अपने सुखमय जीवन और ईश्वर की प्राप्ति के लिए हमें एक दूसरे से प्रेम करना चाहिए। प्रेम हम तभी कर सकते हैं जब हमारे 'स्व' का क्षेत्र बढ़ जाय। अतः शिक्षा को मनुष्य–मनुष्य के अन्तर को समाप्त कर उनमें प्रेम की भावना का विकास करना चाहिए जिससे वे एक दूसरे की सेवा करते हुए ईश्वर की ओर उन्मुख हों। आदर्शवादी शिक्षा के सामाजिक विकास के उद्देश्य से यही अर्थ लेते हैं।

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मनुष्य में सामूहिकता की मूल प्रवृत्ति होती है। यह प्रवृत्ति उसे समूह में रहने की प्रेरणा देती है। सामाजिक दृष्टि से व्यक्ति का सामूहिक जीवन तभी सुखमय हो सकता है जब उस समूह के सभी सदस्य एक–दूसरे की सुख–सुविधा का ध्यान रखते हों। अपनी जाति के प्राणियों के प्रति प्रेम, सहानुभूति, सहयोग, दया, क्षमा, सहनशीलता आदि की

भावना का खयाल रखना ही सामाजिकता है। इन्हीं गुणों का विकास सामाजिकता का विकास है। यथार्थवादी शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य को इसी रूप में लेते हैं।

राजनैतिक दृष्टिकोण से सामाजिक विकास के दो रूप हैं। एकतंत्र शासन प्रणाली के समर्थक राष्ट्र को महत्वपूर्ण मानते हैं। हमारे देश में तो एकतंत्र शासन में भी शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति को समाज अथवा राष्ट्र और राष्ट्र को व्यक्ति अथवा समाज के प्रति कर्तव्यों से अवगत कराना था, पर पश्चिम में यह विचार दूसरे रूप में विकसित हुआ। इसके अनुसार प्रत्येक व्यक्ति अपने राष्ट्र के लिये पैदा होता है, और इसे राष्ट्र समाजवाद कहते हैं। फिरण्टे और हींगल ने इस विचारधारा को बढ़ावा दिया। उनके अनुसार राज्य एक स्वतंत्र सत्ता है और उसके उपर अन्य किसी का प्रभुत्व नहीं होता। राष्ट्र हेत के लिए प्रत्येक व्यक्ति को अपने हित का त्याग करना चाहिए और जो यक्ति राष्ट्र का हित नहीं कर सकता उसका जीवन व्यर्थ है। द्वितीय विश्वयुद्ध के पहले जर्मनी, जापान और इटजी में इसी सिद्धान्त को माना जाता था। उस समय उनकी शिक्षा व्यवस्था ऐसी थी जो राष्ट्र में शासन के अनुकूल नागरिक तैयार करती थी। इस विचारधारा के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य बच्चों को अपने शासन के अनुकूल आचरण करने वाला बनना होता है।

सामाजिक विकास का दूसरा रूप लोकतंत्रवादियों द्वारा निश्चित किया गया है। लोकतंत्रवादियों के अनुसार किसी भी राष्ट्र की उन्नति लोकतंत्र द्वारा ही सम्भव होती है और लोकतंत्र योग्य नागरिकों पर निर्भर करता है। अतः शिक्षा का उद्देश्य व्यक्तियों को योग्य नागरिक बनाना होना चाहिए। योग्य नागरिक वही होता है जिसे अपने अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान होता है और जिसका शारीरिक, मानसिक और चारित्रिक एवं सामाजिक विकास हो का है। कोई भी नागरिक देश का भला तब तक नहीं कर सकता जबतक से अपने देश के नागरिकों के प्रति प्रेम न हो। उसे सहयोग से कार्य करने भी विश्वास होना चाहिए। जो व्यक्ति दूसरों के हित के लिए अपने हित का ाग करता है उसी से समाज अथवा देश के हित की आशा की जा सकती । लोकतंत्रवादी शिक्षा द्वारा एक नागरिक में इन सब गुणों का विकास करना हते हैं।

वागले और जॉन डीवी सामाजिक विकास से तात्पर्य सामाजिक शलता से लेते हैं। वागले के अनुसार सामाजिक कुशलता से तात्पर्य व्यक्ति

के निम्नलिखित गुणों से होता है–

1. **आर्थिक कुशलताः–** व्यक्ति अपनी और अपने पर आश्रित व्यक्तियों की जीविका कमा सके।

2. **निशेधात्मक नैतिकताः–** व्यक्ति अपनी उन इच्छाओं पर नियंत्रण कर सके जो दूसरों की आर्थिक कुशलता पर कुप्रभाव डालती है।

3. **स्वीकारात्मक नैतिकताः–** व्यक्ति अपनी उन इच्छाओं को बलिदान कर सके जो सामाजिक विकास में प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष, किसी भी रूप में सामाजिक कुशलता का अर्थ मानव की सामूहिक क्रियाओं में भाग लेने की क्षमता के विकास से होता है।

यदि विचार कर देखा जाय तो शिक्षा का सामाजिक उद्देश्य एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है। इसके समर्थक इसके पक्ष में निम्नलिखित तर्क उपस्थित करते हैं:–

1. हम सब परमात्मा के अंश हैं। सारा संसार एक कुटुम्ब है। हमें एक–दूसरे के सुख की चिन्ता अवश्य करनी चाहिए। मानव के लिए मानव की सेवा से बढ़कर कोई दूसरा धर्म नहीं है और सेवा का यह भाव सामाजिक भावना का आधार होता है। अतः इस विकास के लिए शिक्षा में सामाजिक उद्देश्य को स्थान देना चाहिए।

2. मनुष्य पाशविक वृत्तियाँ लेकर पृथ्वी पर पदार्पण करता है। समाज में रहकर उसकी इन पाशविक वृत्तियों का उदात्तीकरण होता है। अगर समाज व्यक्ति के प्रति सजग न हो तो मनुष्य पशु के अतिरिक्त और कुछ नहीं बन सकता। समाज की यह सजगता ही उसकी सामाजिकता है। इस दृष्टि से शिक्षा में सामाजिक उद्देश्य को महत्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिए।

3. **रेमण्ट** के शब्दों में निःसमाज व्यक्ति कोरी कल्पना के समान है। वह तो एक सामाजिक प्राणी है और समाज में रहकर ही उसका विकास होता है। जैसा समाज होगा उसी के अनुकूल उस समाज के व्यक्तियों का विकास होगा। अतः एक उच्च समाज का निर्माण होना आवश्यक

होता है और यह तभी सम्भव है जब शिक्षा द्वारा सामाजिक विकास किया जाय।

4. व्यक्ति का निर्माण समाज में होता है। समाज के इस ऋण से उऋण होने के लिए मनुष्य को समाज की सेवा करनी चाहिए। अगर यह चक्र नहीं चलता तो व्यक्ति का हित सम्भव नहीं है। अतः इस दृष्टि से भी शिक्षा के सामाजिक उद्देश्य को महत्व देना चाहिए।

5. राज्य के अभाव में सुरक्षा, न्याय तथा षान्ति सम्भव नहीं है। अतः राज्य के अस्तित्व को स्वीकार करना चाहिए। राज्य का अस्तित्व तभी सुरक्षित रह सकता है जब उसके नागरिक राज्य हित के लिए अपने हित का त्याग कर दें। त्याग की इस भावना का विकास ही सामाजिक विकास है।

6. समाज सभ्यता तथा संस्कषति का जन्मदाता, पोशक एवं रक्षक होता है इसलिए उसके हित को सामने रखकर ही शिक्षा की व्यवस्था की जानी चाहिए।

7. मनुष्य के जीवन को सरल, षिश्ट एवं सुखमय बनाने के लिए बच्चों में सामाजिक भावना का विकास करना आवश्यक होता है। बिना प्रेम एवं सहयोग के मनुष्य जीवन पषु के सदृश्य होगा। अतः शिक्षा द्वारा उनमें सामाजिक गुणों का विकास अवश्य करना चाहिए।

परन्तु शिक्षा में सामाजिक उद्देश्य पर आवश्यकता से अधिक बल देने पर लाभ के स्थान पर हानियाँ होने लगती हैं। इसलिये बहुत से विद्वान इसके पक्ष में नहीं हैं। उनके निम्नलिखित तर्क हैं:–

1. अपने वास्तविक रूप में सामाजिक उद्देश्य भौतिक पक्ष को ही लेकर चलता है, यह बच्चों के आध्यात्मिक विकास की चिन्ता नहीं करता, परिणामतः लोग परहित की बात सोच ही नहीं पाते। यह उद्देश्य अपने में अपूर्ण है।

2. सामाजिक उद्देश्य के समर्थक बच्चों की व्यक्तिगत, रूचि, रूझान एवं योग्यताओं का ध्यान रखे बिना सब व्यक्तियों को एक ढाँचे में ढालने का प्रयत्न करते हैं, यह एकदम अमनोवैज्ञानिक है। इससे बच्चों के अस्तित्व का विकास नहीं हो पाता। अतः शिक्षा में सामाजिक उद्देश्य को स्थान देते समय वैयक्तिक उद्देश्य को नहीं भूलना चाहिए।

3. अगर यह सत्य है कि व्यक्ति का विकास समाज में ही होता है तो यह भी सत्य है कि व्यक्ति से ही समाज बनता है और व्यक्ति ही समाज को बदलता है। तब समाज के विकास के आगे मनुष्य के वैयक्तिक विकास की बात कैसे भूली जा सकती है।

4. यदि सामाजिक उद्देश्य से तात्पर्य सामाजिक कुशलता से लिया जाता है तो भी हम व्यक्ति के वैयक्तिक विकास को नहीं भुला सकते। किसी भी व्यक्ति में सामाजिक कुशलता तब तक नहीं आ सकती जब तक की उसका वैयक्तिक विकास नहीं किया जाता। अतः शिक्षा के केवल सामाजिक उद्देश्य को स्वीकार नहीं किया जा सकता।

5. यदि सामाजिकता का अर्थ व्यक्ति को राष्ट्र के लिए तैयार करने से लिया जाय तो व्यक्ति केवल राजनैतिक दृष्टि से ही तैयार होता है, अन्य दृष्टियों से वह पीछे रह जाता है। यह दृष्टिकोण बड़ा संकुचित और अहितकर है। जब व्यक्ति को केवल राष्ट्र के लिए तैयार किया जाता है तब अपनी निजी योग्यताओं का विकास नहीं हो पाता। उनमें न तो स्वतंत्र रूप से सोचने की शक्ति का विकास होता है और न स्वतंत्र रूप से कार्य करने की क्षमता आती है, मानसिक दृष्टि से वह राष्ट्र का गुलाम मात्र रह जाता है इसके अतिरिक्त यह शासको को मनमौजी और अहंकारी बना देता है। वे अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए ही जनता को शासन के प्रति वफादार बनाने का नारा लगाते हैं। यही कारण है कि जिससे भोली जनता पीढ़ी दर पीढ़ी अपनी रक्षा के भुलावे में शासकों की रक्षा करती रही और शासक महलों में घड़े सुरा और सुन्दरी का भोग करते रहे। नागरिकता पर आवश्यकता से अधिक बल देने का दुष्परिणाम यह भी निकलता है कि व्यक्ति में राष्ट्रीय संकीर्णता प्रवेश कर जाती है और वे अपने राष्ट्र के हित के लिए दूसरे राष्ट्रों का अहित कर बैठते हैं। आज का संसार इस राष्ट्रीय संकीर्णता का शिकार हो रहा है। हमें इससे मुक्ति पानी चाहिए।

6. एक ओर यदि यह बात सत्य है कि समाज सभ्यता तथा संस्कृति का जन्मदाता, पोशक एवं रक्षक होता है इसलिए इसके हित को सामने रखना चाहिये तो दूसरी ओर यह भी सत्य है कि सामाजिक उद्देश्य पर अधिक बल देने से हम व्यवसायिक उद्देश्यों की ओर आगे बढ़े हैं

और कला, संगीत और साहित्य की उपेक्षा हुई है। कला, संगीत और साहित्य से हीन व्यक्ति का जीवन कितना नीरस होगा, इसकी कल्पना हम सब कर ही सकते हैं।

7. सामाजिक उद्देश्य की प्राप्ति में प्रेम, सहानुभूति, सहयोग के स्थान पर सामाजिक होड़ में द्वेष, ईर्श्या और असहयोग ही बढ़ते देखे गये हैं। इस पर नियंत्रण करने के लिए व्यक्ति के वैयक्तिक विकास (आत्मानुभूति) पर ध्यान देना आवश्यक है।

उपर के विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षा का सामाजिक उद्देश्य एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है पर समाज अथवा राष्ट्र के आगे व्यक्ति के हित को भूल जाना उचित नहीं है। प्रत्येक व्यक्ति समाज का एक इकाई होता है। जिस प्रकार एक दीवार की मजबूती उसकी प्रत्येक छूट पर निर्भर करती है उसी प्रकार एक समाज की मजबूती उसके प्रत्येक व्यक्ति पर निर्भर करती है। अतः सामाजिक विकास के आगे वैयक्तिक विकास को नहीं भुलाया जा सकता।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

प्रश्न 1:– निम्नलिखित शब्दों की व्याख्या कीजिए?

(i) .....

(ii) सामाजिक उद्देष्य.....

.....

प्रश्न 2:– शिक्षा के उद्देश्यों के निर्धारण की आवश्यकता क्यों पड़ती है? संक्षेत में वर्णन कीजिए।

.....

.....

2.5.3 शिक्षा के वैयक्तिक एवं सामाजिक उद्देश्यों का समन्वय

इस प्रकार अब हम इस निष्कर्ष पर जा पहुचे हैं कि व्यक्ति तथा समाज में सामन्जस्य स्थापित हो सकता है। स्पष्ट है कि व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा समाज की निरंकुशता अपने में बँधी सीमाएँ नहीं हैं। इनका व्यवहारिक रूप स्वयं सामन्जस्य है। अरस्तू का कथन है– "मनुष्य सामाजिक प्राणी है"–

हमारे इस विवेचन को उचित अन्त दे देता है। समाज से बाहर व्यक्ति पशु की सीमा पर आ जाता है। इसका केवल यही है कि वह मनुष्य की विषिश्ट कला अर्थात भाषा (विशेष रूप से लिपि) से अलग होते ही पशु स्तर की क्रिया तथा भाषा पर आश्रित हो जाएगा। दो से लेकर दो अरब व्यक्ति समाज की रचना करते हैं। व्यक्ति उसमें रहते हुए भी उसके नियमों का पालन करते हुए भी एक प्रकार से स्वतंत्र रहते हैं। हमें इस तथ्य के कारण नन महोदय की बात कुछ अच्छी लगती है। व्यक्ति तथा समाज एक दूसरे के पूरक हैं। शिक्षा इस सत्य से उदासीन नहीं हो सकती। व्यक्ति तथा समाज में उचित समन्वय की बात करते समय हम एक आदर्श राष्ट्र की कल्पना करते हैं। जहाँ व्यक्ति तथा समाज एक सूत्र में बँधे हों, जहाँ एक का उद्देश्य दूसरे के उद्देश्यों में अड़चन न डालता हो, जहाँ एक दूसरे को लाभान्वित करने का प्रयत्न करते रहते हों। ऐसा समाज व्यक्ति का विरोधी न होकर उसके विकास में सहायक होगा। इसी बात से लगी हुई एक और बात है, व्यक्ति समाज को समृद्ध बनाने की क्षमता रखता है। किन्तु ऐसे व्यक्ति को :–

1. आर्थिक दृष्टि से स्वतंत्र होना चाहिए।

2. उसमें समाज के लिए त्याग करने की भावना होनी चाहिए।

3. समाज के हित का सदैव ध्यान रखना चाहिए।

जो शिक्षा किसी व्यक्ति में उक्त योग्यताएँ नहीं उत्पन्न कर सकती, वह शिक्षा अधूरी है। स्कूलों की शिक्षा का आदर्श, इन्हीं योग्यताओं का छात्र में विकास करना होना चाहिए। प्रसिद्ध दार्शनिक कृष्णमूर्ति ने ठीक कहा है कि:–

"आजकल स्कूल, कालेज, इंजीनियर, डॉक्टर और व्यवसायी तो पैदा कर रहे हैं, लेकिन अखण्ड मानव का निर्माण कहीं भी नहीं हो रहा है। तकनीकी रूप से दक्ष व्यक्ति 'सम्पूर्ण मानव' नहीं हो सकता, उसे पूर्ण–संस्कारों, मूल्यों और मापदण्डों को स्वीकार करने के लिये बाध्य किया जा रहा है। विद्यार्थी से अपेक्षा की जाती है कि वह पहले से स्थापित एवं आर्थिक ढाँचे के अनुकूल बने। मनुष्य में मौजूद असीम क्षमताओं एवं सम्भावनाओं को नष्ट किया जा रहा है। शिक्षा के माध्यम से पूर्व–संस्कारों की बेड़ियों को काटा जाय और नये मूल्यों की स्थापना की जाय। सामाजिक और सांस्कृतिक परिवेष के प्रति सजग चेतना की नयी दृष्टि और क्षमता प्राप्त नहीं की जा सकती। शिक्षा व्यक्ति के चरित्र के सभी पहलुओं का विकास करती है। जिस 'अखण्ड मानव' की कल्पना कृष्णमूर्ति ने की है उससे उनका आशय उस

चेतना से है जो पूर्वाग्रहों और पूर्वधारणाओं से मुक्त हो और जिसमें अन्तः मन को समझने की क्षमता भी होनी चाहिए। स्वयं को समझने की प्रक्रिया में आलोचनात्मक दृष्टि का विकास होगा और फिर किसी 'सत्य' को तब तक स्वीकार नहीं किया जायेगा। जब तक चेतना उस को सत्य के रूप में स्वीकार न कर ले। अन्तः मन को बदलने से ही समाज में बदलाव आ सकता है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि व्यक्ति के वाह्य आचरण और अन्तः मन को समझने की क्षमता का विकास एक साथ हो।"

इन सबसे हम इस निष्कर्ष पर पहुचे हैं कि अपने उग्र रूप में ये दोनों विचारधाराएँ व्याप्त हैं क्योंकि एक के द्वारा व्यक्ति समाज का और दूसरी के द्वारा समाज व्यक्ति का शोषण करता है किसी भी स्थिति में हमें न तो व्यक्ति को इतना अधिक श्रृंखला बनाना चाहिए कि वह समाज के नियमों को ठुकराकर मनमाना आचरण करे और न ही समाज को इतना अधिक शक्तिशाली बनाना चाहिए कि वह व्यक्ति का शोषण करे। शिक्षा का उचित उद्देश्य वही होगा जो इन दोनों के समन्वित रूप को लेकर आगे बढ़ेगा। अपने वास्तविक रूप में ये दोनों हैं भी अभिन्न ही। मैकाइवर तथा पेज के अनुसार सामाजिकरण और व्यक्तिकरण एक ही प्रक्रिया के दो पक्ष होते हैं।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

प्रश्न 1:– आपकी दृष्टि से शिक्षा की व्यवस्था व्यक्ति के आधार पर की जानी चाहिये या समाज के आधार पर ? तर्क सहित उत्तर दीजिए।

.....

.....

2.6 सारांश

शिक्षा के सामाजिक एवं वैयक्तिक उद्देश्यों के अन्तर्गत शिक्षा के निर्धारण की आवश्यकता क्यों पड़ती है। इस पर डीवी ने शिक्षा के उद्देश्यों पर विचार करते हुए लिखा है कि शिक्षा का अपना कोई उद्देश्य नहीं होता। बालक अभिवावकों अथवा अध्यापकों का ही उद्देश्य होता है। परन्तु अगर देखा जाय तो डीवी का यह तर्क अमाननीय लगता है। क्योंकि शिक्षा निःसंदेह एक

प्रक्रिया है किन्तु लक्ष्य विहीन नहीं है। अतः बिना शिक्षा के उद्देश्यों के निश्चय किये बिना हम कोई भी उद्देश्य निश्चय नहीं कर सकते। शैक्षिक उद्देश्यों में परिवर्तन सिर्फ देश एवं काल के अनुसार होता रहता है। क्योंकि किसी देश के जीवन दर्शन, राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक परिस्थितियाँ उस देश के शैक्षिक उद्देश्यों को प्रभावित करते हैं।

इसके बाद इस इकाई में शिक्षा का वैयक्तिक बनाम सामाजिक उद्देश्य को लिया गया है जिसमें व्यक्ति और समाज में कौन बड़ा है, इन सब बातों के विषय में इसमें अच्छे प्रकार से बताया गया है। इसके सही ढंग से व्याख्या करने के लिए इसको कई भागों में बाटकर इसकी व्याख्या किया गया है– जैसे सार्वभौमिक उद्देश्य एवं विशिष्ट उद्देश्य। इसको भी दो वर्गों में विभाजित कर दिया गया है जो– सामाजिक उद्देश्य एवं वैयक्तिक उद्देश्य हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि इस इकाई के अन्तर्गत आने वाले सभी विन्दुवार विस्तृत चर्चा या यूँ कहिए कि उस पर विस्तष्त वर्णन किया गया है।

2.7 अभ्यास प्रश्न :–

निबन्धात्मक प्रश्न

1. शिक्षा के उद्देश्यों के लिए निर्धारण करना शिक्षकके लिए क्यों आवश्यक है ?
2. शिक्षा के वैयक्तिक एवं सामाजिक उद्देश्यों से आप क्या समझते हैं ? क्या दोनों में संतुलन स्थापित किया जा सकता है।

लघुउत्तरीय प्रश्न

1. शैक्षिक उद्देश्यों के वर्गीकरण का उल्लेख कीजिए।
2. शिक्षा के उद्देश्यों के सम्बन्ध में डीवी के विचार क्या हैं ?
3. एडलर का वर्गीकरण क्या है ?

वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. सामाजिक दक्षता का उद्देश्य किसने दिया ?

   (क) प्लेटो (ख) सुकरात

   (ग) रूसो (घ) डीवी

2. सत्य–असत्य का निर्णय कीजिए–

(क) रूसो ने व्यक्ति और समाज दोनों को समान महत्व दिया है।

(ख) टी. रेमन्ट ने व्यक्ति की अपेक्षा समाज को अधिक महत्व दिया।

(ग) टी.पी. नन ने समाज की अपेक्षा व्यक्ति को अधिक महत्व दिया है।

(घ) लोकतंत्र में व्यक्ति एवं समाज दोनों को समान महत्व दिया जाता है।

उत्तर–

(क) असत्य (ख) सत्य (ग) सत्य (घ) सत्य

इकाई – 3 शिक्षा के अन्य उद्देश्य

संरचना

3.0 प्रस्तावना

3.1 उद्देश्य

3.2 शिक्षा के अन्य उद्देश्य

3.3 जीविकोपार्जन के उद्देश्य

3.3.1 पक्ष में तर्क

3.3.2 विपक्ष में तर्क

3.3.3 विभिन्न शिक्षा आयोग और शिक्षा का जीवकोपार्जन का उद्देश्य

3.4 नागरिकता का प्रशिक्षण

3.4.1 उद्देश्य के पक्ष में तर्क

3.4.2 उद्देश्य के विपक्ष में तर्क

3.5 बौद्धिक विकास के लिए शिक्षा

3.5.1 उद्देश्य के पक्ष में तर्क

3.5.2 उद्देश्य के विपक्ष में तर्क

3.6 भविष्य के लिए शिक्षा

3.7 चरित्र निर्माण का उद्देश्य

3.8 वातावरण के अनुकूल बनाने का उद्देश्य

3.9 शारीरिक विकास का उद्देश्य

3.10 जीवन को पूर्णता प्रदान करने का उद्देश्य

3.11 उद्देश्यों का समन्वय

3.12 सारांश

3.13 अभ्यास प्रश्न

3.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.15 संदर्भित ग्रंथ सूची

3.0 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई 'शिक्षा के अन्य उद्देश्य' में शिक्षा देने के कुछ महत्वपूर्ण उद्देश्यों की चर्चा की गयी है तथा सभी प्रकार के उद्देश्यों को मनुष्य के विकास के लिए पूर्ण रूप से आवश्यक स्वीकार किया गया है। इस इकाई में यह बताने का प्रयास करगें कि शिक्षा के सभी उद्देश्य यद्यपि अलग–अलग हैं किन्तु व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास के लिए इन सभी की प्राप्ति आवश्यक है। अतः इन सभी उद्देश्यों को एक समन्वित रूप में देखना चाहिए।

3.1 उद्देश्य

'शिक्षा के अन्य उद्देश्य' नामक प्रस्तुत इकाई को आपकी पाठ्य वस्तु में शामिल करने का उद्देश्य यह है कि आप इस योग्य हो जायेंगे कि:–

- आप शिक्षा के अन्य प्रमुख उद्देश्यों के विषय में जान सकेंगे।
- आप शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों की व्याख्या कर सकेंगे।
- इस इकाई के पढ़ने के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगे कि शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यों की आपस में तुलना कर सकेंगे।
- आप शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यों के समन्वय के महत्व को समझ सकेंगे।

3.2 शिक्षा के अन्य उद्देश्य

उद्देश्य एक पूर्वदर्शित लक्ष्य है जो किसी रूप को संचालित करता है अथवा व्यवहार को प्रेरित करता है। यदि लक्ष्य निश्चित तथा स्पष्ट होता है तो व्यक्ति की क्रिया उस समय तक उत्साह पूर्वक चलती रहती है जब तक वह उस लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर लेता है। जैसे–जैसे लक्ष्य निकट आता जाता है वैसे–वैसे इसकी क्रियाओं में अन्तर आता जाता है। अंत में एक समय ऐसा आता है कि जब व्यक्ति अपने लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है। इस लक्ष्य की प्राप्ति को ही उद्देश्यों की प्राप्ति कहते हैं। संक्षेप में उद्देश्य वह पूर्व निर्दिष्ट लक्ष्य है जिसको प्राप्त करने के लिए व्यक्ति प्रसन्नता पूर्वक उत्साह के साथ चिन्तनशील रहते हुए क्रियाशील रहता है।

मानव जीवन के प्रत्येक पक्ष तथा दैनिक जीवन की प्रत्येक क्रिया को सफल बनाने के लिए उद्देश्य का विशेष महत्व होता है। बिना उद्देश्य के हम जीवन के किसी भी क्षेत्र में सफल नहीं हो सकते। शिक्षा के क्षेत्र में भी यही

बात लागू होती है। इसका एकमात्र कारण यह है कि प्राकृतिक बालक तथा प्रगतिशील एवं विकसित समाज की आवश्यकताओं तथा आदर्शों के बीच एक गहरी खाई होती है जिसको पाटने के लिए केवल शिक्षा ही एक ऐसा साधन है जो किसी उद्देश्य के अनुसार समाज की बदलती हुई आवश्यकताओं तथा आदर्शों को दृष्टि में रखते हुए बालक की भूल प्रवृत्तियों का विकास इस प्रकार से कर सकती है कि व्यक्ति तथा समाज दानों ही विकसित होते रहें। इस दृष्टि से नर्सरी प्राइमरी, माध्यमिक तथा उच्च स्तरों एवं सामान्य व्यवसायिक, तकनीकी तथा प्रौढ़ आदि सभी प्रकार की शिक्षा के उद्देश्य अलग–अलग और स्पष्ट होने चाहिए।

जब व्यक्ति को किसी उद्देश्य का स्पष्ट ज्ञान होता है तो उसके मन में दृढ़ता तथा आत्मबल जागृत हो जाता है। इससे वह एकाग्र होकर अपने कार्य को पूरे उत्साह के साथ कार्य करने लगता है। यही नहीं, उद्देश्य हमें शिक्षण–पद्धतियों के प्रयोग करने, साधनों का चयन करने, उचित पाठ्यक्रम की रचना करने तथा परिस्थितियों का अनुसार शिक्षा की व्यवस्था करने में भी सहायता प्रदान करता है। इससे व्यक्ति तथा समाज दोनों विकास की ओर अग्रसर होते रहते हैं। जिस शिक्षा का कोई उद्देश्य नहीं होता है वह व्यर्थ होती हैं ऐसी उद्देश्य विहीन शिक्षा को प्राप्त करके बालकों में उदासीनता उत्पन्न हो जाती है। परिणाम स्वरूप उन्हें अपने किये हुए कार्यों में सफलता नहीं मिल पाती जिससे उनका मानसिक शारीरिक तथा नैतिक पतन होता रहता है। अतः शिक्षण कार्य को आरम्भ करने से पूर्व बालक तथा शिक्षक दोनों को शिक्षा के उद्देश्य अथवा उद्देश्यों का स्पष्ट ज्ञान होना परम आवश्यक है। उद्देश्य के ज्ञान के बिना शिक्षक उस नाविक के समान होता है जिसे अपने लक्ष्य का ज्ञान नहीं तथा उसके विद्यार्थी उस पतवार विहीन नौका के समान है जो समुद्र की लहरों के थपेड़े खाती हुई तट की ओर बढ़ती जा रही है।

शिक्षा का मुख्य उद्देश्य व्यक्ति के व्यवहार में परिवर्तन लाना है। इसके साथ ही साथ शिक्षा के कुछ अन्य प्रमुख उद्देश्य ही है जैसे–जीविकोपार्जन का उद्देश्य, नागरिकता का प्रशिक्षण, बौद्धिक विकास के लिए शिक्षा, भविष्य के लिए शिक्षा एवं चरित्र निर्माण का उद्देश्य, वातावरण के अनुकूलन का उद्देश्य शारीरिक विकास का उद्देश्य, जीवन को पूर्णता प्रदान करने का उद्देश्य आदि। इन उद्देश्यों का निर्धारण विभिन्न विद्वानों, दार्शनिकों, समाज सुधारकों तथा शिक्षा शास्त्रियों ने व्यक्ति तथा समाज की आवश्यकताओं को ध्यान में रखते हुए किया गया है।

3.3 जीविकोपार्जन का उद्देश्य या व्यवसायिक उद्देश्य

शिक्षा के जीवकोपार्जन का उद्देश्य या व्यवसायिक उद्देश्य को हम अन्य कई नामों से पुकारते हैं। जैसे– Blue Jacket Aim, White Collar Aim, Bread and Butter Aim तथा Selfufficiency Aim आदि। इस सभी उद्देश्यों का मूलभूत उद्देश्य बालक को इस दृष्टि से सक्षम बनाना कि वह अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं कर सके और इसके लिए उसे किसी अन्य पर निर्भर न रहना पड़े। प्रत्येक व्यक्ति जब शिक्षा ग्रहण करता है तो उसके पश्चात वह अपनी रोटी, कपड़ा और आवास की आवश्यकता को संतुष्ट करना चाहता है और आज के भौतिकवादी युग में यह और आवश्यक समझा जाने लगा है। आज हम सिर्फ देश को ही आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न नहीं बनाना चाहते हैं वरन व्यक्ति को भी आर्थिक कुशलता देना चाहते हैं जिससे वह स्वयं को तो सम्पन्न बना ही ले, साथ ही उस समाज की समृद्धि व सम्पन्नता में भी योगदान दे जिसका कि वह सदस्य है।

जीवकोपार्जन के उद्देश्य का अभिप्राय है कि व्यक्ति को शिक्षा के द्वारा इतना समर्थ बनाया जाय कि वह अपनी भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सके व अपना जीवन निर्वाह स्वयं कर सके। परन्तु हमें इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि हम बालक को जिस भी व्यवसाय के लिए प्रशिक्षित कर रहें हैं बारक उसके योग्य है अथवा नहीं और उसकी रूचि उस व्यवसाय में है या नहीं। वास्तव में बालक की योग्यता, रूचि, क्षमता व अभिवृत्ति को ध्यान में रखकर ही उसे व्यवसायिक शिक्षा प्रदान की जानी चाहिए, साथ ही किसी भी व्यवसायिक शिक्षा को ग्रहण करने के पश्चात बालक को आर्थिक दृष्टि से आत्मनिर्भर अवश्य होना चाहिए। वास्तव में एक अच्छी शिक्षा वही है जो न सिर्फ बालक के व्यक्तित्व का विकास करती है वरन उसे इस योग्य भी बनाती है कि वह समाज की सम्पन्नता में अपना कुछ योगदान दे सके।

आदि काल से लेकर आज तक सभी लोगों ने जीवकोपार्जन के उद्देश्य के सम्बन्ध में अपनी सकरात्मक राय अभिव्यक्त की है। प्रसिद्ध दार्शनिक विचारधारा यथार्थवाद भी यह मानता है कि शिक्षा में प्रथम स्थान व्यवसायिक उद्देश्य को दिया जाना चाहिए। इसके अलावा जिन विचारकों ने व्यावसायिक उद्देश्य का समर्थन किया है उन्होंने विभिन्न प्रकार से इसे परिभाषित करने का प्रयास किया है।

जान डीवी के अनुसार "यदि एक व्यक्ति अपनी जीविका नहीं कमा सकता तो इस बात का गम्भीर भय है कि वह अपने चरित्र का पतन करे और दूसरों को हानि पहुँचाए।"

स्पेन्सर की रिपोर्ट के अनुसार "किसी भी व्यवसाय के लिए तैयार करना हमारी शिक्षा का प्रमुख अंग है।"

महात्मा गांधी के अनुसार "सच्ची शिक्षा को बालक के लिए बेरोजगारी के विपरीत एक बीमे के रूप में होना चाहिए।"

डॉ. जाकिर हुसैन के अनुसार, "राज्य का सर्वप्रथम उद्देश्य होगा कि वह अपने नागरिकों को किसी लाभदायक कार्य के लिए समाज के किसी निश्चित कार्य के निमित्त शिक्षित करें।"

भारतवर्ष में महात्मा गाँधी व जाकिर हुसैन द्वारा बेसिक शिक्षा योजना पद्धति पर बहुत बल दिया गया चूँकि इनका प्रयोग भी बालक को किसी व्यवसाय के लिए तैयार करना था और प्रारम्भ से ही उसमें हस्त कलाओं के प्रति आस्था उत्पन्न करना था। वास्तव में यह शिक्षा इस कारण भी अनिवार्य हैं कि यह बालक को गलत कार्य व अनैतिक कार्य करने से रोकती है। जब व्यक्ति की आर्थिक जरूरतें पूरी नहीं हो पाती तो सम्भावना यह होती है कि वह गलत कार्य करने की दिशा में मुड़ जाएं। इस कारण अप्रत्यक्ष रूप से व्यवसायिक शिक्षा का उद्देश्य हमें सही रास्ते का अनुपालन करने की शिक्षा देना है। इस उद्देश्य के क्या लाभ हैं ? अथवा इसके पक्ष में क्या विचारधाराएं हैं ? तथा इसकी क्या कमियाँ हैं आदि के सम्बन्ध के विद्धानों ने विभिन्न तर्क दिए हैं।

3.3.1 उद्देश्य के पक्ष में तर्क

विद्वानों ने जीवकोपार्जन के उद्देश्य को प्रमुख स्थान दिया है। इस मत के समर्थकों ने इसके पक्ष में अनेक तर्कों को प्रतिपादित किया। इन विद्वानों के अनुसार– 1. वह शिक्षा किस काम की है जिसको प्राप्त करके व्यक्ति अपनी प्राथमिक आवश्यकताओं को पूरा न कर सके। यथार्थवादी सिद्धांत एवं उपयोगी प्रवृत्तियों को ध्यान में रखते हुए शिक्षा का उद्देश्य जीवकोपार्जन अथवा व्यवसायिक होना चाहिए जिससे व्यक्ति किसी भी व्यवसाय के लिए तैयार हो जाए।

2. मनुष्य की आर्थिक उन्नति पर ही उसकी अन्य प्रकार की उन्नति

निर्भर करती है। अतः जीवकोपार्जन का उद्देश्य शिक्षा में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

3. जिस व्यक्ति की आर्थिक दशा अच्छी होती है उसका समाज में भी सम्मान होता है और वह सुख तथा शांति का जीवन भी व्यतीत करता है।

4. अमेरिका में इसी उद्देश्य को स्वीकार किया गया है। वहाँ के स्कूलों में व्यवसायिक निर्देशन का पूर्ण प्रबन्ध किया जाता है। यही नहीं वहाँ पर बालकों की रूचियों की तथा क्षमताओं को जानने के लिए भिन्न–भिन्न प्रकार की मनौवैज्ञानिक परीक्षाओं का निर्माण किया जाता है जिनके आधार पर प्रत्येक विद्यार्थी अपने–अपने पाठ्य विषयों का चयन अपने आगामी जीवन में चुनने वाले व्यवसाय के अनुसार करता है।

5. जीवकोपार्जन अथवा व्यवसायिक उद्देश्य से व्यक्ति तथा राष्ट्र दोनों की उन्नति होती है। फलस्वरूप वहाँ की जनता धन–धान्य से परिपूर्ण हो जाती है। वहाँ प्रत्येक व्यक्ति अपनी उन्नति के साथ–साथ राष्ट्र की भी यथाशक्ति सेवा करता है। इससे व्यक्ति तथा राष्ट्र दोनों उन्नति के षिखर पर चढ़ते रहते हैं। ध्यान देने की बात है कि जिस राष्ट्र की जनता को व्यावसायिक शिक्षा नहीं दी जाती है, वहाँ बेरोजगारी, भुखमरी और बीमारी आदि भयंकर रूप धारण कर लेती है। इससे व्यक्ति तथा राष्ट्र रसातल की ओर बढ़ते रहते हैं। ऐसी दशा में व्यक्ति तथा राष्ट्र दोनों की उन्नति के लिए व्यवसायिक उद्देश्य को महत्वपूर्ण स्थान देना परम आवश्यक है।

6. जिस राष्ट्र में अधिक से अधिक इंजीनियर डाक्टर तथा कुशल व्यवसायी होते हैं उसको समृद्धशाली राष्ट्र कहते हैं। परन्तु यह उसी समय हो सकता है जब शिक्षा में व्यवसायिक उद्देश्य को अपनाया जाए।

7. शिक्षा के अन्य उद्देश्य भले ही रहें परन्तु इसका एक प्रमुख सिद्धांत आर्थिक समस्याओं को सुलझाने की शक्ति प्रदान करना आशय होना चाहिए। महात्मा गांधी ने इसी सिद्धांत को दृष्टि में रखकर 'बेसिक शिक्षा' का आविष्कार किया था। जिससे शिक्षा आत्म निर्भर बन जाए और समाप्त करने के समय तक बालक इस योग्य बन जाए कि वह अपने भावी जीवन की आर्थिक कठिनाइयों का सफलतापूर्वक सामना कर सके। गांधी जी ने एक स्थान पर लिखा है– "सच्ची शिक्षा को बालक और बालिकाओं के लिए बेकारी के विरूद्ध एक प्रकार की सीमा होनी चाहिए।"

3.3.2 विपक्ष में तर्क

कतिपय विद्वानों का विचार है कि शिक्षा के व्यवसायिक उद्देश्य को शिक्षा में बहुत अधिक महत्व देने से मानव और पशु में कोई अन्तर नहीं रह जाता चूँकि जिस प्रकार पशु के जीवन का लक्ष्य सिर्फ भोजन करना है, वही लक्ष्य मानव के जीवन का हो जायेगा और भी कई अन्य कारण हैं जिसके परणामस्वरूप शिक्षाविद् शिक्षा के उद्देश्य की आलोचना करते हैं। उनका तर्क है कि–

1. व्यवसायिक उद्देश्य मानव की शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्ति तो करता है, परन्तु उसकी मानसिक तथा अध्यात्मिक शक्तियों की अवहेलना करता है। शारीरिक विकास के साथ–साथ मनुष्य का मानसिक विकास भी आवश्यक है। जो व्यक्ति अपने व्यवसाय के अतिरिक्त जीवन की अन्य किसी बात में रूचि नहीं रखता है उसे मानसिक तथा नैतिक दृष्टि से हीनतर ही समझा जाएगा।

2. व्यवसाय की सफलता से मानव की आर्थिक दशा तो बहुत अच्छी हो सकती है, परन्तु उसका वास्तविक सुख मिलना कोई जरूरी शर्त नहीं है। सच्चा सुख और शांति तो केवल आत्मा की शांति से ही मिलती है।

3. व्यवसायिक शिक्षा प्राप्त करके व्यक्ति कृत्रिम वातावरण में आ जाता है उसका जीवन नीरस बन जाता है।

4. रेमण्ट के अनुसार लोकतंत्रवादी समाज में यह तय करना अत्यंत कठिन है कि अमुक व्यक्ति अपने भावी जीवन में अमुक व्यवसाय को अपनाएगा। ऐसी दशा में जीविकोपार्जन को ही सब कुछ समझकर शिक्षा प्रदान करना कठिन है। इसका कारण यह है कि यह उद्देश्य व्यक्तियों में प्रतिदन्ति, स्पर्धा तथा द्वेष की भावना को उत्पन्न करता है। इससे मानवीय गुणों का अन्त हो जाता है।

5. अच्छी शिक्षा व्यक्ति को उसके अवकाश का सदुपयोग करना भी सिखाती है। यदि अपने व्यवसाय में फुर्सत पा जाने के पश्चात व्यक्ति असंगत क्रियाओं में संलग्न हो जाता है तो उसकी शिक्षा एकांगी भी कही जाएगी। व्यवसायिक उद्देश्य का यह बड़ा दोष है कि यह व्यक्ति को उसके अवकाश काल का सदुपयोग करना नहीं सिखाती।

6. धन कमाने के चक्कर में पड़कर व्यक्ति संगीत, कला तथा साहित्य से भी कोई लाभ नहीं उठा पाता। इसमें उसका जीवन तो नीरस हो ही जाता है, साथ ही साथ इन सबका विकास भी नहीं हो पाता।

7. शिक्षा जगत में महान दार्शनिक प्लेटो ने इस उद्देश्य का खण्डन करते हुए लिखा है– "वह शिक्षा अनुदार है जिसका उद्देश्य बुद्धि और न्याय की ओर ध्यान न देकर केवल धन या शारीरिक बल की प्राप्ति है।"

8. व्यवसायिक उद्देश्य मनुष्य को रोटी कमाने के योग्य तो अवश्य बना सकता है, परन्तु केवल रोटी कमाने से ही मनुष्य, मनुष्य नहीं बन जाता। यह हो सकता है कि व्यक्ति एक बहुत बड़ा डाक्टर अथवा इंजीनियर बन जाए परन्तु उसके डाक्टर अथवा इंजीनियर बन जाने का यह अर्थ नहीं है कि वह एक बहुत बड़ा मनुष्य बन गया हो। मनुष्य को मनुष्य बनने के लिए ऐसे अनेक उच्च आदर्शों को अपनाने की आवश्यकता पड़ती है जिनसे उसका चारित्रिक, बौद्धिक तथा आध्यात्मिक विकास हो सके।

9. यदि जीवकोपार्जन अथवा व्यवसायिक उद्देश्य को ही शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य मान लिया जाए तो शिक्षा स्वयं साध्य न होकर साधन बन जाती है। इससे शिक्षा महत्वहीन हो जाती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि विद्वानों द्वारा शिक्षा के व्यवसायिक उद्देश्य की काफी आलोचना की है किन्तु व्यवसायिक उद्देश्यों के विपक्ष में दिये गये उनके तर्कों से यह आशय नहीं लगाना चाहिए कि शिक्षा से व्यवसायिक प्रशिक्षण का सम्बोध हटा देना चाहिए वरन इसका अभिप्राय यह है कि व्यवसायिक उद्देश्य को आवश्यक स्थान जरूर देना चाहिए परन्तु इसे शिक्षा के एकमात्र उद्देश्य के रूप में नहीं देखना चाहिए। कोठारी शिक्षा आयोग ने इसलिए कार्यानुभव (Work Experience) को दस वर्षीय स्कूल शिक्षा का अभिन्न अंग माना है और उच्च माध्यमिक शिक्षा के व्यवसायीकरण का सुझाव दिया है।

आज के युग में जब बेरोजगारी चारो ओर सुरसा का मुँह फैलाए खड़ी है और हमारा सामाजिक जीवन आर्थिक दृष्टि से दिन प्रतिदिन पिछड़ता जा रहा है तो हमें इस उद्देश्य को स्वीकार करना होगा। स्वामी विवेकानन्द ठीक ही कहा था– "अपनी आँखें खोलो और देखो–भारत भूमि से भोजन प्राप्ति हेतु कितनी करूण पुकार आ रही है। क्या तुम्हारी शिक्षा इस आवश्यकता की पूर्ति कर सकती है। वह जो व्यक्ति को जीवन संघर्षों में खड़ा होने के योग्य नहीं

बनाती है, क्या उसका नाम मात्र के लिए भी उपयोग है ?"

3.3.3 विभिन्न शिक्षा आयोग और शिक्षा का जीवकोपार्जन का उद्देश्यः–

भारत वर्श में स्वतंत्रता के पश्चात शिक्षा में सुधार लाने हेतु जितने भी आयोग संगठित किये गये उन्होंने भी व्यवसायिक शिक्षा के सम्बन्ध में विचार व्यक्त किया किये जिनका उल्लेख इस प्रकार से है।

(अ) विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग (1948)

यह आयोग विश्वविद्यालय शिक्षा में वांछनीय सुधार लाने हेतु स्थापित किया गया था। व्यवसायिक शिक्षा के क्षेत्र में इस आयोग ने निम्न सुझाव दिये–

1. व्यवसायिक दक्षता, सामाजिक उत्तरदायित्व व सामाजिक एवं मानवीय मूल्यों तथा संम्बन्धों को समझना।

2. कृषि शिक्षा उन लोगों के द्वारा दी जाए जिन्हें कृषि का व्यवहारिक ज्ञान हो।

3. देश की वर्तमान आवश्यकताओं और उद्योगों की माँग के अनुरूप इंजीनियरिंग व तकनीकी शिक्षा के पाठ्यक्रम में सुधार व विस्तार किया जाए।

4. सैद्धांतिक ज्ञान प्राप्त छात्रों को व्यवहारिक प्रशिक्षण हेतु औद्योगिक संस्थाओं में प्राथमिकता दी जानी चाहिए।

(ब) माध्यमिक शिक्षा आयोगः–(1953)

इसे मुदालियर आयोग के नाम से भी जाना जाता है। इन्होंने माध्यमिक शिक्षा के संदर्भ में व्यवसायिक शिक्षा के संगठन पर जोर दिया और जो विचार व्यक्त किये वे इस प्रकार हैं–

1. हायर सेकेण्डरी के बाद उच्च अध्ययन हेतु पालीटैक्निक संस्थाए स्थापित की जाएं जहाँ दो अधिक वर्षों को प्राविधिक शिक्षा की व्यवस्था हो।

2. उच्चतर माध्यमिक स्तर पर बहुउद्देशीय स्कूल स्थापित किये जाएं जिनमें छात्र अपनी स्वाभाविक रूचि एवं योग्यता का प्रदर्शन कर सकें। ग्रामीण अंचलों में ग्रामीण विश्वविद्यालय खोले जाएं जो कृषि की शिक्षा दे।

3. बड़े नगरों में केन्द्रीय तकनीकी संस्थाएं खोली जाएं।

4. प्राविधिक विद्यालय सम्बंधित उद्योगों के समीप खोल जाए जिनसे व्यवहारिक प्रशिक्षण में सहयोग लिया जा सके।

5. सभी उद्योगों पर औद्योगिक शिक्षा शुल्क लगाया जाय और उसे प्राविधिक शिक्षा के विस्तार पर व्यय किया जाए।

(स) कोठारी शिक्षा आयोग (1966):–

इस आयोग ने शिक्षा के विभिन्न पक्षों का अवलोकन किया और सभी स्तरों के लिए सुझाव दिये। इसके द्वारा दिये गये मुख्य सुझाव निम्न हैं–

1. औद्योगिक या व्यवसायिक शिक्षा का सभी स्तरों पर विस्तार किया जाए।

2. व्यवसायिक शिक्षा का पाठ्यक्रम स्वयं में पूर्ण हो जिससे छात्रों को उच्च शिक्षा संस्थाओं में शिक्षा ग्रहण करने में असुविधा न हो।

3. औद्योगिक प्रशिक्षण संस्थाओं में सर्वेक्षण के आधार पर प्रशिक्षण की सुविधाओं का अधिक से अधिक विस्तार किया जाए।

4. इस शिक्षा को पत्राचार पाठ्यक्रमों, अल्पकालीन पाठ्यक्रमों व संक्षिप्त सघन पाठ्यक्रमों के द्वारा देने की व्यवस्था की जाए।

5. नये पालीटैक्निक कालेजों की स्थापना की जाए।

(द) राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986):–

1. शिक्षा को व्यवसायिक दृष्टि से सफल बनाने हेतु यह आवश्यक है कि इसे सुनियोजित ढंग से क्रियान्वित किया जाए तथा मांग व पूर्ति के मध्य विसंगतियों को समाप्त किया जाए व वैयक्तिक व्यवसायिक क्षमता को विकसित किया जाए।

2. व्यवसायिक शिक्षा माध्यमिक स्तर के वाद या कक्षा 8 के वाद प्रारम्भ की जाए और अच्छा हो कि व्यवसायिक प्रशिक्षण की प्रौद्योगिकी प्रशिक्षण संस्थानों से जोड़ा जाए।

3. बालक के स्वास्थ्य प्रशिक्षण दिया जाए व स्वरोजगार हेतु उसमें अभिवृत्ति, ज्ञान व क्षमताओं को विकसित किया जाए।

4. व्यावसायिक संस्थानों को स्थापित करने की जिम्मेदारी सरकार की है व सरकार ही स्त्रियों, शारीरिक दृष्टि से कमजोर, ग्रामीण व आदिवासी क्षेत्रों में रोजगार सुविधाओं के लिए जिम्मेदार हैं।

5. व्यावसायिक दृष्टि से स्नातक डिग्री प्राप्त व्यक्तियों को प्रोन्नति के पूर्ण अवसर दिये जाएंगे।

6. वह लोग जो किन्हीं कारणवश अपनी शिक्षा को जारी नहीं रख पाये हैं उनके लिए अनौपचारिक व गतिशील तथा आवश्यकताओं पर आधारित व्यवसायिक पाठ्यक्रम उपलब्ध कराया जाए।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

प्रश्न 1:– शिक्षा के अन्य प्रमुख उद्देश्य कौन–कौन से हैं?

.....

.....

प्रश्न 2:– Blue Jacket aim के नाम से शिक्षा के किस उद्देश्य को जाना जाता है ?

.....

.....

3.4 नागरिकता का प्रशिक्षण

प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी राष्ट्र व समाज के सदस्य के रूप में जन्म लेता है। यह राष्ट्र उसे अपने सदस्य होने के नाते कुछ अधिकार प्रदान करता है और अपने नागरिकों से कुछ कर्तव्य निर्वाह की भी अपेक्षा करता है और व्यक्ति एक कुशल सामाजिक नागरिक के रूप में राष्ट्र व समाज के कार्यों में अपना सक्रिय योगदान देता है। प्रजातंत्र में प्रत्येक नागरिक का यह कर्तव्य है कि वह समाज से अनुकूलन कर अपने कर्तव्यों का पालन करे।

माध्यमिक शिक्षा आयोग के शब्दो में "लोकतंत्र में नागरिकता एक अत्यन्त श्रम, साहस और चुनौती पूर्ण दायित्व है जिसके लिए प्रत्येक नागरिक को सावधानी से प्रशिक्षित किया जाना चाहिए । आज समस्त विश्व इस प्रकार अंतः सम्बंधित है कि कोई भी राष्ट्र एकांकी रहने का साहस नहीं कर सकता। अतः राष्ट्रीय नागरिकता के समान ही विश्वनागरिकता की भावना का विकास

किया जाना महत्वपूर्ण है।"

कुछ चिंतकों का विचार है कि नागरिकता का उद्देश्य व्यक्ति को वष्हत समझ का परिचायक है जिसमें वह समाज व राज्य के प्रति अपने कर्तत्य व अधिकारों का निर्वाह करता है। हमें नागरिकता के उद्देश्य का यह अभिप्राय कदापि नहीं लगाना चाहिए कि इसमें व्यक्ति राज्य द्वारा पारित अधिनियमों का पालन करता है व अपने कर्तव्यों का निर्वाह करता है वरन इसमें राज्य की सकारात्मक आलोचना करता है व अपनी सृजनात्मक भूमिका अदा करता है। नागरिकता के उद्देश्य का अभिप्राय है व्यक्ति में नैतिक, सामाजिक, व बौद्धिक गुणों का विकास उसकी क्षमताओं के अनुकूल करना।

माध्यमिक शिक्षा आयोग का भी यही विचार है कि "भारत ने अभी हाल में राजनैतिक स्वतंत्रता प्राप्त की है और उसने पर्याप्त विचार विमर्श के पश्चात स्वयं को धर्म–निरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य घोषित किय है। इसलिए शिक्षा द्वारा नागरिकों में ऐसी आदतों, अभिरूचियों और चारित्रिक गुणों का विकास किया जाए जिससे कि वे लोकतांत्रिक के दायित्वों का भली प्रकार से निर्वाह कर सकें और विघटनकारी प्रविति्तयों को रोक सकें जो व्यापक, राष्ट्रीय एवं धर्मोपेशी दृष्टिकोण के विकास में बाधक हैं।"

स्पार्टा व जर्मनी में सबसे पहले नागरिकता की शिक्षा का उद्गम हुआ। यहाँ शिक्षा का उद्देश्य था राज्य के लिए लड़ना व उसके अस्तित्व को बनाए रखना। उस समय इन देशों में मानव का विकास नहीं किया जाता था वरन नागरिकों का निर्माण किया जाता था जो सच्चे अर्थों में राज्य का कल्याण करें। परन्तु नागरिकता का प्रशिक्षण वहीं तक सीमित नहीं रहा वरन नागरिकों का निर्माण किया जाता था जो सच्चे अर्थों में राज्य का कल्याण करें। परन्तु नागरिकता का प्रशिक्षण वहीं तक सीमित नहीं रहा वरन यह प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था की भी एक महत्वपूर्ण आवश्यकता बन गई। चूँकि प्रजातंत्र हेतु योग्य ईमानदार व आज्ञाकारी नागरिक जरूरी होते हैं और शिक्षा का यह उद्देश्य इस दिशा में सक्रिय भूमिका अदा करता है। यह उद्देश्य शिक्षा की समाजशास्त्रीय व मानवीय प्रवृत्तियों को भी संतुष्ट करता है। चूँकि यह प्रवृत्तियाँ बालक में ऐसी सामाजिक व नागरिक दृष्टिकोण उत्पन्न करना चाहती हैं कि नागरिक मानवीय सम्बंधों के महत्व को समझने व अपने दायित्वों का निर्वाह करें। विभिन्न शिक्षा विदों ने इस उद्देश्य के सम्बन्ध में निम्न विचार प्रस्तुत किये हैं–

अरस्तू के अनुसार "हमारा उद्देश्य है उदार शिक्षा के द्वारा 'अच्छे नागरिकों' को उत्पन्न करना जो स्वामिभक्त, आज्ञाकारी, सहिश्णु व न्यायप्रिय है।"

एच. एच. हार्न का विचार है– "नागरिकता राज्य में मनुष्य के स्थान का निर्धारण है क्योंकि राज्य समाज की एक स्थाई संस्था है और क्योंकि मनुष्य को सदैव ही अपने साथियों के साथ अच्छे संगठित सम्बंधों की सुरक्षा करते हुए जीना चाहिए। अतः आदर्श शैक्षिक क्षेत्र से नागरिकता को कभी जोड़ा नहीं जा सकता।"

महात्मा गाँधी के अनुसार "शिक्षा का उद्देश्य अपने छात्रों को राज, देश व ईश्वर के प्रति वफादार बनाना।"

प्लेटो के अनुसार– "केवल नागरिकता की शिक्षा ही वह शिक्षा है जो अपने चरितार्थ करती है।"

प्लेटो ने शिक्षा के एक व्यक्तिगत कार्यक्रम की चर्चा की है जिसके द्वारा अच्छे नागरिकों का निर्माण किया जा सके। इन्होंने नागरिकों को तीन श्रेणियों में विभक्त किया है–

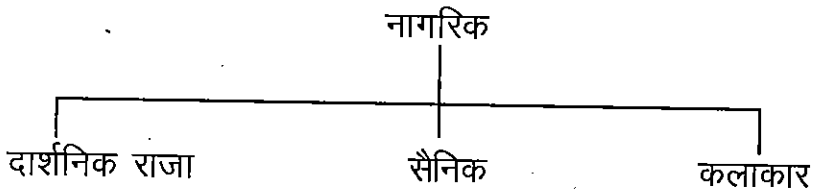

- दार्शनिक राजा जिसे प्लेटो ने फिलोसफर किंग की संज्ञा प्रदान की है उसका विचार है कि यह देश के सुधार के कार्यों को करते हैं।
- दूसरे सैनिक हैं जिनका कार्य देश में शान्ति बनाए रखना है।
- कलाकार का कार्य जीवनोपयोगी सामग्री का उत्पादन करना।

नागरिकता के उद्देश्य को ध्यान में रखकर जब हम नागरिकों का विकास करेंगे तो हमें निम्न पक्षों को ध्यान में रखकर शैक्षिक कार्यक्रम बनाना होगा–

- बालक के व्यक्तित्व के आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक व नैतिक पहलू का विकास करना।
- बालक के विचार व अभिव्यक्ति शक्ति का पूर्ण विकास करना।
- शिक्षा को बालक की अन्तर्निहित क्षमताओं से सम्बन्धित करना।

- बालक को नागरिकता की शिक्षा देने हेतु जो भी कार्यक्रम बनाए जाएं उसमें अध्यापक व माता–पिता दोनो का सहयोग हो।
- नागरिकता के प्रशिक्षण के लिए विद्यालय में व्यवहारिक सुविधाएं हों।
- नागरिकों को साक्षर बनाने का प्रयास हो अथवा निरक्षरता का उन्मूलन किया जाए।
- बालकों के अन्दर निहित संकुचित दृष्टिकोण, स्वार्थपूर्ण भावना व दलगत राजनीति को समाप्त करना।
- मानव की आधारभूत आवश्यकताओं को पूर्ण करना (रोटी, कपड़ा, मकान) चूँकि अच्छी नागरिक भावना के विकास हेतु यह आवश्यक है।
- नागरिकता का सही प्रशिक्षण यदि हम बालक को प्रदान करना चाहते हैं तो हमें उसे निम्नलिखित चार दृष्टिकोणों पर प्रशिक्षित करना होगा–

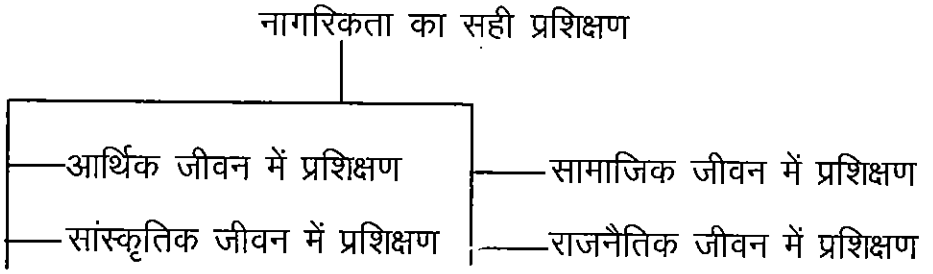

3.4.1. नागरिकता के उद्देश्य के पक्ष में तर्क

इस प्रकार उपरोक्त वर्णन के आधार पर इस उद्देश्य के पक्ष में विद्वानों का कथन है कि जनतंत्र की सफलता के लिए नागरिकता की शिक्षा परम आवश्यक है। यदि नागरिक अच्छे हैं तो जनतंत्र अपने आदर्शों, मूल्यों तथा लक्ष्यों को प्राप्त कर सकेगा अन्यथा नहीं। इस दृष्टि से नागरिकता का उद्देश्य एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है। जैसा कि प्लटो ने लिखा है– "केवल नागरिकता की ही शिक्षा ऐसी शिक्षा है, जो अपना नाम चरितार्थ करती है। इसके अतिरिक्त अन्य प्रकार की शिक्षा जिसका उद्देश्य धन, शारीरिक बल अथवा बुद्धि तथा न्याय से अलग दक्षता को प्राप्त करना है, तुच्छ तथा अनुदार है, एवं किसी भी प्रकार से शिक्षा कहलाने के योग्य नहीं है।"

3.4.2. नागरिकता के उद्देश्य के विपक्ष में तर्क

नागरिकता के उद्देश्य के विपक्ष में केवल एक यही तर्क है कि

नागरिकता की शिक्षा पर अत्यधिक बल देने से संकुचित राष्ट्रीयता की भावना के विकसित होने का भय है। इस तर्क की पुष्टि में जर्मनी की शिक्षा का उदाहरण प्रस्तुत किया जा सकता है। हिटलर के समय में नागरिकता की शिक्षा ने वहाँ की जनता में यह भावना पर दी थी कि संसार में केवल जर्मनी के निवासी ही सर्वश्रेष्ठ हैं। परिवर्तन परिणामस्वरूप द्वितीय विश्व युद्ध का जन्म हुआ, जिसके भयंकर परिणाम से संसार पूर्णतया अवगत है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि नागरिकता का प्रशिक्षण शिक्षा का एक अति महत्वपूर्ण उद्देश्य है किन्तु इसे शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य नहीं स्वीकारा जा सकता है।

3.5 बौद्धिक विकास के लिए शिक्षा अथवा शिक्षा का ज्ञानात्मक उद्देश्यः–

शिक्षा के इस उद्देश्य का प्रतिपादन सुकरात, अरस्तू, दान्ते, कमेनियस तथा बेकन आदि आदर्शवादी सम्प्रदाय के विद्वानों ने किया है। इस उद्देश्य के अनुसार ज्ञान के बल से ही व्यक्ति का विकास होता है तथा वह अपने जीवन में सुख और शांति का अनुभव करता है। इस दृष्टि से शिक्षा के बौद्धिक विकास का उद्देश्य शिक्षा जगत में महत्वपूर्ण स्थान रखता है।

जहाँ तक भारतीयों का सम्बन्ध है इस उद्देश्य में विश्वास भारतवर्ष में प्राचीन काल से ही चला आ रहा है। गुरूकुल में रहने वाले गुरू भी इस उद्देश्य में विश्वास रखते थे। इस उद्देश्य से तात्पर्य है कि बालक को सभी विषयों का ज्ञान करना चाहिए और शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य भी बालक के ज्ञान रूपी चक्षुओं को खोलना होना चाहिए। शिक्षा वह साधन है जो बालक के मस्तिष्क को ज्ञान के भण्डार से भरती है। ज्ञानार्जन ही शिक्षा का शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य हो, इसके सम्बन्ध में विचारकों की राय निम्न है–

प्लेटो के अनुसार– "वास्तविक ज्ञान इंद्रियजन्य नहीं होता, चूँकि हमारी इंद्रियाँ हमें धोखा दे सकती हैं। वास्तविक ज्ञान विचारों या मानसिक दृष्टि में निहित होता है। ज्ञान विचारों की उत्पत्ति है।"

सुकरात के अनुसार– "ज्ञान ही पवित्रता है।"

अरस्तू के अनुसार– "ज्ञान ही शक्ति है।"

कमेनियस का कहना है– "ज्ञान, ज्ञान के लिए है। अतः स्कूल का कार्य बालक को ज्ञान प्रदान करना है।"

सोफिस्टों के अनुसार– "ज्ञान प्रगति है।"

वास्तव में सभी शिक्षाविद सभी प्रकार के अच्छे व्यवहार की कुँजी ज्ञान को मानते हैं। ज्ञान ही वह शक्ति है जो हमारे मानसिक विकास में सहयोग देती है। ज्ञान ही सत्य की खोज करता है व मनुष्य को त्रुटियों से बचाता है। इस प्रकार की अवधारणा आदर्शवादी विचारधारा पर आधारित है। चूँकि आदर्शवाद सत्य की खोज पर बल देता है। इस कारण वह शिक्षा के उद्देश्य को महत्वपूर्ण स्थान देता है।

परन्तु विशेष ध्यान देने वाली बात यह है कि शिक्षा के द्वारा ज्ञान के केवल सैद्धान्तिक पक्ष का ही विकास नहीं होना चाहिए। चूँकि सैद्धांतिक ज्ञान अनुपयोगी व व्यर्थ होता है। आवश्यकता इस बात की भी है कि शिक्षा के माध्यम से बालक को ज्ञान का व्यावहारिक प्रयोग भी बताया जाए इस सम्बन्ध में रूसो ने ठीक ही कहा है–

"मेरा उद्देश्य बालक के मस्तिष्क को ज्ञान से सजाना मात्र नहीं है वरन उसे यह भी सिखाना है कि वह जब भी आवश्यक हो ज्ञान का प्रयोग कर सके।"

जान एडम्स ने इस उद्देश्य का अर्थ बौद्धिक प्रशिक्षण माना है। उसने बौद्धिक प्रशिक्षण के दो अर्थ बताए हैं।

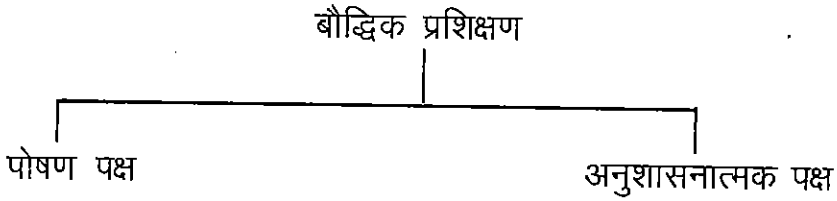

उनका मानना था कि मानव शरीर को जीवित रखने हेतु पोषण की आवश्यकता होती है, उसी प्रकार मानव के मस्तिष्क को जीवित रखने हेतु ज्ञान की आवश्यकता होती है। मनुष्य इस ज्ञान को धीरे–धीरे आत्मसात करता है व अपने मस्तिष्क का एक अंग बना लेता है। यह ज्ञान मानव मन को प्रशिक्षित करता है व उसे सीमाबद्ध करता है। अतः इसका अनुशासनात्मक महत्व भी होता है।

वास्तव में ज्ञान का सीधा तात्पर्य मानसिक शक्ति है। ज्ञान का संचय हमें मानसिक दृष्टि से पल्लवित करता है और हमारा मस्तिष्क विशाल ज्ञान सागर तथा गहन ज्ञान कूप बनता जाएगा और हमारे मस्तिष्क की समस्त शक्तियाँ– विचार, कल्पना, तर्क तथा स्मरण शक्ति भी विकसित होंगी। मानव

बुद्धि को क्रियात्मक रूप देकर अपने ज्ञान का समुचित प्रयोग कर पाता है। वास्तविक ज्ञान केवल तथ्यों को रटना या उनका प्रश्नीकरण करना मात्र ही नहीं है वरन वह एक क्षमता है, शक्ति है जिसके द्वारा हमारे अन्दर उचित कार्य करने की योग्यता उत्पन्न होती है। ज्ञान को प्राप्त करने के पश्चात व्यक्ति उचित अनुचित की परख करने लगता है और उचित मार्ग की ओर उन्मुख होकर सद्चरित्रता को प्राप्त करता है। ज्ञान के द्वारा हमारे मस्तिष्क का परिमार्जन होता है और हृदय विशाल होता है। फिर भी बहुत से विचारक इस उद्देश्य को शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य बनाने के पक्ष में नहीं है। अब हम इसी बात पर चर्चा करेंगे कि शिक्षा के बौद्धिक विकास के उद्देश्य के पक्ष और विपक्ष में क्या तर्क दिये जाते हैं।

3.5.1. ज्ञानात्मक उद्देश्य के पक्ष में तर्क

- ज्ञान सुख व शान्ति की कुंजी है। व्यक्ति ज्ञानार्जन जब अपने निजी 'स्व' को संतुष्ट करने हेतु करता है तो उसे उससे खुशी, शक्ति व शांति मिलती है और यह ज्ञानार्जन उसे आत्म नियंत्रण भी देता है। जब ज्ञानार्जन के माध्यम से व्यक्ति कुछ प्राप्त करना चाहता है तो वह इस संसार में अपनी प्रभुसत्ता स्थापित करता है। ज्ञानी व्यक्ति इस संसार के लिए पूजनीय होता है।
- यह मनुष्य की प्रगति का आधार है।
- सुकरात के अनुसार "जिस व्यक्ति को सच्चा ज्ञान है, वह सद्गुणी के सिवाय और कुछ नहीं हो सकता है।"
- हुमायूँ कबीर के अनुसार "शिक्षा का उद्देश्य भौतिक संसार तथा समाज के विचारों व आदर्शों का ज्ञान प्राप्त करना है। इस प्रकार का ज्ञान प्राप्त करना निजी उन्नति तथा समाज सेवा हेतु आवश्यक है।"
- यह मनुष्य को पशुओं से भिन्न करता है। चूँकि पशुओं के पास ज्ञान नहीं होता है व मानव के पास ज्ञान होता है।
- यह बालक को समाज के साथ समायोजन करना सिखाता है।
- इसके द्वारा बालक के तर्क, विकास व निर्णय शक्ति का विकास होता है।
- मनुष्य सही–गलत, उचित–अनुचित, कुरूप–सुन्दर के मध्य के अन्तर करना सीख जाता है।

- विज्ञान की सम्पूर्ण खोज ज्ञान ही परिणाम है। इसी के द्वारा मनुष्य तकनीकी व प्रकृति को अपने नियंत्रण में कर सकता है।
- ज्ञान संस्कृति व सभ्यता के विकास में भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। चूँकि ज्ञान के आधार पर ही मनुष्य भौतिक व अभौतिक संस्कृति को सीखता है।
- इसके अर्जन द्वारा मनुष्य अवकाश के समय का सदुपयोग करना सीख जाता है और वह अपना समय व्यर्थ की क्रियाओं में व्यतीत नहीं करता है।
- इसका उपयोगितावादी और आभूषणात्मक दोनों ही दृष्टि से महत्व होता है।
- इसके द्वारा मनुष्य का मानसिक विकास होता है।
- शेक्सपीयर के अनुसार "ज्ञान वह पंख है जिनकी सहायता से हम स्वर्ग की प्राप्ति करते हैं।"

3.5.2. ज्ञानात्मक उद्देश्य के विपक्ष में तर्कः–

- ह्वाइटहैड के अनुसार "केवल ज्ञानी व्यक्ति परमात्मा की पृथ्वी पर सबसे व्यर्थ का अभद्र मनुष्य होता है।"
- एडम्स के अनुसार "ज्ञान पर बल देने से विद्यालय ज्ञान की दुकान व शिक्षकसूचना विक्रेता बन जाता है।
- यह उद्देश्य क्रिया करके सीखने पर बहुत कम महत्व देता है व इसमें स्मृति पर महत्व दिया जाता है।
- यह परम्परागत और आदर्शवादी विचारधारा पर आधारित है।
- इसमें ज्ञान प्रदान करने के साधन के रूप में अध्यापक का महत्व हो जाता व छात्र का महत्व गौण हो जाता है।
- इसका अभूषणात्मक महत्व अधिक है, उपयोगिता का कम।
- सिर्फ मस्तिष्क के विकास पर बल देने के कारण यह एक पक्षीय हो जाता है जबकि यह बात प्रसिद्ध है कि स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मस्तिष्क का निवास होता है।
- यह विशाल जन समूह के लिए उपयोगी नहीं है। चूँकि प्रत्येक बालक

के सीखने व ज्ञानार्जन करने की क्षमता अलग–अलग होती है। इसी कारण इसे अमनोवैज्ञानिक भी कहा जाता है।

- ली के अनुसार, "ज्ञान समझदारी के बिना मूर्खता है। व्यवस्था के विना व्यर्थ है, दया के बिना दीवानापन है, धर्म के बिना मृत्यु है।
- 'फैरार' के अनुसार "ज्ञान समझदारी के साथ विवेक है, व्यवस्था के साथ शक्ति है, दया के साथ भलाई है, धर्म के साथ सद्गुण है, जीवन और शांति है।"

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

प्रश्न 3:– प्लोटो ने नागरिकों को किन–किन श्रेणियों में विभाजित किया है?

3.6 भविष्य के लिए शिक्षा:–

शिक्षा का एक सर्वप्रमुख उद्देश्य यह भी है कि बालक के भविष्य में समायोजन हेतु उसे प्रशिक्षित किया जाए। शिक्षा इस प्रकार की होनी चाहिए जिसको बालक भावी जीवन में उपयोग में ला सके। अपने भविश्य के जीवन में आने वाली समस्याओं का समाधान कर सके। शिक्षा का उद्देश्य केवल मानव मस्तिष्क में ज्ञान को भरना अथवा उसका बौद्धिक विकास करना ही नहीं है। शिक्षा व्यक्ति के मस्तिष्क में ज्ञान तो भरना चाहती है किन्तु ज्ञान ऐसा होना चाहिए जो व्यक्ति के लिए उपयोगी हो। शिक्षा जहाँ एक ओर व्यक्ति को ज्ञान प्रदान करती है वहीं उसे उसका उपयोग करना भी सिखाती है। जिसके परिणाम स्वरूप व्यक्ति आगे आने वाली समस्याओं का समाधान भली भाँति कर पाता है। यह समस्या किसी भी प्रकार की हो सकती है। यह सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक, शारीरिक एवं व्यवहारिक आदि किसी भी प्रकार की हो सकती है। शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य यह होता है कि वह व्यक्ति को इस प्रकार प्रशिक्षित करे कि वह इस प्रकार की भविष्य में आने

वाली समस्यों का समाधान कर सके।

3.7 चरित्र निर्माण का उद्देश्य

बालकों के चरित्र का निर्माण करना शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य है। प्रत्येक समाज के कुछ अपने आचार विचार और नियम होते हैं। सामान्यतः इन नियमों का पालन करना नैतिकता है और इन नियमों को पालन करने की आंतरिक शक्ति चरित्र है और इस दृष्टि से नैतिकता और चरित्र अभिन्न हैं। एक के अभाव में दूसरे की बात नहीं सोची जा सकती। परन्तु भिन्न–भिन्न अनुशासनों में नैतिकता और चरित्र की भिन्न–भिन्न रूपों में व्याख्या की गई है। मानवषास्त्री समाज सम्मत आचरण को नैतिकता और चरित्र के रूप में लेते हैं। मनोवैज्ञानिक चरित्र को अच्छी आदतों के पुंज अथवा दृढ़ इच्छा शक्ति के रूप में स्वीकार करते हैं। आघात्म शास्त्री इंद्रियनिग्रह और धर्म सम्मत आचरण को ही नैतिकता और एवं चरित्र मानते हैं। साहित्य में समाज द्वारा नियमों के पालन को नैतिकता और मनुष्य के आचार–विचार को चरित्र के रूप में लिया जाता है। वहाँ नैतिकता का पालन न करने वाले का भी अपना चरित्र होता है। उसमें डाकू का भी अपना चरित्र होता है, यह बात दूसरी है उसका चरित्र अच्छा होता है अथवा बुरा।

शिक्षा के क्षेत्र में आज हम नैतिक एवं चारित्रिक विकास की बात करते हैं तो हमारा आशय बच्चों के अपने समाज द्वारा निश्चित आचार–विचार सम्बंधी नियमों का दृढ़ इच्छा शक्ति के साथ पालन करने की ओर प्रवृत्त करने से होता है।

हरर्बाट के अनुसार मानव का आचरण उसकी जन्मजात शक्तियों पर आधारित होने के कारण समाज में अव्यवस्था उत्पन्न करता है। अतः शिक्षा के उद्देश्य यह होना चाहिए कि वह मानव की प्रवृत्तियों का परिमार्जन करे जिससे उसका आचरण नैतिक बन सके। हरबार्ट का विचार है कि बालक जन्म से ही सदाचारी नहीं होता। उस समय उसकी सारी प्रवृत्तियाँ दानवीय होती हैं जिनके वषीभूत होकर वह अनैतिक आचरण ही करता रहता है। बालक का नैतिक विकास करने के लिए उसकी इन दानवीय प्रवृत्तियों का परिमार्जन करना परम आवश्यक है। शिक्षा ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा उसके मन के प्रति प्रेम और पाप के प्रति घृणा उत्पन्न करके उसके अन्दर सदेच्छाएं उत्पन्न की जा सकती हैं तथा उसके अन्दर प्रेम, सहानुभूति, दया सद्भावना तथा न्याय प्रियता आदि सामाजिक एवं नैतिक गुणों को विकसित करके

उसको चरित्रवान बनाया जा सकता है।

हरबर्ट महोदय ने बालकों के चरित्र निर्माण हेतु बालाकों में बहुमुखी रूचियों को उत्पन्न करने तथा उनके षोधित करने पर विशेष बल दिया है। उसका विचार है कि "शिक्षण का महान और अंतिम उद्देश्य सद्गुणों का विकास की धारणा में निहित है। परन्तु शिक्षण द्वारा अंतिम उद्देश्य प्राप्त करने से प्रथम ही बालकों में बहुमुखी रूचियों के विकास पर बल देना चाहिए।

हरबर्ट के इस कथन से स्पष्ट हो जाता है कि बालक के चरित्र के विकास में उसकी रूचियों का विकसित होना परम आवश्यक है। किसी भी बालक अथवा व्यक्ति की रूचियों का विकसित होना परम आवश्यक है। किसी भी बालक अथवा व्यक्ति की रूचियों को देखकर हम कह सकते हैं कि उसका चरित्र कैसा है। ध्यान देने की बात है कि बालक के विचारों तथा उसके आचरणों में गहरा सम्बन्ध होता है। सामान्यतः बालक के आचरणों का निर्माण उसकी रूचियों के अनुसार होता है और रूचियों का निर्माण उसके विचारों के अनुरूप। यदि बालक के विचार शुद्ध होंगे तो उसके आचरण भी शुद्ध होंगे। अतः हरबार्ट ने बालक की रूचियों को पवित्र बनाकर उसका नैतिक विकास करने के लिए शिक्षा को एक महत्वपूर्ण साधना माना है। उनका विचार है कि शिक्षा का कार्य है कि वह बालकों के सम्मुख उच्च विचारों तथा आदर्शों को प्रस्तुत करे जिससे उनके ज्ञान में वृद्धि हो। हरबार्ट के अनुसार ज्ञान विचार की कुंजी है। ज्ञान प्राप्त करने से बालक की चिंतन मनन तथा विवेक आदि शक्तियों का विकास होता है। इन शक्तियों के विकसित होने से वह अच्छे और बुरे आचरणों में अन्तर समझने लगता हैं इसके विपरीत यदि बालक के ज्ञान में वृद्धि नहीं की जाएगी तो उसका मानसिक विकास कुण्ठित हो जाएगा और वह मूर्ख बन जाएगा। फलस्वरूप वह ऐसे घृणित तथा अवांछनीय कार्यों को भी कर बैठेगा जिनसे समाज में अव्यवस्था उत्पन्न होने का भय है। कहने का तात्पर्य यह है कि शिक्षा के द्वारा बालक के विचार पवित्र एवं शुद्ध नहीं बनते हैं जिससे समाजोपयोगी तथा शुद्ध आचरण करने लगता है।

हरबर्ट ने शिक्षा के पाठ्यक्रम के विषय में भी चर्चा करते हुए बताया है कि पाठ्यक्रम के अन्तर्गत केवल उन विषयों को ही प्रमुख स्थान मिलना चाहिए, जो नैतिक तथा धार्मिक विचारों से भरे हुए हों। इस दृष्टि से उसने इतिहास तथा साहित्य की शिक्षा पर विशेष बल दिया है। उसका विश्वास है

कि इन विशयों के अध्ययन से बालकों में सत्य, साहस तथा सहानुभूति आदि नैतिक गुणों तथा उच्च आदर्शों का विकास किया जा सकता है। अतः शिक्षकों को चाहिए कि वे बालकों की रूचि इतिहास तथा साहित्य के अध्ययन करने में बाधाएं जिससे वे सदाचारी तथा सच्चरित्र व्यक्ति बन सकें।

3.8 वातावरण के साथ अनुकूल बनाने का उद्देश्यः–

कतिपय विद्वानों का मानना है कि शिक्षा का उद्देश्य बालक में ऐसी क्षमता उत्पन्न करना है जिससे वह अपने आप को अपनी परिस्थितियों अथवा वातावरण के अनुकूल बना ले। जिन विद्वानों ने इस उद्देश्य का समर्थन किया है उनमें प्राणि शास्त्रियों का प्रमुख स्थान है। इन विद्वानों का मत है कि संसार के प्रत्येक प्राणी को जीवित रहने के लिए अपनी परिस्थितियों अथवा प्राकृतिक एवं सामाजिक वातावरण से सदैव संघर्ष करना पड़ता है। जो प्राणी इस संघर्ष में सफल हो जाता है वही जीवित रहता है। इसके विपरीत जो प्राणी वातावरण से अनुकूलन नहीं कर पाता है वह नष्ट हो जाता है। अतः उसकी दृष्टि में शिक्षा का उद्देश्य बालक को इस प्रकार की शिक्षा देना है जिससे वह अपने भावी जीवन में विभिन्न प्रकार के वातावरण से अनुकूलन कर सके।

3.9 शारीरिक विकास का उद्देश्यः–

कुछ शिक्षा शास्त्रियों ने इस बात पर बल दिया है कि व्यक्ति के शरीर का विकास होना परम आवश्यक है। अतः उन्होंने शिक्षा में शारीरिक विकास के उद्देश्य को माना है।

शारीरिक विकास के उद्देश्य का अर्थ यह है कि बालक की शिक्षा इस प्रकार दी जाए, जिसको प्राप्त करके उसका शरीर स्वस्थ, सुदृढ़, सुन्दर एवं बलवान बन जायें प्राचीन तथा मध्यकालीन इतिहास इस बात की पुष्टि करता है कि अनेक देशों में शिक्षा के इसी उद्देश्य को मान्यता प्रदान की गयी। हम देखते हैं कि यूनान के प्राचीन राज्य स्पार्टा में शारीरिक उद्देश्य को ही वहाँ की शिक्षा का मुख्य उद्देश्य माना गया। यही कारण है कि वहाँ के निवासी अपने बल तथा पौरूश के लिए प्रसिद्ध रहे तथा उन वीर योद्धाओं की कहानियाँ आज भी बड़े चाव से पढ़ी जाती हैं। प्लेटो जैसे प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री ने भी अपनी शिक्षा योजना में शारीरिक विकास को महत्वपूर्ण स्थान दिया। यही नहीं रूसो जैसे महान दार्शनिक ने भी बालक के शारीरिक विकास पर बल दिया और बताया कि बालक को स्फूर्तिमान तथा क्रियाशील बनाने के लिए

उसकी शारीरिक शक्ति को पूर्णरूपेण विकसित करना परम आवश्यक है। इसलिए उसने बालक की शिक्षा में प्रारम्भ से ही खेलकूद तथा व्यायाम के उचित प्रबंध पर विशेष बल दिया। शारीरिक विकास की आवश्यकता पर बल देते हुए 'रेवेल' ने लिखा है कि–

"स्वास्थ्य के बिना जीवन, जीवन नहीं है। यह केवल स्फूर्तिहीनता तथा वेदना की दशा है, मष्त्यु का प्रतिरूप है।"

3.10 जीवन को पूर्णता प्रदान करने का उद्देश्यः–

शिक्षा के इस उद्देश्य को हम सर्वांगीण विकास के उद्देश्य का समानार्थी कह सकते हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के जिन शिक्षा शास्त्रियों ने शिक्षा का उद्देश्य 'जीवन को पूर्णता प्रदान करने पर बल दिया, उनमें प्रसिद्ध शिक्षाशास्त्री हरबार्ट स्पेन्सर का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। वे शिक्षा को पूर्णता प्रदान करने का साधन मानते थे। उनका विचार था कि शिक्षा के द्वारा जीवन के सभी अंगों का विकास किया जाना चाहिए जिससे व्यक्ति का जीवन पूर्णता की ओर अग्रसर हो। स्पेन्सर का विचार था कि, "शिक्षा को हमें पूर्ण जीवन के नियमों और ढंगों से परिचित कराना चाहिए। शिक्षा का सबसे महत्वपूर्ण कार्य हमें जीवन में लिए इस प्रकार तैयार करना है कि हम उचित प्रकार का व्यवहार कर सकें तथा शरीर, मस्तिष्क और आत्मा का पूर्ण सदुपयोग कर सकें।

हरबर्ट स्पेन्सर का विचार था कि शिक्षा के द्वारा हमारा इतना विकास अवश्य किया जाना चाहिए कि हम जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में आने वाली समस्याओं का सामना कर सकें तथा पूर्ण साहस एवं अंतर्दृष्टि से उनका समाधान ढूँढें। मानव के लिए यह भी आवश्यक है कि वह विभिन्न परिस्थितियों में अपने व्यवहार को नियंत्रित करे व उसे उचित शिक्षा प्रदान कर सके। स्वामी विवेकानन्द ने भी इस उद्देश्य की चर्चा अपने प्रकार से की है। उनके अनुसार "शिक्षा का अभिप्राय है मानव का उन्नयन करके उसे पूर्णता प्रदान करना।"

हरबर्ट स्पेन्सर का विचार था कि हमें शिक्षा के द्वारा जीवन का आनन्द लेना, अच्छे नागरिकों के गुणों का विकास करना, अवकाश के समय का सदुपयोग करना आदि आना चाहिए और इसी आधार पर उसने मानव जीवन की क्रियाओं को पाँच भागों में विभक्त किया–

मानव जीवन की प्रमुख क्रियाएं

- आत्म संरक्षण संम्बन्धी प्रत्यक्ष क्रियाएं।
- आत्म संरक्षण संम्बन्धी अप्रत्यक्ष क्रियाएं।
- संतान रक्षा एवं अनुशासन
- राजनैतिक सामाजिक सुरक्षा
- अवकाश के समय का सदुपयोग

हरबर्ट स्पेन्सर का यह मानना था कि मानव जीवन को शिक्षा के द्वारा इन पाँचों क्रियाओं में दक्ष किया जाना चाहिए, तभी हम व्यक्ति को पूर्ण जीवन की ओर उन्मुख कर सकते हैं। परन्तु विभिन्न विचारधाराएं जहाँ एक ओर इस उद्देश्य के पक्ष में है वहीं दूसरी ओर कुछ विद्वानों ने इसके विपक्ष में अपने मत व्यक्त किये। किन्तु यह शिक्षा का एक महत्वपूर्ण उद्देश्य है।

3.11 उद्देश्यों का समन्वय–

शिक्षा तथा दर्शन में घनिष्ठ सम्बन्ध है। दर्शन जीवन के लक्ष्यों को निर्धारित करता है। शिक्षा उस लक्ष्य को प्राप्त करने का साधन है। दूसरे शब्दों में व्यक्ति के जीवन का लक्ष्य आदि साध्य है तो शिक्षा उस लक्ष्य को प्राप्त करने का एक महत्वपूर्ण साधन है। शिक्षा के इतिहास पर विहंगम दृष्टिपात करने से पता चलाता है कि भिन्न–भिन्न स्थानों पर तथा भिन्न–भिन्न समयों में प्राचीन काल से लेकर अब तक भिन्न–भिन्न दर्शन एवं विचारधाराएं प्रचलित रही है। इन विभिन्न दर्शनों तथा विचारधाराओं से प्रभावित होकर विभिन्न दार्शनिकों तथा शिक्षाशास्त्रियों ने देश, काल तथा समाज की बदलती हुई परिस्थितियों के अनुसार जीवन के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यों का निर्माण किया। जैसी आवश्यकता तथा परिस्थिति हुई उसी के अनुसार शिक्षा का संगठन हो गया। शिक्षा के उद्देश्य का यह परिवर्तन

स्वाभाविक ही है। यदि शिक्षा के उद्देश्य परिवर्तनशील न हों तो शिक्षा का विकास रूक जाएगा। यही कारण है कि शिक्षा के उद्देश्य सदैव बदलते रहे हैं और भविष्य में भी बदलते रहेंगे। ध्यान देने की बात है कि यदि शिक्षा के उद्देश्यों में परिवर्तन का यह क्रम निरंतर चलता रहेगा तो शिक्षा का एक सर्वमान्य एवं सर्वव्यापक उद्देश्य निश्चित नहीं किया जा सकेगा। कुछ शिक्षा शास्त्रियों का मत है कि वर्तमान युग में शिक्षा के सभी उद्देश्यों का एक उद्देश्य में समावेष हो जाना परम आवश्यक हैं ठीक भी है। हम शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यों की उक्त पंक्तियों में व्याख्या विस्तृत रूप से प्रस्तुत कर चुके हैं। इन सभी उद्देश्यों के अध्ययन करने से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि शिक्षा के प्रत्येक उद्देश्य में जहाँ एक ओर कुछ गुण हैं, वहाँ दूसरी ओर कुछ दोष भी हैं। कोई भी उद्देश्य ऐसा नहीं है जिसका अनुकरण करके वांछित फल प्राप्त किया जा सके। शिक्षा शारीरिक उद्देश्य व्यक्ति का केवल शारीरिक विकास ही करता है तथा बौद्धिक उद्देश्य केवल मानसिक विकास तक ही सीमित रह जाता है। इसी प्रकार नैतिक चरित्र का उद्देश्य व्यक्ति के केवल नैतिक विकास पर ही बल देता है तो शिक्षा का व्यवसायिक उद्देश्य व्यक्ति को केवल जीविका कमाने के लिए ही तैयार करना चाहता है। इस प्रकार शिक्षा का प्रत्येक उद्देश्य व्यक्ति के केवल एक ही अंग को विकसित करने पर बल देता है। इस दृष्टि से यदि हम शिक्षा के विभिन्न उद्देश्यों में से किसी एक उद्देश्य का अनुकरण करके शिक्षा का कार्यक्रम बना लें तो इससे व्यक्ति का विकास केवल एक ही दिशा में हो सकेगा। ऐसी दशा में यदि व्यक्ति का सर्वांगीण विकास करना हो तो हमें एक ऐसा सर्वमान्य उद्देश्य निश्चित करना होगा जिसके अन्दर शिक्षा के सभी उद्देश्य आ जाएं। शिक्षा के सभी उद्देश्यों का केवल एक ही उद्देश्य में समावेष हो जाने से ही व्यक्ति तथा समाज दोनों को लाभ होगा।

यदि हम ध्यान से देखें तो पता चलेगा कि शिक्षा का तात्पर्य यह है कि यह मानव को उसके शरीर, मस्तिष्क तथा आत्मा का सदुपयोग करना सिखाए तथा उसे जीवन मे लिए इस प्रकार तैयार करे कि वह प्रकृति द्वारा किये जाने वाले साधनों का उचित उपयोग करके अपनी आर्थिक आवश्कयताओं की पूर्ति करते हुए किसी पर भार न बने तथा सच्चे नागरिक के रूप में आपने और दूसरों के अधिकतम् लाभ के लिए अपनी समस्त शक्तियों का उचित ढंग

से प्रयोग कर सके। यही नहीं, आधुनिक युग में शिक्षा का यह भी कार्य है कि वह मानव को जातीयता, प्रांतीयता तथा राष्ट्रीयता आदि भावनाओं पर आधारित वर्ग भेदों से ऊँचा उठा कर उसमें अपने राष्ट्र तथा अपनी संस्कृति के प्रति प्रेम की भावनाओं को विकसित करने के अतिरिक्त उसमें अन्य राष्ट्रों तथा संस्कृतियों के प्रति सद्भावनाएं विकसित करे जिससे वह विश्व नागरिक के रूप में विश्व के सभी समाजों में एक साथ समझदारी के साथ रह सके तथा सामान्य हित के लिए अन्य व्यक्तियों तथा राष्ट्रों के गुणों का सदुपयोग कर सके। ऐसी दशा में शिक्षा का सर्वमान्य उद्देश्य उसी उद्देश्य को कहा जा सकता है जिसके अनुसरण करने से व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा संवेगात्मक विकास इस प्रकार से हो जाए कि वह किसी व्यवसाय को अपना कर अपनी जीविका कमा सके तथा यह समझ सके कि समस्त ज्ञान परम पिता परमेश्वर की दी हुई धरोहर हे तथा उसका प्रयोग एक कर्मठ नागरिक के रूप में दूसरों की सेवा के लिए किया जाना चाहिए। शिक्षा के पूर्व कथित उद्देश्यों में से कोई भी उद्देश्य ऐसा नहीं है जिसका अनुसरण करके व्यक्ति का उक्त सभी दशाओं में विकास किया जा सके। परन्तु शिक्षा के समस्त उद्देश्यों का एक सम्मिलित रूप अथवा सर्वमान्य उद्देश्य का अनुसरण करने से व्यक्ति तथा समाज दोनों का हित हो सकेगा। इस आदर्श उद्देश्य के अनुसार शिक्षा प्रदान करके व्यक्ति के सर्वांगीण विकास होने की पूरी–पूरी सम्भावना है। जब व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक, सामाजिक तथा संवेगात्मक सभी प्रकार का विकास हो जायेगा तो वह हर प्रकार के भेदभावों से ऊपर उठकर सच्चे नागरिक के रूप में समाज की सेवा करने में निरंतर जुटा रहेगा। दूसरे शब्दों में इस सम्मिलित उद्देश्य के सम्मिलित रूप के द्वारा व्यक्ति तथा समाज तथा दोनों का कल्याण तथा प्रगति होती रहेगी। चूँकि शिक्षा के इस आदर्श उद्देश्य को स्वीकार कर लेने से व्यक्ति की समस्त व्यक्तिगत तथा सामाजिक आवश्यकताओं को पूरा होने की आशा है, इसलिए संसार के लगभग सभी शिक्षा शास्त्रियों ने शिक्षा के इसी उद्देश्य को एकमत होकर स्वीकार किया है। अंत में यह कहना उचित ही होगा कि शिक्षा के इसी उद्देश्य के अनुसार शिक्षा का कार्यक्रम बनाने से व्यक्ति तथा समाज दोनों का विकास तथा हित निश्चित है। अतः यह उद्देश्य सभी देशों तथा कालों के लिए उपयुक्त है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

प्रश्न 5:– शिक्षा के शारीरिक विकास के उद्देश्य से आप क्या समझते हैं?

.....

.....

प्रश्न 6:– हरबर्ट स्पेन्सर ने मानव जीवन की क्रियाओं को किन–किन भागों में विभाजित किया है?

.....

.....

3.12 सारांश

व्यक्ति कोई भी कार्य करे चाहे वह छोटा हो या बड़ा, उसके करने के पीछे उसका कुछ न कुछ उद्देश्य अवश्य निहित होता है। शिक्षा के भी अपने कुछ निश्चित उद्देश्य होते हैं जिनके कारण व्यक्ति को शिक्षा प्रदान की जाती है। शिक्षा के कई उद्देश्य हैं। पहला उद्देश्य शिक्षा का है जीवकोपार्जन का उद्देश्य। इस उद्देश्य के माध्यम से बालक को इस प्रकार से निहित किया जाता है जिससे कि वह अपनी जीविका के निर्वाह में सक्षम बन सके। शिक्षा का दूसरा प्रमुख उद्देश्य नागरिकता का प्रशिक्षण है। इस उद्देश्य के अनुसार बालक को शिक्षित कर उसे समाज एवं राष्ट्र का योग्य नागरिक बनाना है। बालक का बौद्धिक विकास करना शिक्षा का तीसरा प्रमुख उद्देश्य है। बालक को भविश्य के लिए तैयार करना, उसका चारित्रिक विकास करना, उनको वातावरण के साथ अनुकूलन करना सिखाना, उनका शारीरिक विकास करना तथा उनको जीवन में पूर्णता की प्राप्ति हेतु शिक्षित करना आदि शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य हैं। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि उपरोक्त सभी उद्देश्य अपने आप में पूर्ण नहीं है बल्कि एक दूसरे के पूरक हैं। बालक के सर्वांगीण विकास के लिए इन सभी उद्देश्यों की प्राप्ति समन्वित रूप में परम आवश्यक है।

3.13 अभ्यास प्रश्न

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए–

1. शिक्षा के प्रमुख उद्देश्यों के नाम बताइए?
2. नागरिकता के प्रशिक्षण से आप क्या समझते हैं?
3. बौद्धिक प्रशिक्षण को किन दो वर्गों में बाँटा जा सकता है ?
4. उद्देश्यों का समन्वय क्यों आवश्यक है?

3.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

1. जीविकोपार्जन का उद्देश्य, नागरिकता का प्रशिक्षण, बौद्धिक विकास, शारीरिक विकास, वातावरण के साथ समायोजन, जीवन को पूर्णता प्रदान करना आदि शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य हैं।
2. Blue Jacket aim के नाम से शिक्षा के जीवकोपार्जन के उद्देश्य को जाना जाता है।
3. प्लेटो ने नागरिकों को निम्न तीन श्रेणियों में विभाजित किया है–

   i. दार्शनिक राजा।

   ii. सैनिक।

   iii. कलाकार।

4. शिक्षा के शारीरिक विकास के उद्देश्य से तात्पर्य है कि बालक को शिक्षा इस प्रकार दी जाए, जिसको प्राप्त करके उसका शरीर स्वस्थ सुन्दर एवं बलवान बन जाए।
5. हरबार्ट स्पेन्सर ने मानव जीवन की क्रियाओं को निम्न भागों में विभाजित किया है–

   i. आत्म संरक्षण सम्बन्धी प्रत्यक्ष क्रियाएं।

   ii. आत्म संरक्षण सम्बन्धी अप्रत्यक्ष क्रियाएं।

   iii. संतान रक्षा एवं अनुशासन।

   iv. अवकाश के समय का सदुपयोग

इकाई – 4 शिक्षा के अभिकरण या साधन

इकाई की रूपरेखा

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 शिक्षा के अभिकरण का अर्थ

4.4 शिक्षा के अभिकरण का वर्गीकरण

4.4.1 प्रथम वर्गीकरण

4.4.2 द्वितीय वर्गीकरण

4.4.3 तृतीय वर्गीकरण

4.5 औपचारिक अभिकरण

4.6 अनौपचारिक अभिकरण

4.7 घर अथवा परिवार

4.7.0 परिवार का अर्थ तथा परिभाषा

4.7.1 बालक की शिक्षा में परिवार का महत्व

4.7.2 परिवार के कार्य

4.7.3 निष्कर्ष

4.8 विद्यालय

4.8.0 विद्यालय का अर्थ एवं परिभाषा

4.8.1 विद्यालय की आवश्यकता

4.8.2 विद्यालय के शैक्षिक उत्तरदायित्व, कार्य एवं महत्व

4.9 समाज विद्यालय और राज्य

4.10 सारांश

4.11 अभ्यास प्रश्न

4.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

4.13 संदर्भित ग्रंथ सूची

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई शिक्षा के अभिकरण के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया गया है कि शिक्षा के अभिकरण वे हैं जो बालक की शिक्षा के लिए सम्पूर्ण वातावरण तैयार करके उनके शैक्षिक विकास में पूर्ण रूप से सहयोग प्रदान करते हैं।

इन अभिकरणों के वर्गीकरण के द्वारा इनकी आवश्कयता महत्व एवं कार्यों को प्रतिपादित किया गया है। जिनको जानकार शिक्षा में इनकी भूमिका को समझा जा सकता है। परिवार जो कि शिक्षा का एक अनौपचारिक अभिकरण है, बच्चे की प्राथमिक पाठशाला कहा जाता है। जो बच्चे का संस्कार करती है। विद्यालय जो कि शिक्षा का एक औपचारिक अभिकरण हैं, वह परिवार में संस्कारित बच्चे के सर्वांगीण विकास का प्रयास करता है। इकाई के अंत में राज्य विद्यालय और समाज के आपसी महत्व की चर्चा की गई है।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो जायेंगे कि:–

- अभिकरणों के शिक्षा में महत्व की व्याख्या कर सकेंगे।
- अभिकरणों के विभिन्न प्रकारों का वर्गीकरण कर सकेंगे
- विभिन्न प्रकार के अभिकरणों की आपस में तुलना कर सकेंगे।
- अभिकरणों के प्रमुख कार्यों की व्याख्या कर सकेंगे।
- अभिकरणों के शिक्षा में महत्व की समीक्षा कर सकेंगे।

4.3 शिक्षा के अभिकरण का अर्थः–

प्रायः यह विश्वास किया जाता है कि बालक को शिक्षा केवल स्कूलों तथा कालेजों में ही दी जाती है। परन्तु वास्तविकता यह है कि स्कूलों तथा कालेजों के अतिरिक्त बालक अनेक साधनों के द्वारा शिक्षा प्राप्त करता है। प्रसिद्ध शिक्षा शास्त्री जान डिवी के अनुसार शिक्षा का अर्थ है जीवन अथवा विकास। उनका मत है कि जीवन अथवा विकास का अच्छा या बुरा होना वंशानुगत तथा वातावरण पर निर्भर करता है। वंशानुक्रम निश्चित होता है, परन्तु वातावरण को परिर्तन द्वारा अच्छा या बुरा बनाया जा सकता है। अतः

जीवन अथवा विकास का अच्छा या बुरा होना वातावरण पर ही निर्भर कता है। वंशानुक्रम निश्चित होता है, परन्तु वातावरण पर ही निर्भर करता है। वंशानुक्रम निश्चित होता है, परन्तु वातावरण को परिवर्तन द्वारा अच्छा या बुरा माना जा सकता है। अतः जीवन अथवा विकास का अच्छा या बुरा होना माना जा सकता है। अतः जीवन अथवा विकास का अच्छा या बुरा होना वातावरण पर निर्भर करता है। इस दृष्टि से बालक के जीवन तथा विकास के लिए उपयुक्त वातावरण प्रस्तुत करना ही शिक्षा है। परिवार, समुदाय, धर्म, राज्य, स्कूल, पुस्तकालय, पुस्तक, रेडियो, सिनेमा, टेलीविजन प्रदर्शनी तथा समाचार पत्र आदि सब ऐसे तत्व हैं जो बालक को हर प्रकार का वातावरण प्रस्तुत करते हैं। शिक्षा के इन सभी तत्वों को शिक्षा के अभिकरण या साधन की संज्ञा प्रदान की जाती है।

अभिकरण में अंग्रेजी में ऐजेन्सी Agency कहते हैं। Agency का अभिप्राय है ऐजेन्ट का कार्य। Agent उस व्यक्ति को कहते हैं जो किसी कार्य को करे अथवा किसी को प्रभावित करे। इस दृष्टि से सभी संस्थाएं अथवा तत्व शिक्षा के साधन या अभिकरण हैं क्योंकि ये बालक पर प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष तथा चेतन अथवा अचेतन रूप से शैक्षिक प्रभाव डालते रहते हैं।

शिक्षा के साधनों के अर्थ को स्पश्ट करते हुए B.D. Bhatia ने लिखा है "समाज ने शिक्षा के कार्यों को करने के लिए अनेक विशिष्ट संस्थाओं का विकास किया है। इन्हीं संस्थाओं को शिक्षा के साधन कहा जाता है।"

परन्तु वस्तु स्थिति यह है कि समाज के प्रायः सभी समूह एवं संगठन, चाहे इनका निर्माण शिक्षा कार्यों को सम्पादित करने के लिए किया गया हो अथवा किसी अन्य उद्देश्य से किया गया है। वे शिक्षा की प्रक्रिया को प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष किसी न किसी रूप में अवश्य प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए, परिवार का निर्माण हम अपने जीवन को सुखमय बनाने के लिए करते हैं। परन्तु जाने अनजाने में ये बच्चों की शिक्षा में भी सहयोग करते हैं। अतः हमारी दृष्टि से शिक्षा के अभिकरणों को अग्रलिखित रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

"शिक्षा के अभिकरणों से तात्पर्य उन सभी सामाजिक समूहों और संगठनों से होता है जो मनुष्य की शिक्षा में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष, किसी भी रूप में सहयोग प्रदान करते हैं।"

शिक्षा के अभिकरणों की इस परिभाषा के अनुसार परिवार समुदाय और समुदाय के अन्दर होते बड़े सभी संगठन शिक्षा के अभिकरण हैं। राज्य

को शिक्षा विभाग और विद्यालय, ये तो ऐसे अभिकरण हैं जिनका निर्माण बच्चों युवकों अथवा प्रौढ़ों की शिक्षा हेतु किया जाता है।

कुछ शिक्षाविद पुस्तकालय, वाचनालय, खेल के मैदान, समाचार पत्र–पत्रिकाओं रेडियो, टेलीविजन और चलचित्रों को भी शिक्षा के अभिकरण मानते हैं। हमारी दृष्टि से ये शिक्षा के अभिकरण नहीं साधन हैं। शिक्षा के अभिकरण तो वे सामाजिक संगठन हैं जो पुस्कालय, वाचनालय, खेल के मैदान आदि का निर्माण करते हैं, पत्र–पत्रिकाओं का कलेवर तैयार करते हैं और उनका प्रकाशन करते हैं, रेडियो पर प्रसाशन के लिए कार्यक्रम तैयार करते हैं और उनका प्रसारण करते हैं, टेलीविज़न के लिए कार्यक्रम तैयार करते हैं और उनका प्रसारण करते हैं और चलचित्रों का निर्माण एवं उनका प्रदर्शन करते हैं। हमें शिक्षा के अभिकरण और शिक्षा के साधन इन दोनों का अंतर समझना चाहिए। एक स्थान पर रेडियो को शिक्षा का अभिकरण और दूसरे स्थान पर उसे शिक्षा का साधन कहने से भ्रम उत्पन्न होगा स्वाभाविक है।

4.4 शिक्षा के अभिकरण का वर्गीकरण:–

शिक्षा एक सामाजिक प्रक्रिया है जो जाने अनजाने सभी सामाजिक समूहों और संगठनों में चलती रहती है। शिक्षा की दृष्टि से इन सभी समूहों और संगठनों को शिक्षा के अभिकरण कहा जाता है। ये अपने में इतने अधिक प्रकार के हैं कि हम इनका वर्गीकरण नहीं कर सकते। परन्तु कुछ शिक्षा विदों ने शिक्षा के कुछ प्रमुख अभिकरणों को दृष्टि से रखकर उनका वर्गीकरण करने का प्रयास किया है। यहाँ उनमें से प्रमुख तीन का वर्णन हम इस प्रकार से कर सकते हैं।

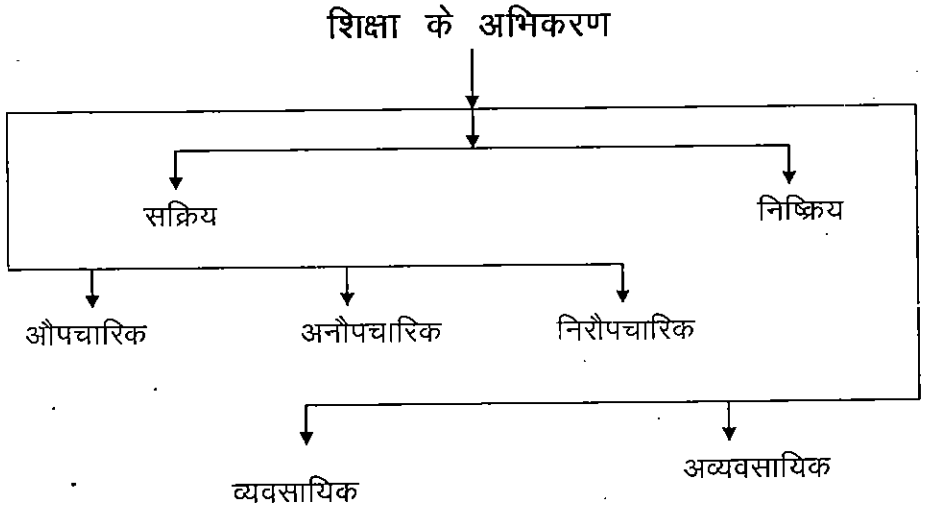

4.4.1 प्रथम वर्गीकरण– औपचारिक, अनौपचारिक और निरौपचारिक

शिक्षा के प्रथम वर्गीकरण में शिक्षा को तीन भागों में बाँटा गया है– औपचारिक, अनौपचारिक और निरौपचारिक अधिकतर विद्वानों ने शिक्षा के अभिकरण को दो भागों में बाँटा है।– औपचारिक और अनौपचारिक कुछ विद्वानों ने इन दोनों प्रकार के अभिकरणों से भिन्न अभिकरणों को निरौपचारिक अभिकरण कहा है।

शाब्दिक दृष्टि से तो जो अभिकरण औपचारिक शिक्षा की व्यवस्था करते हैं उन्हें औपचारिक अभिकरण कहा जाता है। जो निरौपचारिक शिक्षा की व्यवस्था करते हैं उन्हें निरौपचारिक अभिकरण कहा जाना चाहिए और जो अनौपचारिक शिक्षा के केन्द्र होते हैं उन्हें अनौपचारिक अभिकरण कहा जाता है।

शिक्षा के औपचारिक साधन एक निश्चित योजना के अनुसार हैं। इनका प्रयोग बालक के आचरण को रूपान्तरित करने के लिए किया जाता है। इसके निश्चित नियम होते हैं और इनकी देखभाल प्रशिक्षित व्यक्तियों द्वारा की जाती है। इसके अन्तर्गत स्कूल, पुस्तकालय, पुस्तकें आदि आती हैं।

शिक्षा के अनौपचारिक साधनों का विकास स्वाभाविक रूप से होता है। इनकी न तो कोई निश्चित योजना होती है और न कोई निश्चित नियम होते हैं। ये बालक के आचरण का रूपान्तरण करते हैं। पर रूपान्तरण की प्रक्रिया ज्ञात अप्रत्यक्ष और अनौपचारिक होती है। इसके अन्तर्गत परिवार धर्म समाज, राज्य, रेडियो समाचार पत्र, खेल के मैदान, दल गुट युवक समूह चलचित्र, दूरदर्शन आदि स्रोत हैं।

निरौपचारिक शिक्षा उस शिक्षा को कहते हैं जिसके माध्यम से कमजोर और पिछड़ो को शिक्षा का अवसर प्रदान किया जाता है। यह शिक्षा, जो औपचारिक शिक्षा नहीं प्राप्त कर पाते हैं उन्हें शिक्षा प्रदान करते हैं। औपचारिक शिक्षा की भाँति इसके भी उद्देश्य पाठ्यचर्या और शिक्षण विधियाँ निश्चित होती हैं।

4.4.2 द्वितीय वर्गीकरण– सक्रिय और निष्क्रिय साधन

एक वर्गीकरण के अनुसार शिक्षा के अभिकरणों को निम्न दो भागों में बाँटा जा सकता है– सक्रिय साधन व निष्क्रिय साधन।

'सक्रिय साधन' सामाजिक प्रक्रिया पर नियंत्रण एवं उसको एक निश्चित दिशा देने का प्रयत्न करते हैं। इनमें शिक्षा देने वाली ओर शिक्षा प्राप्त करने वाली प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया होती है। दोनों एक दूसरे पर क्रिया और प्रतिक्रिया करते हैं और इस प्रकार दोनों के आचरण में रूपान्तर होता है। सक्रिय साधनों के उदाहरण हैं– परिवार समाज, राज्य, चर्च (धर्म), विद्यालय, क्लब तथा समाज कल्याण केन्द्र आदि।

'निष्क्रिय साधन' वे हैं जिनका प्रभाव एक तरफा होता है। इनकी प्रक्रिया एक ओर से होती है क्योंकि ये एक ही को प्रभावित करते हैं। एक प्रक्रिया में एक पक्ष सक्रिय होता है और दूसरा निष्क्रिय। ये साधन इन अर्थ में सक्रिय हैं क्यों कि दूसरों को प्रभावित करते हैं। पर स्वयं दूसरों से प्रभावित नहीं होते हैं। परन्तु वास्तव में इन पर भी जनमत सार्वजनिक रूचि और सरकारी नियंत्रण का प्रभाव पड़ता है। निष्क्रिय साधनों के उदाहरण हैं समाचार पत्र, सिनेमा, टेलीवीजन, रेडिया प्रेस आदि।

4.4.3 तृतीय वर्गीकरण–

ब्राउन महोदय ने शिक्षा के अभिकरणों को एक अलग प्रकार से विभाजित किया। जहाँ उन्होंने शिक्षा के औपचारिक और अनौपचारिक वर्गीकरण को अपने वर्गीकरण में स्वीकार ही किया साथ ही साथ उन्होंने व्यावसायिक एवं अव्यवसायिक शिक्षा के अभिकरणों की चर्चा की है। शिक्षा के व्यवसायिक अभिकरण वे हैं जो प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूप में व्यक्ति का ज्ञान वर्धन करते हैं। साथ ही ये व्यक्ति के व्यवहार तथा आचरण को प्रभावित करते हैं। इनका प्रयोग व्यवसायिक दृष्टि से किया जाता है। इनके शैक्षिक कार्यक्रम भी निश्चित दृष्टिकोण से आयोजित किये जाते हैं। ब्राउन महोदय ने व्यवसायिक साधनों के अन्तर्गत रेडियो, टेलीविजन, फिल्म, पत्र–पत्रिकाओं, नाटक आदि को स्थान प्रदान किया है।

अव्यवसायिक साधन वे हैं जिनका उद्देश्य न किसी व्यवसाय को बढ़ाना होता है और न ही इनका शिक्षा के लिए आयोजन किया जाता है। इनका प्रयोग समाज सेवा की दृष्टि से होता है। इनमें खेल, क्लब, समाज कल्याण, केन्द्र प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र, स्काउटिंग, युवा संगठन आदि सम्मिलित हैं। ये साधन अपने कार्यक्रमों में भाग लेने वालों के ज्ञान में वृद्धि करते हैं, साथ ही उनके सामाजीकरण में भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं।

4.5 औपचारिक अभिकरण–

शिक्षा के औपचारिक अभिकरण वे सामाजिक समूह अथवा संगठन हैं जिनका निर्माण कोई समाज सोंच समझकर, शिक्षा के लिए ही करता है, जैसे– सरकार का शिक्षा विभाग और शिक्षण संस्थाएं (विद्यालय, महाविद्यालय और विश्वविद्यालय) इन अभिकरणों द्वारा जिस शिक्षा की व्यवस्था की जाती है उसके उद्देश्य पाठ्चर्या और शिक्षण विधियाँ सब कुछ निश्चित होते हैं। यहाँ शिक्षार्थी शिक्षकों की देख–रेख एवं निर्देशन में शिक्षा प्राप्त करते हैं। एक वाक्य में हम कह सकते हैं कि इन अभिकरणों में शिक्षा बड़े नियोजित ढंग से चलती है।

समाज अथवा राज्य अपने उद्देश्यों की प्राप्ति इन्हीं अभिकरणों द्वारा करते हैं। औपचारिक अभिकरणों के अभाव में संश्लिष्ट समाज के समस्त अर्जित गुणों और उपलब्धियों को आगे आने वाली पीढ़ी को हस्तानान्तरित करना सम्भव नहीं हो सकता ये अभिकरण बच्चों को वह सब सिखाने में सहायता करते हैं जो वे अनौपचारिक अभिकरणों के माध्यम से नहीं सीख पाते। विज्ञान और तकनीकी की शिक्षा के लिए तो इन अभिकरणों का निर्माण करना परम आवश्यक होता है। इतना ही नहीं अपितु, अनौपचारिक अभिकरणों द्वारा प्राप्त ज्ञान एवं आचरण को व्यवस्थित करने एवं उसे उचित दिशा देने के लिए भी इनकी आवश्यकता होती है।

परन्तु इन अभिकरणों की अपनी सीमाएं हैं। इनके द्वारा 1–3 वर्ष की आयु के बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था नहीं की जा सकती। 3–5 वर्ष की आयु के बच्चों की शिक्षा व्यवस्था करने में बड़ी कठिनाई होती है और यह वह समय है जब बच्चे के व्यक्तित्व के निर्माण की नींव रखी जाती है। इसके अतिरिक्त इन अभिकरणों में एक कमी और है, और वह यह है कि ये प्रायः पुस्तकीय ज्ञान पर बल देते हैं, आचरण की शिक्षा पर अपेक्षाकृत कम। कभी–कभी तो ये निश्चित पाठ्यक्रम को पूरा करने में ही अपने कर्तव्य की इतिश्री समझते हैं और तब साध न ही साध्य हो जाता है।

4.6 अनौपचारिक अभिकरण

शिक्षा के अनौपचारिक अभिकरण वे सामाजिक समूह अथवा संगठन है जिनका निर्माण सामाजिक संरचना के अन्तर्गत स्वतः होता रहता है। और जिनके सामने औपचारिक अथवा निरौपचारिक शिक्षा की व्यवस्था का कोई

उद्देश्य नहीं होता लेकिन जाने–अन्जाने बच्चों, युवकों अथवा प्रौढ़ों की शिक्षा को प्रभावित करते हैं जैसे– परिवार, समुदाय और धार्मिक संस्थाएं। इन अभिकरणों में जो शिक्षा चलती है उसके उद्देश्य, पाठ्यक्रम और शिक्षण विधियाँ कुछ भी निश्चित नहीं होते हैं। यहाँ तो व्यक्ति एक दूसरे के सम्पर्क में आकर एक दूसरे से स्वाभाविक रूप में सीखते हैं।

मनुष्य की अधिकतर शिक्षा इन्हीं अभिकरणों में होती है इसलिए इनका अपना महत्व है। औपचारिक अभिकरणों द्वारा प्रायः सोद्देश्य शिक्षा का विधान होता है। व्यवहार और आचरण की शिक्षा तो बच्चे अनौपचारिक अभिकरणों द्वारा ही प्राप्त करते हैं। भाषा रहन–सहन और खान–पान के तरीके, रीति–रिवाज और संस्कृति के संरक्षण और विकास में भी अभिकरणों का योगदान अपेक्षाकृत अधिक होता है। अमेरिकी शिक्षा शास्त्री जान डीवी इन अभिकरणों को आकस्मिक, स्वाभाविक और महत्वपूर्ण मानते हैं। उनके अनुसार बच्चों की वास्तविक शिक्षा इन्हीं संस्थाओं में होती है, उनकी बुद्धि का विकास होता है। कल्पना शक्ति तीव्र होती है और समाज में समायोजन करते हैं। ये अभिकरण शिक्षा के औपचारिक अभिकरणों का निर्माण भी करते हैं।

परन्तु अनौपचारिक अभिकरणों की भी अपनी सीमाएं हैं। इनके द्वारा व्यवस्थित शिक्षा का विधान नहीं किया जा सकता। आज का सामाजिक जीवन इतना जटिल हो चुका है कि व्यवस्थित शिक्षा का विधान किये बिना हम उसे समझ ही नहीं सकते। विभिन्न प्रकार के कला–कौशलों की शिक्षा इन अनौपचारिक अभिकरणों द्वारा नहीं दी जा सकती। व्यवसायिक तथा औद्योगिक शिक्षा के लिए भी औपचारिक अभिकरणों की आवश्यकता होती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी–(i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।
(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

प्रश्न 1:– शिक्षा के अभिकरण से आप क्या समझते हैं ?

.....

.....

प्रश्न 2:– शिक्षा के अभिकरणों को मुख्य रूप से कितने वर्गों में बाँटा गया है ?

.....

.....

प्रश्न 3:– शिक्षा के औपचारिक अभिकरणों से आप क्या समझते हैं ? यह अनौपचारिक अभिकरणों से किस प्रकार भिन्न है ?

.....

.....

4.7 घर अथवा परिवार:–

4.7.0 परिवार का अर्थ तथा परिभाषा:–

घर, कुटुम्ब अथवा परिवार मानव समाज की प्राचीनतम एवं आधारभूत इकाई एक ऐसा समूह है जिसमें बूढ़े, जवान पति–पत्नी, भाई–बहन तथा उनके बच्चे होते हैं। ये सब एक दूसरे से माता–पिता, भाई–बहन तथा भाई–भाई अथवा अन्य सीधे सम्बन्ध से सम्बंधित होते हैं। कुछ प्राचीन समाजों में नौकरों को भी परिवार का ही सदस्य समझ लिया जाता था। इसलिए परिवार के अंग्रेजी शब्द Family की उत्पत्ति "Famulus" शब्द से मानी जाती है जिसका अर्थ है– नौकर (Servant)। इस प्रकार परिवार एक छोटा सा सामाजिक वर्ग जो सामान्यतः माता–पिता तथा एक अथवा अधिक बालकों द्वारा संगठित होता है। यह परिवार का सबसे सरल रूप है। इसका जटिल रूप भारत के कुछ संयुक्त परिवारों में देखा जाता है जिनमें माता–पिता तथा उनके बालकों के अतिरिक्त चाचा–चाची, ताऊ–तायी तथा दादा–दादी आदि सभी लोग साथ रहते हैं।

मैकाइवर और पेज के विचार से– "परिवार एक ऐसा समूह है जो पर्याप्त रूप से लैंगिक संम्बन्ध पर आधारित होता है तथा जो इतना स्थायी होता कि इसके द्वारा बालकों के जन्म तथा पालन–पोषण की व्यवस्था हो जाती है।"

क्लेयर के अनुसार– "परिवार से हम सम्बन्धों की वह व्यवस्था समझते हैं, जो माता–पिता तथा उनकी सन्तानों के बीच में पाई जाती है"

उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है कि परिवार व्यक्तियों का वह समूह है जिनका आपस में सम्बन्ध हो अर्थात जिनके बीच निकटवर्ती सम्बन्ध हो तथा जो एक–दूसरे को किसी न किसी प्रकार से प्रमाणित करें।

4.7.1 बालक की शिक्षा में परिवार का महत्वः–

यद्यपि वर्तमान युग में संयुक्त परिवार का स्थान एकांकी परिवार ने ले लिया है। तथा इसके अनेक कार्यों को भी इसकी सामाजिक संस्थाओं ने संभाल लिया है। पर इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि आधुनिक परिवार पर बालक के पालन–पोषण तथा शिक्षा उत्तरदायित्व नहीं रहा है। वास्तविकता यह है कि परिवार एक ऐसी आधारभूत संस्था है। जिसका बालक की शिक्षा में अब भी महत्व कम नहीं हुआ है। इसका कारण यह नवजात शिशु अपने जीवन की यात्रा को परिवार से ही आरम्भ करता है तथा इसी संस्था में रहते हुए उसे विभिन्न प्रकार की शिक्षा प्राप्त हो जाती है। जैसे–जैसे बालक की आयु में वृद्धि होती जाती है, वैसे–वैसे परिवार द्वारा उसमें उन सभी मानवीय गुणों का विकास होता जाता है। जिनकी आवश्यकता उसे आगे चलकर एक सुयोग्य एवं सच्चरित्र नागरिक के रूप में पड़ती है। इस प्रकार जब तक बालक जीवित रहता है तब तक उस पर परिवार का प्रभाव पड़ता ही रहता है। सूत्र रूप में बालक को बनाने और बिगाड़ने का उत्तरदायित्व अब भी परिवार पर ही है।

परिवार में रहते हुए बालक को यूँ तो अनेक सुविधाएं मिलती रहती हैं, परन्तु प्रत्येक परिवार दो महत्वपूर्ण बातों की पूर्ति अवश्य करता है– स्नेह तथा सामाजिकता। परिवार ही ऐसा स्थान है जहाँ बालक को वास्तविक स्नेह मिलता है। जितना स्नेह बालक से माता–पिता कर सकते हैं उतना अन्यत्र दुर्लभ है। यही कारण है कि बालक का पालन पोषण जितना अच्छा परिवार में हो सकता है उतना और कहीं नहीं हो सकता है।

परिवार एक छोटी सी सामाजिक संस्था है जिसमें रहते हुए बालक माता–पिता के अतिरिक्त भाई–बहनों तथा अन्य सम्बंधियों के सम्पर्क में आता है। इन सभी का अपना–अपना अलग–अलग कार्य (ROLE) होता है। यह कार्य स्थिर नहीं होता। सभी सदस्य एक–दूसरे के साथ आदान प्रदान करते हैं तथा एक दूसरे पर अपना प्रभाव डालते हैं। बालक भी परिवार के सभी सदस्य से प्रत्येक क्षण प्रभावित होता रहता है। इस प्रभाव से वह समाज के तौर तरीके सीखता है तथा अपने व्यक्तित्व का निर्माण करता है।

परिवार में रहते हुए ही बालक अपने भावों तथा विचारों को प्रकट करने के लिए एक आवश्यक शब्दावली बना लेता है। यही है उसकी मातृभाषा जिसके माध्यम से उनके ज्ञान भण्डार में वृद्धि होती रहती है।

प्रथम छः वर्षों तक बालक का सामाजिक वातावरण केवल परिवार ही होता है। परिवार के वातावरण में उसे स्वतंत्रता, स्वरूछन्दता तथा माता–पिता का असीम स्नेह प्राप्त होता है। वह अपने माता–पिता, भाई–बहनों तथा अन्य सदस्यों के दैनिक जीवन में होने वाली सभी क्रियाओं का अनुकरण करने लगता है। जब वह देखता है कि परिवार का प्रत्येक सदस्य अपने–अपने कर्तव्यों का पूर्ण श्रद्धा तथा निष्ठा से पालन करता है, तो वह भी कर्तव्य का पालन करना सीख जाता है। ऐसे ही जब वह देखता है कि परिवार के सारे सदस्य एक दूसरे के साथ किस प्रकार का व्यवहार करते हैं, तो वह भी दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करना सीख जाता है। यही नहीं, परिवार में ही रहते हुए उसे शारीरिक, कलात्मक तथा नैतिक सभी प्रकार की शिक्षा प्राप्त होती रहती है जिससे उसकी विभिन्न आदतों तथा मूल्यों का निर्माण होता है। वह माता से प्रेम, भाई–बहनों भ्रातृत्व भावना तथा पिता से न्याय आदि नैतिक आदर्शों की शिक्षा प्राप्त करता है। इस प्रकार उसकी पाशविक प्रवृत्तियाँ मानवीय गुणों में परिवर्तित होती रहती है। परन्तु जब माता–पिता अपने बालकों के साथ झूँठे वादे कर लेते हैं तो बालक झुँझलाता है और उसके प्रति श्रद्धा कम हो जाती है। अंत में फिर वह भी वैसा ही व्यवहार करने लगता है।

परिवार में बालक की विभिन्न आवश्यकताओं को पूरा किया जाता है। परिवार में ही रहते हुए उसे नाना प्रकार के संवेगात्मक अनुभव प्राप्त होते हैं। इन आवश्यकताओं तथा संवेगात्मक अनुभवों का बालक की शिक्षा से घनिष्ठ संम्बन्ध होता है। संतोषजनक अनुभवों की बालक को सीखने की प्रेरणा मिलती है। इससे उसका स्वाभाविक विकास होता है। इसके विपरीत कटु अनुभवों की उपस्थिति में बालक का विकास कुंठित होने लगता है।

प्रत्येक परिवार का प्रतिनिधित्व अलग–अलग होता है। प्रायः देखने में आता है कि विभिन्न परिवारों की रूचियाँ तथा बोलने चालने के ढंग अलग–अलग होते हैं। इन सबसे बालक प्रभावित होता है। जब बालक किसी ऐसी स्थिति में हठ कर बैठता है जिसे परिवार के सदस्य उचित नहीं समझते तो बालक को यही कह कर समझाने का प्रयास किया जाता है कि– "हम लोग ऐसा नहीं करते।" इससे बालक में अपनेपन की भावना विकसित होती है। तथा वह अपने आप को सुरक्षित समझता है। यही अपने पन तथा मनोवैज्ञानिक सुरक्षा बालक के विकास के लिए परम आवश्यक है।

संक्षिप्त रूप से शैशव अवस्था में बालक का मस्तिष्क अत्यधिक ग्राह्य

होता है। परिवार के स्नेहपूर्ण वातावरण से प्रभावित होते हुए वह अपने परिवार की भाषा, संस्कृति, वेष–भूशा, आचार–विचारा, आहार–विहार तथा रूचियों को स्वाभाविक रूप से ग्रहण कर लेता है। इस प्रकार पारिवारिक शिक्षा बालक के व्यक्तित्व की ऐसी आधारशिला बन जाती है जिसे वह जीवन पर्यन्त कभी नहीं भूलता। चूँकि प्रत्येक परिवार के प्रभाव से भिन्न होता है। 'रेमण्ट' ने ठीक ही लिखा है– "दो बालक एक स्कूल में भले ही पढ़ते हों, एक ही शिक्षक से प्रभावित होते हों, एक साथ अध्ययन करते हों फिर भी सामान्य ज्ञान, रूचियों, भाषा व्यवहार तथा नैतिकता के अपने–अपने, अलग–अलग पारिवारिक वातावरण के कारण, जहाँ से वे आते हैं, पूर्णतया भिन्न होते हैं।"

4.7.2 परिवार के कार्यः–

1. शारीरिक शिक्षा– बालक के स्वास्थ्य की रक्षा तथा उसका शारीरिक विकास करना परिवार का मुख्य कार्य है। परिवार में माता–पिता अपने बालक के स्वास्थ्य की रक्षा तथा उसके शारीरिक विकास के लिए स्वास्थ्य की रक्षा तथा उसके शारीरिक विकास के लिए पौष्टिक भोजन, वस्त्र, खेलकूद तथा व्यायाम आदि की अच्छी से अच्छी व्यवस्था करके ऐसे सुन्दर वातावरण को निर्माण करते हैं कि उसमें साफ–सुथरा रहने, व्यायामक करने तथा अन्य सभी स्वास्थ्यवर्धक क्रियाओं को करने की उपयुक्त आदतें पड़ जायें। दूसरे शब्दों में बालक के स्वास्थ्य तथा शारीरिक विकास की चिन्ता जितनी अधिक माता–पिता को हो सकती है उतनी अधिक संसार के और किसी व्यक्ति को नहीं हो सकती। इस सम्बन्ध में माता–पिता की ममता विशेष उल्लेखनीय है। वह स्वयं नहीं खाती बालक को खिलाती, वह स्वयं नहीं सोती बालक को सुलाती है। इस प्रकार बालक के शारीरिक विकास पर उसके परिवार का गहरा प्रभाव पड़ता है।

2. मानसिक विकास– परिवार का दूसरा कार्य बालक का मानसिक विकास करना है। स्मरण रहे कि मानसिक विकास के लिए विचार, कल्पना, निरीक्षण तथा परीक्षण आदि मानसिक शक्तियों का विकास आवश्यक हैं पर ये शक्तियाँ केवल उसी समय विकसित हो सकती है। जब इनके विकास हेतु बालक को अधिक से अधिक वस्तुओं से सम्पर्क स्थापित करने के लिए उपयुक्त अवसर प्रदान किए जाएं। इस दृष्टि से साधनहीन परिवारों की अपेक्षा साधन सम्पन्न परिवार अपने बालकों को विभिन्न वस्तुओं से सम्पर्क स्थापित करने के लिए अधिक से अधिक अवसर प्रदान कर सकते हैं। अतः साधन

सम्पन्न परिवारों के बालकों को निर्धन परिवारों के बालकों की अपेक्षा मानसिक विकास के लिए अधिक तथा उपयुक्त अवसर प्रदान होते हैं।

3. संवेगात्मक विकास– बालक के संवेगात्मक विकास पर भी परिवार का गहरा प्रभाव पड़ता है। घर की सफाई, फर्नीचर, पेड़–पौधे, फल–फूल, चित्र, गृह–सज्जा तथा इसी प्रकार के तत्व बालक को हर समय संवेगात्मक दृष्टि से प्रभावित करते हैं। लगातार सुन्दर वस्तु को देखने से बालक में सौन्दर्य बोध उत्पन्न हो जाता है जिससे उसकी विभिन्न रूचियाँ तथा अभिरूचियाँ विकसित होती हैं। यही नहीं परिवार के सदस्यों या आपसी व्यवहार अथवा सम्बन्ध भी बालक को संवेगात्मक दृष्टि से प्रभावित करता है। निम्न परिवारों में सहयोगपूर्ण व्यवहार तथा स्नेहपूर्ण सम्बन्ध होते हैं। उनके बालकों की आवश्यकताएं तथा भावनाएं पूरी होती रहती हैं। परिणामस्वरूप उनमें, सहानुभूति, स्नेह, साहस, आनन्द, प्रसन्नता तथा आत्मविश्वास आदि अनेक प्रभावात्मक संवेगों का विकास होता है इसके विपरीत जिन परिवारों में सदैव कलह, लड़ाई–झगड़े तथा मार–पीट का वातावरण बना रहता है उन परिवारों के बालकों में भय, घृणा, क्रोध, चिन्ता तथा इर्ष्या आदि अनेक निषेधात्मक संवेग विकसित हो जाते हैं। इस प्रकार पारिवारिक वातावरण का बालक के संवेगात्मक विकास में घनिष्ठ सम्बंध होता है।

4. सामाजिक विकास– परिवारका एक सूक्ष्म समाज होता है जहाँ पर बालक का सामाजिक विकास होता है। वैसे तो बालक को सामाजिक दृष्टि से विकसित करना स्कूल का कार्य है, परन्तु चूँकि परम्परागत स्कूल इस कार्य को करने में असफल हो चुके हैं, इसलिए आजकल उनके स्थान पर सामाजिक जीवन को विकसित करने के लिए प्रगतिशील स्कूलों को स्थापित किया जा रहा है। वास्तविकता यह है कि इन प्रगतिशील स्कूलों बालकों के सामाजिक विकास हेतु जिस वातावरण की आवश्यकता है वह अब भी परिवार जैसी छोटी सी संस्था में बिना कुछ खर्च किये ही आसानी से मिल जाता हैं इस दृष्टि से बालक को सामाजिक जीवन का परिचय देने के लिए परिवार से अच्छी कोई संस्था नहीं है। परिवार में बालक अन्य सदस्यों के साथ रहते हुए सामाजिक आदर्शों परम्पराओं तथा व्यवहारों को सीखता रहता है। उसमें प्रेम, सहानुभूति, सद्भावना, सहयोग, त्याग परोपकार उत्तरदायित्व एवं न्याय प्रियता आदि अनेक सामाजिक भावनाओं एवं गुणों का विकास स्वतः ही हो जाता है।

5. **धार्मिक विकास**– परिवार ही ऐसी संस्था है जहाँ बालक का धार्मिक विकास बिना किसी कठिनाई के किया जा सकता है। भारत जैसे धर्म निरपेक्ष राष्ट्र में तो बालक को शिक्षा देना अब परिवार का ही कार्य है। परिवार में रहते हुए बालक को धार्मिक पुस्तकें पढ़ने, धार्मिक कथाएं सुनने, पूजापाठ तथा अन्य सदस्यों के साथ धार्मिक कार्यों में भाग लेने के लिए विभिन्न अवसर होते हैं। ऐसे वातावरण में रहते हुए बालक एक विशेष धर्म का पालन करने लगता है तथा उनमें अनेक नैतिक तथा धार्मिक गुण विकसित हो जाते हैं।

6. **संस्कृति का हस्तांतरणः** – आज के औद्योगिक युग में संस्कृति का संरक्षण, विकास तथा हस्तांतरण वैसे तो स्कूल का कार्य है, परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि परिवार इस महत्पूर्ण कार्य से विमुख हो गया है। वास्तविकता यह है कि संस्कृति अलग–अलग होती है और वह अब भी परिवारों में ही पलती है। स्कूल में तो बालक संस्कृति को सीखता है, परन्तु परिवार में रहते हुए वह अपनी संस्कृति को स्वतः ही ग्रहण कर लेता है। यही कारण है कि अब भी हिन्दू संस्कृति हिन्दू परिवारों में तथा मुस्लिम संस्कृति मुस्लिम परिवारों में जीवित है।

7. **भाषा का विकास**– यद्यपि भाषा की शिक्षा आजकल स्कूलों तथा कालेजों में दी जाती है, परन्तु परिवार में रहते हुए बालक अपनी मातृभाषा को सरलता से सीख जाता है। अनुभव की बात है कि भाषा को बोलते समय शब्दों का उच्चारण जितना अच्छा सुशिक्षित परिवारों के बालक करते हैं उतना अच्छा पिछड़े परिवारों के बालक स्कूल में पढ़कर भी नहीं कर पाते। इस प्रकार भाषा की शिक्षा पर भी परिवार का ही विशेष प्रभाव पड़ता है।

8. **रूचियों तथा आदतों का विकास**– बालक की अच्छी अथवा बुरी रूचियाँ तथा आदतें परिवार में ही विकसित होती हैं। परिवार के सभी सदस्य जिन बातों अथवा वस्तुओं का अच्छा अथवा बुरा कहते हैं, बालक भी उन्हें वैसा ही कहने लगता है। इस प्रकार परिवार में रहते हुए बालक के अन्दर आरम्भ से ही अच्छी अथवा बुरी रूचियों तथा आदतों का विकास होने लगता है। बचपन में पड़ी हुई रूचियाँ तथा आदतें आगे चलकर बालक के चरित्र को प्रभावित करती हैं। जो परिवार इस सम्बन्ध में पहले से ही सतर्क रहते हैं उनके बालकों की आरम्भ से ही वांछनीय रूचियाँ तथा प्रशासनीय आदतें विकसित होने लगती हैं। इसके विपरीत जो परिवार इस सम्बन्ध में आंखें मींच लेते हैं उनके बालकों में अनुचित रूचियाँ तथा बुरी आदतें पड़ जाती हैं।

माता–पिता की यह असावधानी बालकों के लिए तथा उनके स्वयं के लिए चलकर महँगी पड़ती हैं।

9. नैतिकता तथा चरित्र का विकास– बालक में नैतिकता तथा चारित्रिक विकास गुणों को विकसित करने के लिए परिवार के प्रभावों का स्थान मुख्य होता है तथा अन्य संस्थाओं का गौण। अन्य संस्थाएं तो नैतिक गुणों की प्रत्यक्ष शिक्षा मिलती है। वह माता से प्रेम भाई बहनों से भ्रातृत्व भावना तथा पिता से न्याय की शिक्षा प्राप्त करता है। यही नहीं उसके ऊपर परिवार के रहन–सहन, खान–पान, वेश–भूषा, तथा आचार विचारों की गहरी छाप लगती है। यह छाप उसके चरित्र को पूर्णतया प्रभावित करती है। इन सभी प्रभावों के परिणाम स्वरूप या तो बालकों में दवा, प्रेम, श्रद्धा, सद्भावना, सत्य तथा इमानदारी एवं सच्चरित्रता आदि गुणों का विकास होता है अथवा वह हृदय–हीन, स्वार्थी, दयाहीन तथा दुश्चरित्र बन जाता है। इस प्रकार अपने जीवन के प्रथम छः वर्षों में परिवार के ही अन्दर बालक का नैतिक एवं चारित्रिक विकास हो जाता है।

10. जन्मजात प्रवृत्तियों एवं प्रेरणा का विकास– प्रत्येक बालक की कुछ जन्मजात प्रवृत्तियाँ एवं प्रेरणाएं होती हैं। इन सबका प्रकाशन आवश्यक है। यदि किसी कारण वश इनका प्रकाशन नहीं हो सके तो बालक के अन्दर भावना ग्रंथियाँ बन जाती है। इन भावना ग्रंथियों से उसका व्यक्तित्व विकृत हो जाता है। यदि बालक के व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास करना है तो इस प्रवृत्तियों तथा प्रेरणाओं को प्रकाशन के लिए उपयुक्त वातावरण की रचना करना परम आवश्यक है। परिवार स्थान जहाँ पर बालक को समस्त प्रवृत्तिया तथा प्रेरणाओं के प्रकाशन के लिए उपयुक्त वातावरण हर समय मिलता है।

11. व्यक्तित्व का विकास– यद्यपि बालक के व्यक्तित्व के विकास का उत्तदायित्व अनेक संस्थाओं ऊपर है, फिर भी इसका वीजारोपण परिवार में ही होता है। इस सम्बन्ध में प्रत्येक माता का अपने बालक के प्रति दृष्टिकोण पूर्णतया वैयक्तिक होता है। प्रत्येक माता यही चाहती है कि उसका बालक संसार के सभी व्यक्तियों से श्रेष्ठ हो। अतः माता के साथ–साथ परिवार के सभी सदस्य बालक की वैयक्तिकता का विश्लेशण करते हैं तथा उसके विकास हेतु उपयुक्त वातावरण की रचना करते हैं।

12. व्यावहारिक तथा व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्था– परिवार का प्रभाव बालक की व्यावहारिकता तथा व्यवसायिक शिक्षा पर भी पड़ता है।

जैसे–जैसे बालक बड़ा होता जाता है, वैसे–वैसे उसे दूसरों के साथ उठने–बैठन, बातचीत करने, बाहर से आने वाले अतिथियों का सत्कार एवं व्यवहार करने का स्वतः ही ज्ञान हो जाता है। यही नहीं, उसे परिवार के अन्य सदस्यों के साथ कार्य करके अपने पैतृक व्यवसाय की शिक्षा भी अप्रत्यक्ष रूपसे मिलती रहती है। बढ़ई दर्जी, धोबी, नाई, तेली, कुम्हार, लुहार तथा ठठेरे आदि सभी अपने–अपने परिवार में ही अपने पैतृक व्यवसाय की शिक्षा प्राप्त कर लेते हैं। आगे चलकर वे इसी व्यवसाय को अपनी जीविका का साधन बना लेते हैं।

4.7.3 निष्कर्ष–

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि परिवार बच्चे की सबसे पहली शिक्षा संस्था है और उसकी माँ उसकी सबसे पहली शिक्षिका। बच्चे के जम्न के कुछ दिन बाद ही उसके माता–पिता एवं परिवार के अन्य सदस्य उससे सुनना और बोलना सिखाते हैं। जब वह कुछ बड़ा होता है तो वे उसे उठने–बैठने, चलने–फिरने, खाने–पीने तथा सामाजिक आचरण की विधियाँ सिखाते हैं। परिवार में बच्चे शारीरिक, मानसिक, सांस्कृतिक, चारित्रिक एवं नैतिक और धार्मिक एवं आध्यात्मिक सभी प्रकार के विकास की शुरूआत हो जाती है। मनौवैज्ञानिकों का मत है कि बच्चे के व्यक्तित्व के दो तिहाई विकास उसके प्रथम चार–पाँच वर्षों में हो जाता है और यह वह समय है जब बच्चा अपने परिवार में रहता हे। तब कहना न होगा कि बच्चों के व्यक्तित्व के निर्माण में सर्वाधिक भूमिका परिवारों की रहती है।

परिवार की सबसे बड़ी विशेषता है प्रेम, सहानुभूति और सहयोग पूर्ण पर्यावरण। इस पर्यावरण में बच्चे का स्वाभाविक विकास होता है। जर्मन शिक्षा शास्त्री 'पैस्टालाजी' के शब्दों में– "गृह प्रेम और स्नेह का केन्द्र है, शिक्षा का सर्वोत्तम स्थान है और बच्चे का सर्वप्रथम विद्यालय है।"

पैस्टालॉजी के शिष्य फ्रोबेल भी बच्चों की शिक्षा में परिवार के महत्व को स्वीकार करते थें उनके शब्दों में– "माताएं आदर्श शिक्षिका होती है और परिवारों में दी जाने वाली अनौपचारिक शिक्षा बहुत प्रभावशाली और स्वाभाविक होती है।"

इटालियन शिक्षा शास्त्री माण्टेसरी ने भी बच्चों की शिक्षा में परिवार के महत्व को स्वीकार किया है। वे छोटे बच्चों की शिक्षा हेतु स्कूल को घर का रूप देने पर बल देती थीं जहाँ शिक्षिकाएं बच्चों के साथ मातृ तुल्य

व्यवहार करें और बच्चों को अपने दैनिक कार्यों के करने में सहायता करें।

महात्मा गांधी ने भी परिवार को बच्चों की प्रथम पाठशाला और माँ को प्रथम शिक्षिका माना हैं उनके अनुसार परिवार के प्रेम और सहानुभूति पूर्ण पर्यावरण में दी जाने वाली शिक्षा स्वाभाविक और स्थायी होती है। उन्होंने अपनी वेसिक शिक्षा में स्कूल के पर्यावरण को घर जैसा बनाने पर बल दिया है।

कुछ मिलाकर परिवार में बच्चों की वास्तविक शिक्षा की नींव रखी जाती है। बचपन में पड़े संस्कार बड़े स्थाई होते हैं। परिवार ही बच्चों को विद्यालयी शिक्षा सुलभ कराते हैं और इस शिक्षा की प्राप्ति में उनकी सहायता करते हैं। इतना ही नहीं अपितु वे समाज अथवा राज्य द्वारा निश्चित शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति में विद्यालयों का सहयोग करते हैं। बच्चों की शिक्षा में परिवारों का सबसे अधिक महत्व होता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी–(i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

प्रश्न 4:– परिवार के किन्हीं चार कार्यों को बताइए।

.....

.....

प्रश्न 5:– "गृह प्रेम और स्नेह का केन्द्र है, शिक्षा का सर्वोत्तम साधन है, और बच्चे का सर्वप्रथम विद्यालय है।" यह कथन किसका है ?

.....

.....

4.8 विद्यालय

4.8.0 विद्यालय का अर्थ एवं परिभाषा–

विद्यालय का शाब्दिक अर्थ है– विद्या का आलय अर्थात विद्या का घर अर्थात वह स्थान विद्या (शिक्षा) की व्यवस्था होती है। अंग्रेजी में इसके लिए स्कूल शब्द का प्रयोग होता है। स्कूल शब्द की उत्पत्ति ग्रीक शब्द (Skhole) शब्द से हुई है। जिसका अर्थ है 'अवकाश' (Leisure) होता है। प्रारम्भ में ग्रीक

देश में ऐसे स्थानों को जहाँ अवकाश के समय विचार–विमर्ष अथवा वाद–विवाद होता था, स्कूल कहा जाता था। परन्तु आगे चलकर ये स्कूल सुनियोजित ढंग से शिक्षा प्रदान करने वाले केन्द्रों के रूप में बदल गये। आज विद्यालयों का रूप एवं उनके कार्य पहले से भिन्न हैं। आज विद्यालयों का निर्माण कोई समाज अथवा राज्य अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए करता है। अंग्रेज विद्वान 'ओटावे' के शब्दों में–

"विद्यालय समाज के युवकों को विशेष प्रकार की शिक्षा देने वाले सामाजिक आविष्कार के रूप में समझे जा सकते हैं।"

सर टी0 पी0 नन ने विद्यालयों को ज्ञान के केन्द्र के रूप में ही स्वीकार नहीं किया अपितु उन्हें और व्यापक रूप में देखा है। उनके अनुसार "विद्यालय को मुख्य रूप से केवल निश्चित ज्ञान की प्राप्ति के स्थान ही नहीं समझना चाहिए अपितु ऐसे स्थान के रूप में स्वीकार करना चाहिए जहाँ युवकों को क्रियाओं के उन रूपों में प्रशिक्षित किया जाता है जो व्यापक संसार में सबसे महान और सबसे अधिक महत्व वाली है।"

अमेरिकी शिक्षाशास्त्री जॉन डिवी ऐसी सामाजिक संस्थाओं को विद्यालय कहते हैं जहाँ ऐसा पर्यावरण हो कि बच्चों में वांछित गुणों और शक्तियों का विकास किया जा सके। उन्होंने स्थान और संस्था के स्थान पर पर्यावरण शब्द का प्रयोग किया है। उनके शब्दों में–

"विद्यालय एक ऐसा विशिष्ट पर्यावरण है जहाँ जीवन के निश्चित गुण और कुछ विशेष प्रकार की क्रियाओं और व्यवसायों की शिक्षा इस उद्देश्य से दी जाती है कि बालक का विकास वांछित दिशा में हो सके।"

4.8.1 विद्यालय की आवश्यकता–

प्राचीन युग में मानव का जीवन अत्यन्त सरल था। उस युग में ज्ञान की इतनी वृद्धि नहीं हुई थी जितनी आज हो गई है। इसका कारण है कि उन्हें परिवार एवं अन्य औपचारिक साधनों के द्वारा पूरा कर लिया जाता था। परन्तु जनसंख्या की वृद्धि तथा जीवन की आवश्यकताओं की बाहुल्यता के कारण शनैः–शनैः संस्कृति का रूप इतना जटिल होता चला गया कि उसका सम्पूर्ण ज्ञान बालक को परिवार तथा अन्य औपचारिक साधनों के द्वारा देना कठिन हो गया। इधर माता–पिता भी जीविकापार्जन के चक्कर में फँसने लगे। उनके पास बालकों को शिक्षा देने के लिए न तो इतना समय हो रहा और न वे इतने शिक्षित ही थे कि वे उनको भाषा, भूगोल, इतिहास, समाजशास्त्र, अर्थशास्त्र, षरीर रचना तथा वैज्ञानिक अनुसंधानों के सम्पूर्ण ज्ञान की शिक्षा दे सकें। अतः एक ऐसी नियमित संस्था की आवश्यकता अनुभव होने लगी जो

सामाजिक तथा सांस्कृतिक सम्पत्ति को सुरक्षित रख सके तथा उसे विकसित करके भावी पीढ़ी को हस्तान्तरित कर सके। इस दृष्टि से स्कूल का जन्म हुआ। ध्यान देने की बात है कि आरम्भ में स्कूलों से केवल उच्च वर्ग के लोगों ने ही लाभ उठाया। जन साधारण के लिए स्कूलों की स्थापना करना केवल आधुनिक युग की देन है। जैसे–जैसे जनतंत्रवादी दृष्टिकोण विकसित होता गया। वैसे–वैसे स्कूलों के रूप में भी परिवर्तन होता चला गया।

4.8.2 विद्यालय के शैक्षिक उत्तरदायित्व, कार्य एवं महत्व–

विद्यालयों का निर्माण कोई समाज अथवा राज्य अपने बच्चों एवं युवकों की शिक्षा की व्यवस्था के लिए ही करता है। विद्यालयों का एकमात्र उत्तरदायित्व समाज अथवा राज्य द्वारा निश्चित शिक्षा के उद्देश्यों की प्राप्ति करना होता है, बच्चों के व्यवहार में वांछित परिवर्तन करना होता है और इसके लिए वे अनेक कार्य करते हैं। किसी समाज अथवा राज्य की शिक्षा के उद्देश्य उसके जीवन दर्शन उसकी संरचना, उसके राज्यतंत्र उसके अर्थतंत्र, मनोवैज्ञानिक तथ्य और वैज्ञानिक दृष्टिकोण पर निर्भर करते हैं, अतः देशकाल के साथ इसमें परिवर्तन होना स्वाभाविक है।

आज हमारे देश में लोकतंत्र है। लोकतंत्र व्यक्ति और समाज दोनों को समान आदर की दृष्टि से देखना है और शिक्षा के द्वारा व्यक्ति के वैयक्तिक एवं सामाजिक दोनों प्रकार के विकास पर समान बल देता है वह बच्चों के शारीरिक तथा व्यावसायिक विकास को आवश्यक समझता है पर यह सब विकास इस प्रकार होना चाहिए कि उससे व्यक्ति, समाज और राज्य सभी का हित हो। यह तभी संभव है जब बच्चों को लोकतंत्रीय जीवन के लिए तैयार किया जाये, उनमें 'हम' की भावना अर्थात राष्ट्रीय एकता का विकास किया जाए। लोकतंत्र सह अस्तित्व में विश्वास करता है इसलिए अन्तर्राष्ट्रीयता के विकास पर भी बल देता है। भारत की जनता धर्मप्राण है। हमारा कुछ ऐसा विश्वास है कि जब तक मनुष्य को धर्म की शिक्षा नहीं दी जाती उसका आध्यत्मिक विकास नहीं किया जाता, तब तक उसे सच्चे अर्थों में मनुष्य नहीं बनाया जा सकता, ऐसा मनुष्य जो मनुष्य–मनुष्य में अन्तर न करे, सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण के लिए प्रयत्न करे, सम्पूर्ण मानव जाति के कल्याण के लिए प्रयत्न करे। आज ये सब ही हमारी शिक्षा के उद्देश्य हैं। इन उद्देश्यों की प्राप्ति हम विद्यालयों द्वारा करते हैं। इन उद्देश्यों की प्राप्ति ही हमारे विद्यालयों का उत्तरदायित्व हे उनके कार्य हैं और इन कार्यों का सम्पादन ही उनका महत्व है। विद्यालय के कुछ प्रमुख कार्य एवं उत्तरदायित्व एवं उनका महत्व इस प्रकार है–

1. विद्यालय और बच्चों का शारीरिक विकास–

आज शिक्षा का उद्देश्य बच्चों को कुछ विषयों का ज्ञान मात्र कराना ही नहीं होता अपितु शिक्षा के द्वारा हम बालक का सर्वांगीण विकास करना चाहते हैं। मनुष्य के किसी भी प्रकार के विकास के लिए उसका शारीरिक विकास होना बहुत आवश्यक होता है। आप के विद्यालय बालक–बालिकाओं के शारीरिक विकास के लिए विशेष प्रयत्न करते हैं। आज विद्यालयों से यह आशा की जाती है कि वे बच्चों के लिए खेल–कूद तथा व्यायाम की पूरी–पूरी व्यवस्था करें, उन्हें स्वास्थ्य सम्बन्धी ज्ञान कराएं, उनमें स्वास्थ्य रक्षा के लिए आवश्यक आदतों का निर्माण करें उनके स्वास्थ्य की समय–समय पर परीक्षा कराएं और रोग ग्रस्त होने पर उनका इलाज कराएं। इतना ही नहीं, अपितु अब तो यह भी आवश्यक समझा जाने लगा है कि विद्यालय बच्चों के लिए पौष्टिक भोजन की व्यवस्था करें। विद्यालयों में एन0 सी0 सी0 तथा स्काउटिंग आदि की व्यवस्था भी शारीरिक विकास में सहायक होती है।

2. विद्यालय और बच्चों का मानसिक विकास–

एक युग था जब मानसिक विकास से तात्पर्य कुछ विषयों के ज्ञान से लिया जाता था और तब मानसिक विकास ज्ञानात्मक विकास का पर्याय था। शक्ति मनोविज्ञान ने मानसिक शक्तियों– स्मृति, कल्पना, चिन्तन और तर्क आदि के विकास को ही मानसिक विकास कहा। परन्तु आज मानसिक विकास का क्षेत्र बड़ा ही व्यापक है। मानसिक विकास का सीधा सम्बन्ध विचारों से होता है और विचारों का भाषा से। इसलिए मानसिक विकास का सबसे पहला सोपान बच्चों की भाषा में विकास करना होता है। भाषा और विचारों का चोली–दामन का साथ होता है, भाषा के साथ विचारों और विचारों के साथ भाषा का विकास होता है, ये दोनों विकास एक साथ होते हैं। इसके बाद इसके क्षेत्र में मानसिक शक्तियों–स्मृति, कल्पना, चिन्तन और तर्क आदि का विकास आता है और मानसिक विकास उच्चतम सीमा विवेक शक्ति का विकास आता है। मानसिक विकास के तीसरे सोपान पर विभिन्न तथ्यों की जानकारी आती है और चौथे तथा अंतिम सोपान पर मानसिक रोगों से बचने के उपाय आते हैं। बच्चों के इस सम्पूर्ण मानसिक विकास के लिए सबसे अधिक अवसर विद्यालयों में मिलते हैं। विद्यालयों में बच्चे एक दूसरे के सम्पर्क में आते हैं, एक–दूसरे से विचारों का आदान प्रदान करते हैं, इससे उनकी भाषा और विचारों, दोनों में विकास होता है। आज विद्यालयों में बच्चों को किसी विषय का ज्ञान सीधे नहीं करवाया जाता, इस ज्ञान की प्राप्ति में बच्चे सक्रिय भाग लेते हैं। वे स्वयं सीखते हैं, स्वयं तर्क करते हैं, स्वयं सामान्यीकरण करते हैं और स्वयं निर्णय निकालते हैं। इस प्रकार एक तरफ उनके ज्ञान में वृद्धि

होती है और दूसरी तरफ उनकी मानसिक शक्तियों– स्मृति कल्पना चिंतन और तर्क आदि में विकास होता है। विद्यालय बच्चों को स्वयं करके स्वयं सीखने के अवसर देते हैं। इनकी प्रयोगशालाओं में बच्चे प्रयोग करते हैं, निरीक्षण करते हैं, सामान्यीकरण करते हैं और निर्णय निकालते हैं। इस प्रकार उनकी निरीक्षण, सामान्यीकरण और निर्णय करने की शक्तियों का विकास होता है। ज्ञान के प्रकाश से विवेक का विकास स्वाभाविक ही है। इस सब के साथ–साथ विद्यालयों में विभिन्न विषयों का ज्ञान कराया जाता है और उन्हें मानसिक रोगों से बंधाया जाता है।

3. विद्यालय और बच्चों का सामाजिक विकास–

विद्यालय का एक प्रमुख औपचारिक कार्य बालक में सामाजिक भावना के विकसित करना है। वास्तविकता यह है कि विद्यालय समाज का लघु रूप होता है। अतः विद्यालय को चाहिए कि बालक के सामने छात्र संगठनों (Student,s Unions), समाजसेवा, कैम सामाजिक उत्सव, तथा अभिभावकों शिक्षक संघ आदि की व्यवस्था करके ऐसा सामाजिक वातावरण प्रस्तुत करें कि बालकों में सामूहिक प्रवृत्ति तथा सामाजिक दृष्टिकोण उत्पन्न होते रहें तथा उनमें सामाजिक चेतना, सहानुभूति, सहयोग सामाजिक सेवा, सहनशीलता तथा अनुशासन आदि विभिन्न सामाजिक गुण विकसित हो जाएं।

4. संस्कृति की सुरक्षा, सुधार तथा हस्तांतरण–

विद्यालय का कार्य संस्कृति की सुरक्षा, उसमें सुधार तथा उसे भावी पीढ़ी को हस्तांतरित करना है। अतः विद्यालय को चाहिए कि वह संस्कृति की रक्षा तथा सुधार करें एवं उसे भावी पीढ़ी को विभिन्न सामाजिक एक वैज्ञानिक विषयों के रूप में हस्तांतरित करें जिससे बालक प्राकृतिक, राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा धार्मिक सभी प्रकार के वातावरण से परिचित हो जाए।

5. विद्यालय और बच्चों का नैतिक चारित्रिक विकास–

विद्यालयों में बच्चों को उच्च सामाजिक पर्यावरण मिलता है। यहाँ की सामाजिक क्रियाओं में भाग लेने में उन्हें अपने संवेगों पर नियंत्रण रखना होता है, नियमों का पालन करना होता है, सही बात के समर्थन में शक्ति का प्रयोग करना होता है, और इस प्रकार बड़े सहज भाव में उनका नैतिक एवं चारित्रिक विकास होता है। वैसे भी विद्यालयों, में भाषा, साहित्य और सामाजिक विषयों के शिक्षण के साथ–साथ नैतिक शिक्षा दी जाती है। प्रातः कालीन सभा में प्रार्थना व नैतिक उपदेष बच्चों के नैतिक एवं चारित्रिक विकास हेतु ही आयोजित किये जाते हैं।

6. विद्यालय और व्यवसायिक तथा औद्योगिक शिक्षा–

विद्यालय का अगला प्रमुख कार्य बालकों को व्यवसायिक तथा औद्योगिक शिक्षा देना है। अतः यह आवश्यक है कि विद्यालय बालकों को व्यवसायिक तथा औद्योगिक शिक्षा प्रदान करे जिससे आगे चलकर वे समाज तथा अन्य व्यक्तियों पर भार न बनते हुए अपनी जीविका की समस्या को स्वयं ही सुलझा लें। भारत जैसे निर्धन देश में विद्यालयों को इस सम्बन्ध में विषेश ध्यान देने की आवश्कयता है।

7. विद्यालय और नागरिकता का विकास–

विद्यालय का अगला औपचारिक कार्य बालकों में नागरिकता के गुणों को विकसित करना है जिससे वे वर्तमान जनतंत्र की उत्तम तथा उत्तरदायित्वपूर्ण नागरिक बन जाएं। एक उत्तम नागरिक को अपने कर्तव्यों तथा अधिकारों का ज्ञान होना एवं उनका उचित प्रयोग करना परम आवश्यक है। इस दृष्टि से विद्यालय को बालकों के समक्ष ऐसा वातावरण प्रस्तुत करना चाहिए जिसमें रहते हुए उन्हें अपने कर्तव्यों तथा अधिकारों का ज्ञान हो जाए।

उपरोक्त कार्यों के साथ ही साथ विद्यालय बालक में राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति की चेतना का विकास कर राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति में सहयोग करता है। इसके साथ ही साथ वह उसमें आध्यात्मिक गुणों के विकास में भी सहायक होता है।

4.9 समाज विद्यालय और राज्य–

वर्तमान में प्रायः सभी देशों में शिक्षा की व्यवस्था करना राज्य का उत्तरदायित्व है इसलिए किसी भी देश में विद्यालय और समाज के बीच संम्बन्ध देश विशेष के शासनतंत्र और उसके समाज के स्वरूप, इन दों तत्वों पर निर्भर करते हैं और चूँकि भिन्न–भिन्न देशों में भिन्न–भिन्न शासन प्रणालियाँ है और उनके समाज के स्वरूपों में भी बड़ी भिन्नता है इसलिए इनके विद्यालयों एवं समाज के बीच सम्बन्धों में भी बड़ी भिन्नता है। यहाँ इन सब देषों के विद्यालयों एवं समाजों के बीच सम्बंधों की चर्चा करना सम्भव नहीं है। इसलिए हम केवल अपने देश के विद्यालय एवं समाज के बीच सम्बन्धों की चर्चा करेंगे।

हमारे देश में लोकतंत्रात्मक षासन प्रणाली है और शिक्षा की व्यवस्था करना राज्य का उत्तरदायित्व है। लोकतंत्र स्वतंत्रता, समानता और भ्रातृत्व के सिद्धांतों पर आधारित है इसलिए जन शिक्षा का पक्षधर है और सबको शिक्षा के समान अवसर प्रदान करने का पक्षधर है परन्तु हमारा राज्य इस उत्तरदायित्व का निर्वाह पूर्ण रूप से नहीं कर पा रहा है, वह इस कार्य में समाज का सहयोग ले रहा है। वर्तमान में हमारे देश में कुछ विद्यालय सरकार द्वारा

चलाए जा रहे हैं और कुछ विद्यालय समाज द्वारा चलाए जा रहे हैं। इन्हें क्रमशः सरकारी और गैरसरकारी विद्यालय कहते हैं। सरकारी विद्यालयों एवं समाज के बीच वरन इतना ही सम्बन्ध है कि ये विद्यालय समाज के बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था कर रहे हैं और समाज इनके द्वारा अपने बच्चों की शिक्षा की व्यवस्था कर रहे हैं। यह व्यवस्था किस स्तर की है, इससे सभी परिचित हैं। काष इन विद्यालयों एवं समाज के बीच सहयोग हो तो परिणाम अच्छे हो सकते हैं।

गैर सरकारी विद्यालय दो प्रकार के हैं– एक सरकारी आर्थिक सहायता प्राप्त और दूसरे स्ववित्तपोषित। सरकार सहायता प्राप्त विद्यालयों में कुछ विद्यालय ऐसे हैं जिनके और समाज के बीच सहयोगपूर्ण सम्बन्ध हैं और कुछ विद्यालय ऐसे हैं जो एकदम सरकारी विद्यालयों की तर्ज पर चल रहे हैं, इनके और समाज के बीच कोई सम्बन्ध नहीं है।

स्ववित्तपोशित विद्यालय दो प्रकार के हैं– एक वे जो समाजसेवी व्यक्तियों अथवा संस्थाओं एवं धार्मिक संस्थाओं के द्वारा समाज सेवा भाव से चलाए जा रहे हैं और दूसरे वे जो विभिन्न संस्थाओं द्वारा समाजसेवा के नाम पर आर्थिक लाभ के लिए चलाए जा रहें हैं। इनमें पहले प्रकार के विद्यालय समाज की शैक्षिक सेवा कर रहे हैं और दूसरे प्रकार के विद्यालय समाज का आर्थिक शोषण कर रहे हैं। पहले प्रकार के विद्यालयों एवं समाज के बीच सहयोगपूर्ण सम्बन्ध है और दूसरे प्रकार के विद्यालयों एवं समाज के बीच शोषक और शोषित के सम्बन्ध है और ये सम्बन्ध भी भिन्न–भिन्न विद्यालयों एवं भिन्न–भिन्न समाजों के बीच भिन्न–भिन्न प्रकार के हैं।

यथार्थ के साथ आदर्श की चर्चा करना आवश्यक है। आदर्श तो यह है कि कोई समाज अथवा राज्य विद्यालयों की स्थापना अपनी भावी पीढ़ी को भविष्य के लिए तैयार करने के लिए करता है और वह इस रूप में विद्यालयों का निर्माणकर्ता होता है। इसके बदले में विद्यालय समाज के बच्चों का वांछित विकास करते हैं और उन्हें भविष्य के लिए तैयार करते हैं। इस रूप में विद्यालय व्यक्ति और समाज के निर्माणकर्ता होते हैं। इस रूप में विद्यालय व्यक्ति और समाज के निर्माणकर्ता होते हैं। साफ जाहिर है कि विद्यालय और समाज एक दूसरे पर आश्रित हैं, इनमें अन्योन्याश्रित संबन्ध है। तब इन्हें एक दूसरे का सहयोग करना चाहिए। समाज को विद्यालय की स्थापना करनी चाहिए, उनका सुचारू रूप से संचालन करना चहिए और उनके द्वारा आयोजित किसी भी प्रकार के पाठ्यक्रम एवं सहपाठ्यचारी कार्यक्रमों में सहयोग करना चाहिए। इसके बदले में विद्यालयों को समाज की आगे आने वाली पीढ़ियों को सुरक्षित और सुसंस्कृत करना चाहिए। अब तो विद्यालयों से यह भी अपेक्षा की जाती है कि वे बच्चों की शिक्षा के साथ–साथ निरक्षर प्रौढ़ों की भी शिक्षा की व्यवस्था करें, वे समाज की किसी भी प्रकार की

बुराइयों को दूर करें और नए समाज का निर्माण करें। यह सब तभी सम्भव है जब विद्यालय, समाज और राज्य के मध्य सहयोग पूर्ण सम्बन्ध हो।

बोध प्रश्न

टिप्पणी–(i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

प्रश्न 1:– विद्यालय के किन्हीं चार प्रमुख कार्यों को बताइए।

.....

.....

4.10 सारांश

शिक्षा के साधन अथवा अभिकरण से तात्पर्य उन सभी सामाजिक समूहों और संगठनों से होता है जो मनुष्य की शिक्षा में, प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष किसी भी रूप में सहयोग प्रदान करते हैं। शिक्षा के अभिकरणों को मुख्य रूप से तीन वर्गों में बाँटा गया है। प्रथम वर्ग में विद्वानों ने औपचारिक, अनौपचारिक और निरौपचारिक आदि भागों में बॉटा है। द्वितीय वर्ग के अनुसार अभिकरणों को दो भागों सक्रिय और निष्क्रिय दो भागों में बाटा गया है। तृतीय वर्गीकरण ब्राउन महोदय ने प्रस्तुत किया। औपचारिक शिक्षा के अभिकरणों में विद्यालय का प्रमुख स्थान है। शिक्षा और उनके अभिकरणों के विकास के लिए समाज, विद्यालय और राज्य में पारस्परिक सहयोग का होना परम आवश्यक है।

4.11 अभ्यास कार्य–

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर बताइए–

1. शिक्षा के अभिकरणों को परिभाषित कीजिए।
2. शिक्षा के प्रमुख अनौपचारिक अभिकरणों के नाम बताइए।
3. शिक्षा के अभिकरण के रूप में परिवार का क्या महत्व है ?
4. विद्यालय की आवश्यकता क्यों है ?
5. विद्यालय के नागरिकता की भावना विकास सम्बन्धी कार्यों के विषय में आप क्या जानते हैं ?

4.12 बोध प्रश्नों के उत्तर–

1. शिक्षा के अभिकरणों से तात्पर्य उन सभी सामाजिक समूहों और

संगठनों से होता है जो मनुष्यों की शिक्षा में प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष, किसी भी रूप में सहयोग प्रदान करते हैं।

2. शिक्षा के अभिकरणों को मुख्य रूप से तीन वर्गों में बाँटा गया है।

3. शिक्षा के औपचारिक अभिकरणों से तात्पर्य उन अभिकरणों से होता है जिनका निश्चित उद्देश्य, पाठ्यक्रम और शिक्षण विधियाँ आदि होती हैं जबकि अनौपचारिक शिक्षा में इसमें से कुछ निश्चित नहीं होता है।

4. परिवार के चार प्रमुख कार्य निम्न हैं–

   i. बालक का शारीरिक विकास करना।

   ii. बालक का मानसिक विकास करना।

   iii. बालक का संवेगात्मक विकास करना।

   iv. भाषा का विकास करना।

5. "गृह प्रेम और स्नेह का केन्द्र है, शिक्षा का सर्वोत्तम साधन है, और बच्चे का सर्वप्रथम विद्यालय है।" यह कथन पेस्टालाजी का है।

6. विद्यालय शब्द की उत्पत्ति ग्रीक भाषा के Skhole शब्द से मानी जाती है।

7. विद्यालय के किन्हीं चार प्रमुख कार्य इस प्रकार हैं–

   i. बच्चों का शारीरिक विकास करना।

   ii. बच्चों का सामाजिक विकास करना।

   iii. बच्चों का नैतिक एवं चारित्रिक विकास करना।

   iv. बच्चों को व्यवसायिक और औद्योगिक शिक्षा प्रदान करना।

4.13 संदर्भित ग्रंथ सूची–

1. Philosophical and Sociological Principles of Education by Raman Bihari lal.
2. Philosophical and Sociological Foundations of Education by G.S.D. Tyagi.
3. Theory of Education by N.R. Swaroop Saxeana.
4. Principles of Education by Dr. Saroj Sexena
5. Educational thought and Practice by Raman Bihari lal and Smt. Sunita Palod
6. Principles of Education by N.R. Swaroop Saxena

खण्ड

2

पाठ्यक्रम के अन्तर्गत विभिन्न सोपान

इकाई-5 5
पाठ्यक्रम का अर्थ, प्रकार एवं सिद्धान्त

इकाई-6 21
पाठ्यक्रम विकास की प्रक्रिया

इकाई-7 49
पाठ्यक्रम - विभिन्न विषयों का महत्व

इकाई-8 67
सहपाठ्यक्रमीय क्रियाकलाप

UGED-03 - शिक्षा के सिद्धान्त

खण्ड-1 शिक्षा के सिद्धान्त

इकाई-1 शिक्षा की अवधारणा

इकाई-2 शिक्षा के सामाजिक एवं वैयक्तिक उद्देश्य

इकाई-3 शिक्षा के अन्य उद्देश्य

इकाई-4 शिक्षा के अभिकरण या साधन

खण्ड-2 पाठ्यक्रम के अन्तर्गत विभिन्न सोपान

इकाई-5 पाठ्यक्रम का अर्थ, प्रकार एवं सिद्धान्त

इकाई-6 पाठ्यक्रम विकास की प्रक्रिया

इकाई-7 पाठ्यक्रम - विभिन्न विषयों का महत्व

इकाई-8 सहपाठ्यक्रमीय क्रियाकलाप

खण्ड-3 जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में शिक्षा के मूल्य

इकाई-9 जनतन्त्र और शिक्षा

इकाई-10 समुदाय और शिक्षा

इकाई-11 समाजिक परिवर्तन और गतिशीलता

इकाई-12 समाजवाद और शिक्षा

खण्ड-4 वैश्वीकरण और शिक्षा

इकाई-13 राज्य और शिक्षा

इकाई-14 राष्ट्रीयता के लिए शिक्षा

इकाई-15 अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध के लिए शिक्षा

इकाई-16 भावात्मक एकता के लिए शिक्षा

खण्ड-2 परिचय- पाठ्यक्रम के अन्तर्गत विभिन्न सोपान

परिचय :

शिक्षा एक मानव गुणों के निर्माण की प्रक्रिया है जिसमें एक तरफ शिक्षक तथा दूसरी तरफ शिष्य होता है ये दोनों शिक्षा की प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हैं शिक्षक शिष्य को सिखाने के लिए कुछ योजनाओं का निर्माण करता है जिसको शिक्षक विद्यार्थी के आसानी के लिए अपनी बनायी हुई योजनाओं को कई भागों में बाँटता है। इन्हीं भागों को यह पाठ्यक्रम का नाम देता है। इस प्रकार पाठ्यक्रम के अनुसार पाठ्यवस्तु की प्रक्रिया पूर्ण करने का आधार प्रस्तुत करता है और लक्ष्य तक पहुँचाता है।

इकाई-5 में हम लोगों ने देखा कि पाठ्यक्रम का अर्थ, वर्तमान पाठ्यक्रम के दोष, सुझाव, पाठ्यक्रम के प्रकार, बालक पाठ्यक्रम सम्बन्धित अनुभव केन्द्रित पाठ्यक्रम, क्रिया केन्द्रित, केन्द्रीय पाठ्यक्रमस पाठ्यक्रम - निर्माण के सिद्धान्त, कल्पना-शक्ति विकास का सिद्धान्त, उपयोगिता का सिद्धान्त, मानववादी सिद्धान्त का वर्णन किया गया। अतः छात्र उपरोक्त सम्प्रत्यय को समझ सकेंगे।

इकाई-6 में पाठ्यक्रम-विकास, विषय केंन्द्रित पाठ्यक्रम, विद्यार्थी सम्बन्धी पाठ्यक्रम, शास्त्रीय पाठ्यक्रम सम्बन्धी, अनुभव सम्बन्धी पाठ्यक्रम, आवश्यकता के अनुसार पाठ्यक्रम, समस्या केन्द्रित पाठ्यक्रम, व्यवसाय सम्बन्धित पाठ्यक्रम एकीकृत पाठ्यक्रम, संबंर्धित पाठ्यक्रम, आर्दशवादियों के अनुसार पाठ्यक्रम का निर्माण, प्रकृति वादियों के अनुसार पाठ्यक्रम का वर्णन किया गया। अतः छात्र उपरोक्त सम्प्रत्यय को समझ सकेंगे।

इकाई-7 जैसा कि हम जानते हैं कि शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य व्यवहार परिवर्तन होता है। एक शिक्षक शिक्षा द्वारा अपने विद्यार्थी के व्यवहार में आपेक्षित परिवर्तन लाने का प्रयास करता है। पाठ्यक्रम शिक्षण कि क्रियाओं केसम्पादन का प्रमुख आधार होता है। पाठ्यक्रम के आधार पर ही एक शिक्षक बालक में आपेक्षित गुणों को उत्पन्न कर उसके व्यवहार परिवर्तन व्यवहार का प्रयास करता है। इकाई-8 इकाई के अन्तर्गत हम प्रस्तावना, सह पाठ्यक्रमीय क्रियाकलाप की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, पाठ्येत्तर क्रियाओं की योजना, पाठ्येत्तर क्रियाओं के योजना के लाभ पाठ्येत्तर क्रियाकलाप शिक्षण के कार्यक्रम के इन सभी बिन्दुओं के विस्तृत चर्चा की जायेगी। इसके साथ ही इनके विभिन्न पहलुओं पर भी ध्यान केन्द्रित किया जायेगा।

इकाई–5 पाठ्यक्रम का अर्थ, प्रकार एवं सिद्धान्त

इकाई की रूपरेखा

5.1 प्रस्तावना

5.2 उद्देश्य

5.3 पाठ्यक्रम का अर्थ

5.3.1 पाठ्यक्रम का संकुचित अर्थ

5.3.2 पाठ्यक्रम का व्यापक अर्थ

5.4 वर्तमान पाठ्यक्रम के दोष

5.4.1 वर्तमान पाठ्यक्रम हेतु सुझाव

5.5 पाठ्यक्रम के प्रकार

5.5.1 बालक सम्बन्धित पाठ्यक्रम

5.5.2 अनुभव केन्द्रित पाठ्यक्रम

5.5.3 क्रिया केन्द्रित पाठ्यक्रम

5.5.4 विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम

5.5.5 केन्द्रीय पाठ्यक्रम

5.6 पाठ्यक्रम- विकास के सिद्धान्त

5.6.1 आवश्कता का सिद्धान्त

5.6.2 कल्पना–शक्ति विकास का सिद्धान्त

5.6.3 उपयोगिता का सिद्धान्त

5.6.4 कौतूहल, यथार्थता तथा सामान्यीकरण का सिद्धान्त

5.6.5 शिक्षा की अवधि

5.6.6 नागरिकता का गुण

5.6.7 विचार सहमति का सिद्धान्त

5.6.8 मनुष्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

5.8 मानववादी पाठ्यक्रम

5.8.1 तार्किक मनोवादियों के अनुसार पाठ्यक्रम

5.8.2 भारतीय मनोवादियों के अनुसार पाठ्यक्रम

5.8.3 अन्य पाश्चात्य मनोवादियों के अनुसार पाठ्यक्रम

5.9 सारांश

5.10 अभ्यास प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

शिक्षा मानव गुणों के निर्माण की प्रक्रिया है जिसमें एक तरफ शिक्षक तथा दूसरी तरफ शिष्य होता है। ये दोनों एक शिक्षा की प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हैं। शिक्षक शिष्य को सिखाने के लिए कुछ योजनाओं का निर्माण करता है जिसको शिक्षक विद्यार्थी की सहायता के लिए अपनी बनायी हुई योजनाओं को कई भागों में बाटता है। इन्हीं भागों को वह पाठ्यक्रम का नाम देता है। इस प्रकार शिक्षक पाठ्यक्रम के अनुसार पाठ्यवस्तु की प्रक्रिया पूर्ण करने का आधार प्रस्तुत करता है और लक्ष्य तक पहुँचाता है।

आधुनिक शिक्षा विदों का कथन है कि शिक्षा एक त्रिमुखी प्रक्रिया है जिसमें एक तरफ शिक्षक तथा दूसरी तरफ शिक्षार्थी होता है और तीसरे ध्रुव पर प्रक्रिया में पाठ्यक्रम को रखा जाता है। पाठ्यक्रम के बिना शिक्षा प्रक्रिया अधूरी रहती है। पाठ्यक्रम शिक्षा की वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा शिक्षक और शिक्षार्थी के बीच शैक्षिक सम्बन्ध को स्थापित किया जाता है। शिक्षा के उद्देश्य के निर्धारण की बात जब शिक्षा विदों के मन में आती है तो वे जरूर सोंचते हैं कि किस प्रकार के प्राठ्यक्रम का निर्माण किया जाय जिससे विद्यार्थियों को सीखने में कठिनाई न हो। क्यों कि सीखने और सिखाने की क्रिया में पाठ्यक्रम का सबसे बड़ा योगदान होता है। इस प्रकार कहा जा सकता है कि सीखने और सिखाने की क्रिया में पाठ्यक्रम शिक्षा का आधार होता है।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन कर लेने के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे कि:—

- पाठ्यक्रम के प्रत्यय, उसके दोषों एवं प्रकारों को जान सकेंगे।
- विद्यार्थी पाठ्यक्रम निर्माण के सिद्धान्तों की व्याख्या कर सकेंगे।

- माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार पाठ्यक्रम के सिद्धान्तों का वर्णन कर सकेंगे।
- मानववादी पाठ्यक्रम के गुणों को जान सकेंगे।
- पाठ्यक्रम निर्माण के विभिन्न सिद्धान्तों की समीक्षा कर सकेंगे।

5.3 पाठ्यक्रम का अर्थ

पाठ्यक्रम को बहुत से शिक्षाविदों पाठ्यचर्या के नाम से भी जानते हैं। इसे अंर्गेजी में हम 'करीक्यूलम' (Curriculum) के नाम से जानते हैं। ' Curriculum शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा से हुयी है, जिसका अर्थ होता है ' "Runway" जिसको हिन्दी में दौड़ का मार्ग या मैदान कहते हैं। इस प्रकार कहा जा सकता है कि जिस प्रकार एक धावक दौड़कर अपने गन्तव्य स्थान तक पहुँचता है, ठीक उसी प्रकार पाठ्यक्रम के अनुसार एक विद्यार्थी अपनी मंजिल तक पहुँच सकता है।

बेंट तथा क्रोनवर्ग के अनुसार– "पाठ्यक्रम पाठ्य–वस्तु का सुव्यवस्थित रूप है, जो विभिन्न आयु के बालकों की आवश्यकताओं की पूर्ति करता है।"

5.3.1 पाठ्यक्रम का संकुचित अर्थ

पाठ्यक्रम को पाठ्यचर्या के नाम से ही जानते हैं। संकुचित अर्थ में पाठ्यक्रम कहते हैं, जो अध्ययन का क्रम (Course of study) 'सिलेबस' है। जिसमें कुछ ज्ञानात्मक अनुभव भी निहित है। इस प्रकार के पाठ्यक्रम के अनुसार बालकों को कुछ सैद्धान्तिक तथा विषयी ज्ञान प्रदान किये जाते हैं। इसमें बालकों की सभी प्रकार की क्षमताओं का ध्यान रखा जाता है।

5.3.1 पाठ्यक्रम का व्यापक अर्थ

आधुनिक युग में पाठ्यक्रम का व्यापक अर्थ लगाया जाता है। पाठ्यक्रम के द्वारा शिक्षक बालक के आदतों एवं व्यवहारों में परिवर्तन लाता है। जो परिवर्तन स्कूल के रास्तों से होकर गुजरते हैं। पाठ्यक्रम को इस प्रकार से बनाया जाता है कि जिसके अनुसार बालक को विषयी ज्ञान ही नहीं बल्कि विद्यालयी वातावरण के साथ–साथ सामाजिक व्यवहार सम्बन्धी बातों का भी ज्ञान हो जाय। इस प्रकार कहा जा सकता है कि पाठ्यक्रम के अन्तर्गत विद्यालय का पूरा वातावरण आ जाता है।

माध्यमिक शिक्षा आयोग ने लिखा है:–

"यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिये कि उत्तम शैक्षिक विचार विषयों से नहीं है, बल्कि उसमें वे सभी अनुभव शामिल है, जो एक बालक विद्यालय में प्राप्त करता है।"

इस प्रकार कहा जा सकता है कि विद्यालय में वे सब बातें सिखायी जाती हैं जो पाठ्यक्रम के अन्तर्गत आती हैं। इसके अनुसार हम कह सकते हैं कि–

"पाठ्यक्रम विद्यालय वातावरण में होने वाली सभी क्रियाओं का योग है।"

डीवी के अनुसार:– *"सीखने का विषय या पाठ्यक्रम पदार्थों, विचारों और सिद्धांतों का चित्रण है, जो कि उद्देश्यपूर्ण लगातार क्रियान्वेषण के साधन या बाधा के रूप में आ जाते हैं।"*

5.4 वर्तमान पाठ्यक्रम के दोष (Defects of Present Curriculum)

लगभग देखा जाय तो प्राचीन युग से वर्तमान युग तक विद्यार्थियों को किसी न किसी योजना के ही तहत पढ़ाया जाता है, परन्तु ये सभी प्रकार की योजनायें असफल प्रतीत हो होती नजर आ रहीं हैं, जिसके लिये बहुत सारे शिक्षाविदों ने इसकी तरफ अपना ध्यान आकर्षित करना शुरू कर दिया है।

वर्तमान समय के पाठ्यक्रम की बात की जाय तो यह पाठ्यक्रम निर्धारित नहीं किया जाता बल्कि 'सिलेबस' निर्धारित किया जाता है क्योंकि इस प्रकार के सिलेबस में सिर्फ स्कूली शिक्षा का बोध कराया जाता है जबकि पाठ्यक्रम के अन्तर्गत स्कूली शिक्षा से लेकर बालक की अभिप्रेरणा सम्बन्धी बातों और व्यवहार सम्बन्धित बातों को भी शामिल किया जाता है।

प्रचलित पाठ्यक्रम में प्रायः निम्नलिखित दोष पाये जाते हैं:–

- वर्तमान पाठ्यक्रम को सूक्ष्म रूप में निर्मित किया गया है जो बालक के भविष्य का निर्धारण करने में असक्षम पाया जा रहा है।
- इस समय के पाठ्यक्रम में व्यवहारिक ज्ञान पर अधिक महत्व नहीं दिया गया है और पुस्तकीय एवं सैद्धान्तिक ज्ञान को अधिक महत्व दिया गया है।
- वर्तमान समय के पाठ्यक्रम में महत्वपूर्ण सामग्रियों का अभाव पाया

जाता है। इसमें अनावश्यक तत्वों को लाद दिया गया है जिससे बालकों के मानसिक स्तर पर बहुत प्रभाव पड़ता है।

- वर्तमान पाठ्यक्रम में व्यावहारिक एवं क्रियात्मक तत्वों अपर्याप्त स्थान दिया जाता है।
- इस पाठ्यक्रम में बालक की किसी भी प्रकार की आवश्यकताओं का ध्यान नहीं रखा गया है।
- यह पाठ्यक्रम व्यक्तिगत विभिन्नताओं को उपेक्षित करता है।
- वर्तमान पाठ्यक्रम परीक्षा प्रणाली को अधिक महत्व देता है।
- इस समय के पाठ्यक्रम बालक के व्यावसायिक भविष्य को निर्धारित नहीं करता बल्कि उसके धार्मिक जीवन में प्रवेश हेतु अधिक महत्व देता है।

इस प्रकार सभी राज्यों के पाठ्यक्रमों को देखा जाय तो वो अपने सिलेबस में पुस्तकीय स्वभाव को अधिक महत्त्व दिये हैं। वे हमेशा तार्किक ज्ञान को अधिक महत्व देते हैं तथा साथ में तथ्यात्मक ज्ञान प्रदान करने पर अधिक बल देते हैं।

5.4.1 वर्तमान पाठ्यक्रम में सुधार हेतु सुझाव

- वर्तमान समय के पाठ्यक्रम का निर्धारण इस प्रकार से करना चाहिये जो बालक के भविष्य को सुनियोजित ढंग से उसकी मंजिल तक पहुँचा सके।
- पाठ्यक्रम को व्यावसायिक विषयों से जोड़ते हुये बनाना चाहिये।
- वर्तमान पाठ्यक्रम को सिर्फ सैद्धान्तिक तथ्यों से नहीं बल्कि व्यावहारिक तत्वों से परिपूर्ण करना चाहिए तथा बालक की अभिप्रेरणा को विकसित करने योग्य बनाना चाहिये।
- वर्तमान पाठ्यक्रम को विषयी सिलेबस के आधार पर नहीं बल्कि उसको सभी विषयों से सम्बन्ध बनाते हुये निर्धारित करना चाहिए।

इस लिए पाठ्यक्रम को इस प्रकार बनाया जाय कि वह बालकों के विविध पक्षीय विकास का प्रयत्न करें। इसको इस प्रकार बनाया जाना चाहिए कि वह सभी बालकों के व्यक्तित्व को विकसित करे।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

1. निम्नलिखित प्रश्नों का संक्षिप्त उत्तर लिखिए

i:– पाठ्यक्रम का अर्थ समझाइये?

.....

ii:– वर्तमान पाठ्यक्रम के गुणों एवं दोषों को बताइये?

.....

5.5 पाठ्यक्रम के प्रकार (Types of Curriculum)

पाठ्यक्रम की योजना तथा संगठन कई दृष्टिकोणों के अनुसार की गयी है। इसलिये पाठ्यक्रम अनेक प्रकार के होते हैं। पाठ्यक्रम के विभिन्न प्रकार निम्नलिखित हैं:–

5.5.1 बालक सम्बन्धित पाठ्यक्रम (Curriculum of Child Related)

इस प्रकार के पाठ्यक्रम का निर्धारण बालक के रूचियों एवं योग्यताओं को ध्यान में रखकर किया जाता है। चूंकि बालक को ही शिक्षा का केन्द्र विन्दु मानकर पाठ्यक्रम का निर्धारण किया जाता है इसलिये इसको बालक सम्बन्धी पाठ्यक्रम कहा जाता है।

5.5.2 अनुभव केन्द्रित पाठ्यक्रम (Experence Centered Curriculum)

इस प्रकार के पाठ्यक्रमों में बालकों के अनुभव द्वारा सीखने के अवसर प्रदान किये जाते हैं, जिससे बालक के व्यक्तित्व का पूर्णतः विकास हो और बालक अपनी क्षमता एवं योग्यता के अनुसार अनुभव प्राप्त कर सके। इसलिये वर्तमान समय में इस प्रकार के पाठ्यक्रम बनाने पर अधिक जोर दिया जा रहा है जिससे बालक का व्यक्तित्व निखर कर सामने आ सके।

5.5.3 क्रियाकेन्द्रित पाठ्यक्रम (Activity- Centered Curriculum)

इस प्रकार के पाठ्ययक्रम का निर्धारण क्रिया सम्बन्धित बातों को ध्यान में रखकर किया जाता है। इसलिए इस प्रकार के पाठ्यक्रम का

आधार पुस्तकीय ज्ञान न होकर बालक की क्रियायें, योग्यताएं, आवश्यकताएं तथा प्रेरणाएं हुआ करती हैं।

5.5.4 विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम

विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम में विषयों का ज्ञान प्रदान करना आवश्यक होता है। यह पाठ्यक्रम बालक की रूचि को देखकर नहीं बनाया जाता है चाहे बालक की समझ में आये या न आये। क्योंकि इस प्रकार के पाठ्यक्रम का संयोजन वैदिक युग से लेकर वर्तमान युग तक चलता आ रहा है।

5.5.5 केन्द्रिय पाठ्यक्रम

केन्द्रिय पाठ्यक्रम वह पाठ्यक्रम है, जिसमें कुछ जीवनोपयोगी विषयों का अनिवार्य रूप से तथा कुछ को वैकल्पिक रूप से पढ़ाया जाता है। वैकल्पिक विषेयों का चुनाव विद्यार्थी अपनी योग्यता एवं रूचि के अनुसार करते हैं।

केन्द्रिय पाठ्यक्रम का उद्देश्य, "समस्त युवकों को व्यक्तिगत तथा सामाजिक समस्याओं से सम्बन्धित अनुभव प्रदान करना है। बालकों की वास्तविक समस्याओं को सुलझाने का अनुभव देना उन्हें सभी समस्याओं का सामना करने के योग्य बनाना भी इसका उद्देश्य होता है। इसके द्वारा बालकों को वह अनुभव प्रदान किया जाता है, जो समाज का अच्छा नागरिक बनने में उनके लिये सहायक हो।"

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

2. निम्नलिखित प्रश्नों का संक्षिप्त उत्तर लिखिए :–

i:– पाठ्यक्रम का अर्थ समझाइये?

ii:– पाठ्यक्रम कितने प्रकार के होते है ? उनके नाम लिखिए।

.....

5.6 पाठ्यक्रम–विकास के सिद्धान्त (Principle of Curriculum Construction)

ऊपर इतना विचार कर लेने के बाद अब यह प्रश्न उठता है कि

पाठ्यक्रम में किन–किन अनुभव तथा क्रियाओं को सम्मिलित किया जाय अथवा बालकों को क्या पढ़ाया जाये ? और पाठ्य–वस्तु का संगठन किस प्रकार किया जाये ? ताकि वे शिक्षा के उद्देश्य को प्राप्त कर सके, इन सब बातों की पूर्ति के लिये पाठ्यक्रम विकास के सिद्धान्त का सहारा लेना पड़ता है, जो निम्नलिखित है:–

5.6.1 आवश्यकता का सिद्धान्त

आवश्यकताएं कई प्रकार की होती हैं और कुछ उसके भविष्य से सम्बन्धित होती है, कुछ आवश्यकताएं व्यक्तिगत तथा कुछ आवश्यकताएं सामाजिक भी होती हैं। इसलिये पाठ्यक्रम का निर्माण इन सभी आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर करना चाहिए। जिससे उपयुक्त आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके।

5.6.2 कल्पना– शक्ति विकास का सिद्धान्त :–

कल्पना शक्ति भी अनेक मानसिक शक्तियों में से एक है। यह प्रकृति प्रदत्त होती है। इसे बढ़ाया या घटाया नहीं जा सकता है। पर इसे रचनात्मक दिशा में मोड़ा जा सकता हैं। साहित्य और इतिहास द्वारा इस रूचि का सही दिशा में मार्गदर्शन किया जा सकता है।

5.6.3 उपयोगिता का सिद्धान्त

उपयोगितावादी दार्शनिकों का कथन है कि पाठ्यक्रम में उपयोगी तथा व्यवहारिक विषयों का समावेश होना चाहिए। इस विषय में प्रकृतिवादी, प्रयोजनवादी तथा यथार्थवादी एक मत हैं।

5.6.4 कौतूहल, यथार्थता तथा सामान्यीकरण का सिद्धान्त

प्रो0 ह्वाइटहेड ने इस सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था। उनके अनुसार बालक शुरू में अपने वातावरण के विषय में ज्ञान प्राप्त करता है। इस प्रकार की क्रियायें अधिकतर शैशवावस्था में होती हैं। उसके बाद बाल्यावस्था में बच्चे को यथार्थता का ज्ञान प्राप्त होता है। इस अवस्था में उसे अपने ज्ञान को विस्तृत करना चाहिए, तथ्यों को ग्रहण करके यथार्थत्ता को पहचानने की क्षमता आनी चाहिए।

5.6.5 शिक्षा की अवधि

पाठ्यक्रम का निर्धारण शिक्षा की अवधि को ध्यान में रखकर करना चाहिए। इसमें एक कठिनाई मंदबुद्धि बालकों के सम्बन्ध में उपस्थित होती है। वे निर्धारित अवधि में अपेक्षाकृत कमज्ञान प्राप्त कर पाते हैं। अतः इस कमी को पूरा करने के लिये कुछ अलग से अतिरिक्त शिक्षा का प्रबन्ध कर देना उचित होगा।

5.6.6 नागरिकता का गुणः–

पाठ्यक्रम के निर्धारण करते समय हमें यह ध्यान रखना होगा कि ऐसे विषयों का समावेश किया जाय, जिससे बालक अच्छे नागरिक जीवन का दायित्व निभा सकें और जनतन्त्रात्मक पद्धति के विकास में अधिक से अधिक योग दे सकें। बालकों को भावी जीवन की शिक्षा देने का तात्पर्य उसकी रूचि का विकास करना है और विकास की आवश्यकतानुसार उससे ऐसे कार्य करवाना है जिससे उसका भावी जीवन विकसित हो सकें।

5.6.7 विचार– सहमति का सिद्धान्त :–

इस सिद्धांत का प्रतिपादन बोड महोदय ने किया है और उन्होंने इसे बहुत ही वैज्ञानिक बतलाया है। इन्होंने यह बतलाया है कि विचार–सहमति पाठ्यक्रम निर्धारण के लिये आवश्यक है। ऐसे हालत में यदि हमें किसी समयस्या का निर्धारण करना हो तो उसके लिये विशेषज्ञों के विचार प्रश्नावली विधि के द्वारा प्राप्त किये जाते हैं।

प्रो0 थार्नडाईक के सिद्धान्तों के आधार पर डॉ के0जी0 सैयदेन ने पाठ्यक्रम की रचना के सम्बन्ध में निम्नलिखित सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है–

- पाठ्यक्रम में उन विषयों तथा क्रियाओं को प्रधानता देनी चाहिए जिनके द्वारा बालकों की रूचियों तथा जानकारियों का विकास हो और जिसके द्वारा उनके पारिवारिक नागरिक तथा सामाजिक जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति हो।
- पाठ्यक्रम में उन मूल्यवान अनुभवों का समावेश होना चाहिए, जिनके द्वारा बालक जीवन की वास्तविक आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकें।
- पाठ्यक्रम में उन विज्ञान तथा कलाओं का समावेश होना चाहिए

जिनके प्रयोग के अवसर मनुष्य को जीवन में मिल सकें।

- पाठ्यक्रम में ऐसे विषयों तथा कार्यों को प्राथमिकता देनी चाहिये जो लाभप्रद तथा क्रियाशील आदतों का विकास कर सकें।
- पाठ्यक्रम में उन विषयों तथा कार्यक्रमों को स्थान देना चाहिए, जिनसे न केवल वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति हो सके, वरन् आगामी सामयिक समस्याओं तथा अप्रत्याशित परिस्थितियों के लिये बालकों को तैयार किया जा सके।

5.6.8 मनुष्य की प्रमुख प्रवृत्तियाँ

मनुष्य की तीन प्रमुख प्रवृत्तियाँ होती हैं। ये हैं जानना, अनुभव करना और अन्तिम प्रयास करना। पाठ्यक्रम को इन तीनों प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करना चाहिए। पाठ्यक्रम निर्धारित करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि उनमें वे सब विषय आ जाये, जो जानने से सम्बंधित हैं। जैसे– भूगोल, गणित, साहित्य, इतिहास आदि। मनुष्य की भावनाओं का गहरा सम्बन्ध काव्य संगीत और कला से हैं, क्योंकि इन्हीं के माध्यम से व्यक्ति अपनी भावनाओं का प्रदर्शन करता रहा है। अपने भौतिक अस्तित्व को बनाये रखने के लिये जो कुछ आवश्यक है पाठ्यक्रम में उसका भी समावेश होना चाहिए। अर्थात भोजन, मकान और वस्त्र प्राप्त करने का ज्ञान आवश्यक है।

प्लेटो के उस विचार की उपेक्षा नहीं कर सकते जिसमें उसने विचार व्यक्त किया है कि घृणित वस्तु से घृणा और प्रेम करने योग्य वस्तु से प्रेम करना सिखलाने वाली शिक्षा वास्तविक शिक्षा है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

1. पाठ्यक्रम विकास के सिद्धान्त का विस्तृत वर्णन कीजिए।

.....

5.7 माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार पाठ्यक्रम के सिद्धान्त

शिक्षा के विभिन्न स्तरों के लिये पाठ्यक्रम का स्वरूप अलग–अलग होता है, क्योंकि प्रत्येक स्तर के बालकों की रूचियाँ तथा आवश्यकताए

भिन्न–भिन्न हुआ करती हैं। इसलिये माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनूसार स्तर के अनुसार शिक्षा के तीन स्तरों का वर्णन किया गया है:–

(i) प्राथमिक स्तर के लिये (For Primary Level)

(ii) जूनियर हाईस्कूल स्तर के लिए (For Jonior high school Level)

(iii) माध्यमिक स्तर के लिये (For Secondary school Level)

5.7.1 प्राथमिक स्तर के लिए

प्राइमरी स्तर के विद्यार्थियों की आयु का निर्धारण 5–11 वर्ष की गयी है। यह बालक के जीवन की प्रथम सीढ़ी होती है। जहाँ पर बालक सर्वप्रथम स्कूल के प्रांगण में कदम रखता है। इस अवस्था के लिये निम्नलिखित बातों के आधार पर पाठ्यक्रम का निर्धारण किया गया है–

- पाठ्यक्रम की रूचियों, खेल की प्रवृत्तियों तथा क्रिया प्रवृत्तियों से सम्बन्धित होना चाहिए।
- यह बालक के शैक्षिक जीवन का प्रथम स्तर होता है जिसमें कहानियाँ तथा रोचक दृष्टान्तों को बालक अधिक पसन्द करते हैं। अतः उनके पाठ्यक्रमं में कहानियों को विशेष स्थान दिया जाना चाहिए।
- पाठ्यक्रम के अन्तर्गत किसी हस्तकला का भी समावेश होना चाहिए।
- बालक की यह ऐसी अवस्था होती है जहाँ से उसको जिधर चाहें उधर मोड़ सकते हैं। इसलिये इस अवस्था में पाठ्यक्रम में सभी प्रकार के विषयों का समावेश होना चाहिये। बेसिक शिक्षा की पाठशाला में निम्नलिखित विषयों का समावेश होना चाहिए– 1. भाषा 2. गणित, 3. सामाजिक विषय, 4. सामान्य विज्ञान तथा कृषि, 5. हस्तकला, 6. ड्राईंग, 7. शारीरिक शिक्षा।

5.7.2 जूनियर हाई स्कूल स्तर के लिए:–

इस अवस्था तक आते–आते बालक में समझदारी आ जाती है। इसलिये इस स्तर में सभी प्रकार के विषयों को रखना चाहिए तथा साथ में कुछ वैकल्पिक विषयों का भी समावेश होना चाहिए। जैसे– संस्कृत, कला, संगीत तथा वाणिज्य इत्यादि।

5.7.3 माध्यमिक स्तर के लिए:–

शिक्षा के इस स्तर पर बालकों की रूचियाँ, आवश्यकताओं तथा अभिवृत्तियों की विभिन्नता आने लगती है। इसलिये इस अवस्था का पाठ्यक्रम एकांकी क्षेत्र का न होकर बहुविधि क्षेत्र के अनुसार होना चाहिए। दूसरी तरफ इस बात का भी ध्यान रखना चाहिये कि इस स्तर पर बालक शिक्षा प्राप्त करके विभिन्न क्षेत्रों में प्रवेश करना चाहते हैं। इसलिये इस अवस्था के अनुसार पाठ्यक्रम का निर्धारण इस प्रकार का होना चाहिए जो उनके जीवन के भविष्य में उनको समाज का उपयोगी सदस्य बना सके। इन्हीं बातों को ध्यान में रखकर मुदालियर आयोग ने निम्नलिखित वर्गों में विभाजित किया है–

अनिवार्य विषय– 1. भाषा, 2. सामान्य विज्ञान, 3. सामाजिक विज्ञान, 4. हस्तकला।

इसके अन्तर्गत माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार पाठ्यक्रम निर्माण सिद्धान्त में निम्नलिखित सुधार करना चाहिए–

- पाठ्यक्रम का सामाजिक जीवन से सम्बन्ध होना चाहिए।
- पाठ्यक्रम इस प्रकार का होना चाहिए जो विद्यार्थियों के भिन्न–भिन्न अनुभव में एकता स्थापित कर सके।
- पाठ्यक्रम में लचीलापन तथा विविधता होनी चाहिए, जिससे कि उसको विद्यार्थियों की आवश्यकताओं एवं अभिरूचियों के अनुकूल बनाया जा सके।
- पाठ्यक्रम में जिन विषयों को स्थान दिया जाये वे एक–दूसरे से सम्बन्धित होने चाहिये जिससे कि उन्हें समन्वित रूप से पढ़ाया जा सके।
- पाठ्यक्रम में इस प्रकार की मनोरंजन–क्रियाओं का समावेश होना चाहिये जिसके द्वारा विद्यार्थी अपने अवकाश के समय का दुरूपयोग न कर सकें।

इस प्रकार देखा जाय तो पाठ्यक्रम के निर्माण सिद्धान्त में माध्यमिक शिक्षा आयोग ने बालक को केन्द्र विन्दु मानकर उसके भविष्य के विकास से सम्बन्धित सभी पहलुओं पर ध्यान केन्द्रित किया है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

प्रश्न 2:– निम्नलिखित प्रश्नों का विस्तृत वर्णन कीजिए–

(i) माध्यमिक शिक्षा आयोग के अनुसार पाठ्यक्रम निर्माण सिद्धान्त का विस्तृत वर्णन कीजिए।

5.8 मानववादी पाठ्यक्रम

मानववादी विचारधारा में केन्द्रविन्दु मानव होता है। मानववादी मानव को एक सम्पूर्ण मानव बनाने का प्रयास करते हैं। मानववादी व्यक्ति में यथोचित गुणों का विकास कर उसके सर्वांगीण विकास का प्रयत्न करते हैं।

जैसा कि हम जानते हैं कि मानव को पशु श्रेणी से ऊपर उठाकर मानव बनाने वाली "शिक्षा" ही है। शिक्षा एक उद्देश्यपूर्ण प्रक्रिया है। जिसका निर्माण मानव के विकास को ध्यान में रखकर किया जाता है। शिक्षा के उद्देश्य ऐसे होने चाहिए जो कि उसका सर्वांगीण विकास कर सके। जिससे कि व्यक्ति समाज में पूर्ण सामन्जस्य स्थापित कर सके। विभिन्न दार्शनिक विचारधाराओं ने शिक्षा के जिन उद्देश्यों का निर्धारण किया है उनकी प्राप्ति पाठ्यक्रम के द्वारा होती है। पाठ्यक्रम शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति का साधन होते हैं जिनके द्वारा शैक्षिक उद्देश्यों को प्राप्त किया जाता है।

मानववादी विचारधारा के दार्शनिकों ने अपने शैक्षिक उद्देश्यों के अनुरूप उन उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु साधनों की भी चर्चा की है। अर्थात उन उद्श्यों के अनुरूप पाठ्यक्रम की भी व्याख्या की है। मानववादियों द्वारा व्यक्त किये गये पाठ्यक्रम को ही 'मानववादी पाठ्यक्रम की संज्ञा प्रदान की गई है।

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि सभी मानववादी शैक्षिक उद्देश्यों और उनके अनुरूप पाठ्यक्रम के संदर्भ में एक मत नहीं हैं। तार्किक मनोवादियों, भारतीय मनोवादियों एवं अन्य पाश्चात्य मनोवादियों की विचारधाराओं में अंतर पाया जाता है। सभी मानववादियों में निश्चित पाठ्यक्रम के संदर्भ में मतैक्य का अभाव है।

5.8.1 तार्किक मानववादियों के अनुसार पाठ्यक्रमः–

तार्किक मनोवादी शिक्षा का उद्देश्य मानव की विवेक और बुद्धि के विकास को मानते हैं। इसलिए वे पाठ्यक्रम में उन विषयों को स्थान देना चाहते हैं जो मानव की बुद्धि और विवेक के विकास में योगदान कर सके। तार्किक मानववदियों का मानना था कि पाठ्यक्रम में उसी सामग्री का चुनाव किया जाय जो मानव के लिए सबसे अनिवार्य हो और अनिवार्य सामग्री वे उसे मानते थे जिसका कि मानव अनुभव में बार–बार प्रयोग होता हो। वे पाठ्यसामग्री के चुनाव में तार्किकता को आधार मानते थे। उनके अनुसार जो सामग्री जितनी अधिक तार्किक होगी उसकी पाठ्यक्रम में शामिल होने की सम्भावना उतनी ही अधिक होगी। अतः तार्किक मानववादियों ने बुद्धि विवेक के विकास में सहायक मानव अनुभव पर आधारित अनिवार्य तार्किक विषयों को अपने पाठ्यक्रम का मुख्य विषय माना है।

5.8.2 भारतीय मानववादियों के अनुसार पाठ्यक्रमः–

डा0 सर्वपल्ली, राधाकृष्णन, महात्मा गांधी, रवीन्द्रनाथ टैगोर, डा0 जाकिर हुसैन आदि विद्वानों की गणना भारतीय मानववादी विचारकों के रूप में की जाती है। भारतीय मानव संस्कृतियों के समन्वय एवं उनकी अच्छाइयों को शिक्षा के कार्यक्रमों में समावेश को शिक्षा का उद्देश्य मानते हैं। इनके अनुसार पाठ्यक्रम में भाषा, इतिहास, साहित्य, समाज विज्ञान और विज्ञान को शामिल किया जाना चाहिए। गाँधी के अतिरिक्त सभी भारतीय मानववादी ज्ञान एवं बुद्धि को पाठ्यक्रम का मुख्य विषय मानने के पक्ष में हैं जबकि गाँधी जी के अनुसार मानव के सर्वागीण विकास के लिए केवल ज्ञान ही पर्याप्त नहीं है। उनके अनुसार मानव के सर्वागीण विकास के लिए उसमें सेवाभाव, आचरण की शुद्धता होनी चाहिए। अतः उनके अनुसार पाठ्यक्रम में कला एवं कौशल तथा समाज विज्ञान को भी शामिल किया जाना चाहिए। इस प्रकार गाँधी के पाठ्यक्रम सम्बन्धी विचार अन्य भारतीय मानववादी विचारकों से अलग थे।

5.8.3 पाश्चात्य मानववादियों के अनुसार पाठ्यक्रमः–

मैसलो जैसे पाश्चात्य मानववादी शिक्षा के उद्देश्य में परम अनुभूतियों के विकास को मानते हैं उनके अनुसार पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जो परम अनुभूतियों के विकास में सहायक हो। अर्थात उनके अनुसार पाठ्यक्रम ऐसा

हो जो बालकों में मूल्यों का विकास करें। परम अनुभूति आनन्द के अनुभव की वह चरम अवस्था है जो चरम बिन्दु है और जिसके बाद कुछ नहीं है मैसलो ने इस परमानुभूति कहा है। इस अवस्था में पहुंचकर मानव सच्चा मानव हो जाता है। इसीलिए मैसलो की कला, साहित्य, संगीत जैसे विषयों को महत्व देता है क्योकि इन विषयों के अध्ययन से परमानुभूति संभव है। यही मैसलो की मानववादी शिक्षा का रहस्य है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी–(i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

प्रश्न 1: मानववादी पाठ्यक्रम का अर्थ समझाइए ।

.....

प्रश्न 2: किस प्रकार से मानववादी पाठ्यक्रम शिक्षा में समाज के लिये उपयोगी है, विस्तृत वर्णन कीजिये।

.....

प्रश्न 3. मानववादी पाठ्यक्रम तथा माध्यमिक आयोग के पाठ्यक्रम से तुलना कीजिए।

.....

प्रश्न 4. मानववादी पाठ्यक्रम तथा विद्यालयी पाठ्यक्रम में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

.....

5.9 सारांश–

मानव एक सामाजिक प्राणी है, जिसको पूरे जगत में सर्वोच्च प्राणी माना जाता है। इस प्राणी के विकास का कार्य शिक्षा करती है। क्योंकि वैदिक युग से लेकर चाहे वह मुस्लिम युग हो या बौद्ध युग हो, सभी युगों में शिक्षा देने का कार्य चलता रहा है। चाहे वह जिस प्रकार से दिया जाय।

वैदिक युग में भी जब शिक्षा दी जाती थी तो वह भी योजना के

अनुसार दी जाती थी। जैसे– किसी दिन धर्म से सम्बन्धित शिक्षा दी जाती थी तो किसी दिन युद्ध सम्बन्धित तो किसी दिन योग सम्बन्धित शिक्षा दी जाती थी। किन्तु शिक्षा किसी भी युग में दी जाती थी तो वह योजनाबद्ध तरीके से ही दी जाती थी।

आज के वर्तमान समय में उसी योजनाबद्ध शिक्षा को पाठ्यक्रम या पाठ्यचर्या या सिलेबस का नाम दिया गया। इस प्रकार कहा जा सकता है कि बालक के भविष्य को उज्ज्वल बनाने के लिये बिना पाठ्यक्रम के अनुसार शिक्षा देना एक अंधेरे में तीर चलाने के समान होता है।

इन्हीं सब बातों को ध्यान में रखते हुये माध्यमिक शिक्षा आयोग तथा यू.जी.सी. ने अपने–अपने स्तर पर पाठ्यक्रम का निर्धारण किया है। क्योंकि वे सभी आयोग कहते हैं कि पाठ्यक्रम का निर्माण करके शिक्षा प्रदान करने पर बालक को सभी प्रकार के विषयों तथा आन्तरिक एवं व्यवहारिक बातों का पूरी तरह से ज्ञान हो जाता है।

इसलिए हमें हमेशा एक पाठ्यक्रम निर्धारण के अनुसार शैक्षिक कार्य करना चाहिए।

5.10 अभ्यास प्रश्न

1. पाठ्यक्रम के कितने अर्थ होते हैं ? उनका सविस्तार वर्णन कीजिए।
2. वर्तमान पाठ्यक्रम के दोष तथा प्राचीन पाठ्यक्रम के दोषों की तुलना कीजिए।

इकाई– 6 पाठ्यक्रम– विकास की प्रक्रिया

इकाई की रूपरेखा

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 पाठ्यक्रम–विकास

6.4 विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम

- 6.4.1 *विद्यार्थी सम्बन्धी पाठ्यक्रम*
- 6.4.2 *शास्त्रीय सम्बन्धी पाठ्यक्रम*
- 6.4.3 *अनुभव सम्बन्धी पाठ्यक्रम*
- 6.4.4 *आवश्यकता के अनुसार पाठ्यक्रम*
- 6.4.5 *समस्या केन्द्रित पाठ्यक्रम*
- 6.4.6 *वास्तविक पाठ्यक्रम*
- 6.4.7 *व्यवसाय केन्द्रित पाठ्यक्रम*
- 6.4.8 *शिल्प केन्द्रित पाठ्यक्रम*
- 6.4.9 *सहसम्बन्धित पाठ्यक्रम*
- 6.4.10 *व्यापक क्षेत्रीय पाठ्यक्रम*
- 6.4.11 *एकीकृत पाठ्यक्रम*
- 6.4.12 *संवर्धित पाठ्यक्रम*

6.5 पाठ्यक्रम विकास के चरण

- 6.5.1 *आदर्शवादियों के अनुसार पाठ्यक्रम*
- 6.5.2 *प्रकृतिवादियों के अनुसार पाठ्यक्रम*
- 6.5.3 *यथार्थवादियों के अनुसार पाठ्यक्रम*
- 6.5.4 *प्रयोजनवादियों के अनुसार पाठ्यक्रम*
- 6.5.5 *मानववाद के अनुसार पाठ्यक्रम*

6.6 मनोवैज्ञानिक आधार का विवेचन

- 6.6.1 *सामाजिक आधार का विवेचन*
- 6.6.2 *पाठ्यक्रम विकास हेतु शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण*
- 6.6.3 *पाठ्यक्रम द्वारा देय अधिगम– अनुभवों का*

निर्धारण

6.6.4 *अन्तर्वस्तु का चयन*

6.6.5 *पाठ्यक्रम को संगठित करना*

6.6.6 *शिक्षण संकेत आयोजन*

6.6.7 *मूल्यांकन–नियोजन*

6.7 सारांश

6.8 अभ्यास प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

पिछली इकाई में हमलोगों ने देखा कि पाठ्यक्रम निर्माण के बिना विद्यार्थी या बालक का विकास असम्भव होता है। पिछली इकाई से हमें यह भी पता चलता है कि हमारे देश, समाज या स्कूल से लेकर कोई भी कार्य करते हैं तो वह एक योजना के अन्तर्गत ही किया जाता है। इसी योजना को स्कूलों में पाठ्यक्रम का नाम दिया जाता है। बिना योजना या पाठ्यक्रम के बिना किया हुआ कार्य कभी सफल नहीं होता है।

पाठ्यक्रम की प्रक्रिया बहुत विस्तृत होती है। इन्हीं विस्तृत पाठ्यक्रम की प्रक्रिया को इस इकाई में चर्चा करेंगे। इसके साथ यह भी जानने की कोशिश करेंगे कि पाठ्यक्रम किस प्रकार से और किन–किन स्थानों पर बालक के विकास प्रक्रिया में अपना सहयोग प्रदान करता है। क्योंकि पाठ्यक्रम एक ऐसी प्रक्रिया है जो घर से लेकर स्कूल एवं खेल के मैदान तक बालक के विकास कार्यों में अपना योगदान देती है।

6.2 उद्देश्यः–

इस इकाई का अध्ययन कर लेने के पश्चात आप इस योग्य हो जायेंगे किः–

- पाठ्यक्रम विकास के विभिन्न चरणों को जान सकेंगे।
- विभिन्न प्रकार के पाठ्यक्रमों की तुलना कर सकेंगे।
- पाठ्यक्रम के मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक आधार का विश्लेषण कर सकेंगे।
- पाठ्यक्रम के प्रकारों के निर्धारण की प्रक्रिया को जान सकेंगे।

- पाठ्यक्रम के विकास की प्रक्रिया की समीक्षा कर सकेंगे।

6.3 पाठ्यक्रम–विकासः–

पाठ्यक्रम विकास की प्रक्रिया होती है। इसीलिये हम जब भी किसी विषय से सम्बन्धित पाठ्यक्रम का निर्धारण करते हैं तो यह निश्यच करना पड़ता है कि हम किस प्रकार के पाठ्यक्रम का निर्धारण करें। क्योंकि उसी पाठ्यक्रम के अन्तर्गत विद्यार्थी अध्ययन एवं शिक्षक अध्यापन का कार्य करते हैं। भारतीय स्कूलों, विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में अध्ययन एवं अध्यापन का कार्य उस विषय से सम्बन्धित पाठ्यक्रम के अनुसार किया जाता है।

भारतीय स्कूलों, विद्यालयों में एवं विश्वविद्यालयों में पाठ्यक्रम का विकास करना आवश्यक हो जाता है। क्योंकि जैसे–जैसे बालक के स्कूली शिक्षा के स्तर में बढ़ोतरी होती जाती है यानी कि जैसे– वह प्राइमरी स्तर से जूनियर स्तर इसके बाद माध्यमिक स्तर आदि में जब वह पहुँचता है तो ध ीरे–धीरे अन्य विषयों एवं अन्य गुणों का विकास होता जाता है। इस परिस्थिति में किसी भी विद्यार्थी को सभी विषयों का और एक तरफ से अध ययन करना मुश्किल कार्य साबित होगा। इसलिये पाठ्यक्रम का उसके स्तर के अनुसार निर्धारण कर देने के बाद उसे पढ़ने में आसानी हो जाती है।

पाठ्यक्रम का विकास उसी प्रकार आवश्यक है जिस प्रकार से किसी पौधे की नर्सरी जब शुरू करते हैं तो धीरे–धीरे आवश्यकतानुसार हम उसको पोषण तत्व देते हैं। अगर हम उसी पौधे को बड़े पौधे के बराबर पोषण तत्व दे दें तो वह पौधा नष्ट हो जायेगा। क्योंकि हम उस पौधे की क्षमता के अनुसार पोषण तत्व प्रदान करते हैं। ठीक उसी प्रकार पाठ्यक्रम का विकास भी हम बालक के स्तर के अनुसार तैयार करते हैं। जिसका बोझ वह आसानी से सह सकें।

6.4 विषय केन्द्रित पाठ्यक्रमः–

पाठ्यक्रम विकास के साथ ही कुछ शिक्षाविदों ने विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम के निर्धारण के बारे में अपना–अपना मत प्रस्तुत किया। इन शिक्षाविदों के अनुसार तो विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम को लागू कर दिया गया। परन्तु विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम के अनुसार जितना पाठ्यक्रम का निर्धारण कर दिया जाता है, विद्यार्थी को उसी पाठ्यक्रम एवं शिक्षक को उसी के अनुसार पढ़ाना पड़ता है।

विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम में पुस्तकों का विशेष महत्व होता है। कुछ शिक्षाविदों, माध्यमिक शिक्षा परिषदों एवं विश्वविद्यालयों के पाठ्यक्रम समीतियों की बैठकों में पाठ्यक्रम–विकास और पाठ्यक्रम–निर्माण के नाम पर प्रायः दो कार्य किये जाते हैं–

- पाठ्य–विषयों में परिवर्तन, और वृद्धि
- पाठ्य–पुस्तकों की स्वीकृति, अस्वीकृति एवं अनुमोदन

विषय–केन्द्रित पाठ्यक्रम के अनुसार बालकों को शिक्षा ग्रहण करने में आसानी होती है। पाठ्यक्रम के माध्यम से ज्ञान सरलता एवं सुदृढ़ता से प्राप्त किया जा सकता है। सभी पहलुओं से परिचित होने के कारण छात्र इसे आसानी से आत्मसात कर लेते हैं। पाठ्यक्रम के माध्यम से शिक्षक को पढ़ाने एवं बालकों को पढ़ने में आसानी होती है। पाठ्यक्रम के माध्यम से पठन एवं पाठन कार्य में आसानी होती है। पाठ्यक्रम के माध्यम से पठन एवं पाठन कार्य में निश्चितता होती है।

पाठ्यक्रम का निर्धारण उस विषय–वस्तु की सीमा को देखकर किया जाता है। अतः एक सीमा के अन्दर होता है। इसलिये इसके माध्यम से शिक्षा का दायरा संकुचित हो जाता है। यह ज्ञान एवं अनुभव के माध्यम को खण्डशः कर देता है। यह प्रक्रिया मन्द छात्रों के शिक्षण में बाधक होता है। यह लचीला नहीं होता, अमूर्त प्रत्ययों पर अधिक बल देता है एवं तार्किकता पर आवश्यकता से अधिक बल देता है।

विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम को भारतीय शिक्षा का जनाधार कहा जाता है। इसलिए इस प्रकार के पाठ्यक्रमों के और भी पक्षों पर विचार करना चाहिए। जो निम्नलिखित है–

6.4.1 विद्यार्थी सम्बन्धित पाठ्यक्रमः–

इस प्रकार के पाठ्यक्रम में छात्र की रूचियों एवं क्षमताओं का विशेष ध्यान रखा जाता है। माण्टेसरी पद्धति के अनुसार अगर देखा जाय तो इन्होंने केवल 3–6 वर्ष तक की आयु के शिशुओं के लिये पाठ्यक्रम का निर्माण करने के लिये बताया था। इन्होंने कहा कि पाठ्यक्रम का विकास शिशुओं की रूचि एवं क्षमताओं के अनुसार होना चाहिए।

आजकल शिशु पाठ्यक्रम को अधिक बोझिल बना देने का दुष्परिणाम हम देख ही रहें हैं, उससे उनके शारीरिक विकास में बाधा आ रही है। परन्तु

माण्टेसरी ने प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम के सम्बन्ध में कोई विचार नहीं व्यक्त किया है।

6.4.2 शास्त्रीय पाठ्यक्रम

हमारे देश में संस्कृत एवं हिन्दी को मुख्य भाषाओं के रूप में जाना जाता है। सर्व प्रथम या कहा जा सकता है कि प्राचीन युग से ही संस्कृत भाषा को मुख्य दर्जा मिला हुआ है। क्योंकि इस समय ऋषि–मुनियों ने इसी भाषा में गुरूकुल में पढ़ने आने वाले विद्यार्थियों के लिए शिक्षण का कार्य किया था और धीरे–धीरे इसी भाषा का विकास होता गया और वह समय भी आ गया जब यजुर्वेद में इसी भाषा के अन्तर्गत शास्त्रीय संगीत का विकास हुआ। धीरे–धीरे शास्त्रीय संगीत और भाषा ने शास्त्रीय पाठ्यक्रम का रूप धारण कर लिया। क्योंकि संस्कृत पाठशालाओं में ही किसी शास्त्र का अध्ययन किया जाता है। यह इसलिये होता है कि आज तक जितने भी शास्त्र का विकास हुआ है वह सिर्फ संस्कृत भाषा में ही हुआ है।

संस्कृत पाठशालाओं में व्याकरण, साहित्य, धर्मशास्त्र, ज्योतिष आदि का विशिष्ट पाठ्यक्रम होता है और इन सभी विषयों में पारंगत बनना इनका प्रमुख लक्ष्य होता है। इस प्रकार के पाठ्यक्रम अधिकतर संस्कृत पाठशालाओं में प्रचलित हैं।

6.4.3 अनुभव से सम्बन्धित पाठ्यक्रम

अनुभव शब्द से ही पता चल जाता है कि इस प्रकार के पाठ्यक्रम में विषय–केन्द्रित पाठ्यक्रम की अपेक्षा अनुभव केन्द्रित पाठ्यक्रम पर विशेष बल दिया जाता है। इस प्रकार के पाठ्यक्रम का निर्धारण करने से पूर्व यह देखा जाता है कि छात्र का स्तर क्या है अर्थात बालक को जानकारी कितनी है, इसके बाद उसके अनुभव का पता लगाकर पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाता है।

डीवी अपने पाठ्यक्रम में कहते हैं कि शैक्षिक अनुभवों तथा समस्याओं से पाठ्यक्रम पूरा होना चाहिए। बालकों द्वारा पूर्व अर्जित ज्ञान भविष्य के ज्ञानार्जन के आधार के रूप में होना चाहिए। पाठ्यक्रम बालकों के वर्तमान अनुभवों पर ही निश्चित करना ठीक होगा। विभिन्न विषयों में समन्वय होना चाहिये। मनोविज्ञान के आधार पर विभिन्न विषयों की सूची भ्रामक है। इस प्रकार के पाठ्यक्रम में क्रिया की प्रधानता होती है, अतः इस प्रकार के

पाठ्यक्रम को क्रिया प्रधान पाठ्यक्रम भी कहा जा सकता है।

कुछ शिक्षाविदों का मत है कि इस प्रकार के पाठ्यक्रम सिर्फ गृहविज्ञान, संगीत एवं इसी से सम्बन्धित कुछ अन्य विषयों में विकास क्रिया–केन्द्रित पाठ्यक्रम के लक्षण विद्यमान रहते हैं। परन्तु इस प्रकार का पाठ्यक्रम कुछ ही विषयों के लिये उपयुक्त होता है, अन्य अनुभवों की रूपरेखा बनाने में यह अधिक लाभप्रद नहीं होता है।

6.4.4 आवश्यकता के अनुसार पाठ्यक्रमः–

आवश्यकतानुसार पाठ्यक्रम का निर्धारण विद्यार्थी की आवश्यकताओं को देखकर बनाया जाता है। इस प्रकार के पाठ्यक्रम को आवश्यकता विकास पाठ्यक्रम भी कहा जा सकता है। बालक के शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, संवेगात्मक आवश्यकताओं को केन्द्र में रखकर इस प्रकार के पाठ्यक्रम का विकास किया जाता है। क्योंकि इस प्रकार के पाठ्यक्रम बालकों की आवश्कताओं को हित में रखकर बनाया जाता है, इसलिये इस प्रकार के पाठ्यक्रम से विद्यार्थियों का वैयक्तिक विकास अच्छा होता है।

इसलिये इस प्रकार के पाठ्यक्रम का निर्माण नहीं हो पाता है क्योंकि सभी छात्रों की आवश्कयताओं के बारे में जानना आसान नहीं होता है। इसलिये आज तक इस प्रकार के पाठ्यक्रम का निर्माण नहीं हो पाया है।

6.4.5 समस्या–केन्द्रित पाठ्यक्रमः–

इसमें छात्रों की समस्याओं की जानकारी लेकर इन समस्याओं को सीमित एवं नियंत्रित करके पाठ्यक्रम बनाया जाता है। इसमें छात्र अधिक रूचि लेते हैं और छात्रों का मार्गदर्शन इसमें सुगम होता है। किन्तु इसमें कठिनाई यह है कि छात्र द्वारा अनुभूत समस्यायें कभी–कभी वास्तविक नहीं होती और उनके आधार पर पाठ्यक्रम का विकास दोषपूर्ण हो सकता है। इसका प्रचलन भारतीय विद्यालयों में नहीं के बराबर है।

इस प्रकार के पाठ्यक्रम बनाने का तात्पर्य यही है कि पहले बहुत से छात्रों की समस्याओं को जानने की विधि अपनाई जाती है और उन सभी छात्रों की समस्याओं को जानकर और उन सभी समस्याओं को केन्द्र में रखकर इस प्रकार के पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाता है।

6.4.6 वास्तविक पाठ्यक्रमः–

जिस प्रकार किसी भी क्षेत्र में कार्य करने का एक दायरा होता है, ठीक उसी प्रकार से शिक्षा के क्षेत्र में भी उस विषय के अन्तर्गत पाठ्यक्रम निर्धारण करने का एक दायरा होता है। मुदालियर आयोग ने वास्तविक पाठ्यक्रम के लिए तीन भाषा विषयों का चुनाव किया जो निम्नलिखित हैं–

1. तीन भाषाएंः– अहिन्दी भाषा क्षेत्रों में सामान्य रूप से निम्नलिखित भाषाएँ हों–

i. मातृभाषा या प्रादेशिक भाषा

ii. उच्च स्तर या निम्न स्तर की हिन्दी (Hindi at a higher or lawer)

iii. उच्च स्तर या निम्न स्तर की अंग्रेजी (English at a higher or lawer)

वास्तविक पाठ्यक्रम के अन्तर्गत हिन्दी भाषी क्षेत्रों में निम्न भाषाएं होनी चाहिएः–

i. मातृ भाषा या प्रादेशिक भाषा

ii. हिन्दी या अंग्रेजी (यदि अंग्रेजी को मातृभाषा के रूप में लिया गया हो)

इसके अन्तर्गत शास्त्रीय भाषा का अध्ययन उपर्युक्त भाषाओं के अन्तर्गत वैकल्पिक आधार पर किया जा सकता है।

2. गणित

3. विज्ञान– भौतिक शास्त्र, रसायनशास्त्र, जीवविज्ञान तथा भूमि से सम्बन्धित विज्ञान।

4. इतिहास भूगोल तथा नागरिकशास्त्र।

5. कला

6. कार्य–अनुभव तथा समाज सेवा

7. शारीरिक शिक्षा

8. नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की शिक्षा।

इसमें एक विषय प्रमुख तथा अनिवार्य होता है तथा उसके अधीन दो–तीन विषय रखे जाते हैं। जैसे लिटरेरी कोर में किसी भाषा का साहित्य कोर में है, इतिहास, भूगोल, दर्शन आदि सहायक विषय हैं, कृषि, विज्ञान, तकनीकी आदि कोर और उसके सहायक विषय गौंण होते हैं। आई0आई0टी0 में टेक्नॉलजी का पाठ्यक्रम कोर है, दर्शन, भाषा आदि गौण है।

भारतीय शिक्षा संस्थाओं में यह पाठ्यक्रम प्रचलन में है। कक्षा–शिक्षक व्यवस्था में कोर पाठ्यक्रम सुविधा से क्रियान्वित हो सकता है, विषय शिक्षण व्यवस्था में कठिनाई होती है। इसकी उपयोगिता छोटी कक्षाओं में अधिक है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी–(i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

1. एक नवीन पाठ्यक्रम किस प्रकार से बालक के वैयक्तिक विकास में वृद्धि करता है।

.....

2. विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम क्या होता है? संक्षिप्त रूप में इसकी विवेचना कीजिए।

.....

3. शास्त्रीय सम्बन्धित पाठ्यक्रम के बारे में संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

.....

4. आवश्यकता सम्बन्धित पाठ्यक्रम तथा अनुभव सम्बन्धित पाठ्यक्रम में संक्षिप्त रूप से तुलना कीजिए।

.....

6.4.7 व्यवसाय केन्द्रित पाठ्यक्रमः–

इस प्रकार के पाठ्यक्रम को विद्यालयों में लागू करने के लिये बहुत प्रोत्साहन दिया जाता है। क्योंकि इस प्रकार के पाठ्यक्रम को लागू करने से विद्यार्थी आत्म निर्भर हो जाता है। उसे व्यवसाय करने के लगभग आम नियमों के बारे में पता हो जाता है। इस प्रकार के पाठ्यक्रम से आगे चलकर वह अपने जीविका को चला सके। इसलिए वर्तमान समय में इस प्रकार के पाठ्यक्रम के तरफ विद्यार्थियों का झुकाव बढ़ रहा है।

इधर कुछ वर्षों के अन्तर्गत देखा जाय तो व्यावसायिक पाठ्यक्रम को लगभग सभी विद्यालयों में लागू करने के लिये सरकार का विशेष दबाव है। क्योंकि सरकार चाहती है कि विद्यालयों में कुछ इस प्रकार के पाठ्यक्रम को चलाया जाय जिससे विद्यार्थियों में आत्मनिर्भर बनने की प्रेरणा जागृत हो क्योंकि इधर कुछ वर्षों में देखने में आ रहा है कि लोगों का सार्वजनिक क्षेत्र की तरफ काफी झुकाव बढ़ रहा है क्योंकि सरकार धीरे–धीरे सार्वजनिक क्षेत्रों की सीटों की संख्या कम करती जा रही है। इसलिये इस प्रकार के पाठ्यक्रम को लागू करने पर विद्यार्थियों में आत्मनिर्भर बनने की रूचि अधिक होगी।

6.4.8 शिल्प–केन्द्रित पाठ्यक्रम

बेसिक शिक्षा योजना में इस पर बल दिया गया। किसी शिल्प को केन्द्र में रखकर अन्य विषयों की शिक्षा देना इसका लक्ष्य है। वर्धा शिक्षा योजना के अन्तर्गत भारतीय विद्यालयों में एक समय इसका प्रलचन बहुत था। गाँधीजी ने वर्धा शिक्षा योजना में इस प्रकार के पाठ्यक्रम लागू करने पर विशेष बल दिया है। क्योंकि उनका कहना था कि बालक शिल्पकारी कलाओं को सीखकर अपने प्रतिभा का विकास कर सकेंगे।

शिल्प–केन्द्रित पाठ्यक्रम के अन्तर्गत बालक के विकास से सम्बन्धित जैसे– कुर्सी बनाना, मेज बनाना तथा लकड़ी से सम्बन्धित और भी विधियों को ध्यान में रखकर इस प्रकार के पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाता है। इस प्रकार के पाठ्यक्रम का विकास करके व्यावसायिक केन्द्रों पर विद्यार्थियों को प्रशिक्षित किया जाता है, जिससे वे आत्म निर्भर बन सकें।

6.4.9 सम्बन्धित पाठ्यक्रम

सहसम्बन्ध पाठ्यक्रम का अर्थ यह है होता है कि इसमें विभिन्न विषयों को अलग–अलग न पढ़ाकर के सभी विषयों का सहसम्बन्ध बनाकर एक ही में पढ़ाया जाता है। इस प्रकार के पाठ्यक्रम बनाने का तात्पर्य यह है कि सभी पाठ्यक्रमों का सहसम्बन्ध बनाकर पढ़ाना चाहिए। जैसे– इतिहास, अर्थशास्त्र, नागरिकशास्त्र, भूगोल आदि प्रकार के विषयों के पाठ्यक्रमों का सहसम्बन्ध बनाकर पढ़ाना चाहिये, इस प्रकार की कुशलता का निर्माण करना शिक्षक के गुणों पर निर्भर करता है, क्योंकि इस प्रकार का सहसम्बन्ध एक कुशल शिक्षक ही कर सकता है।

6.4.10 व्यापक क्षेत्रीय पाठ्यक्रम

व्यापक क्षेत्रीय पाठ्यक्रम के अन्तर्गत कुछ क्षेत्रीय पाठ्यसहगामी क्रियाओं को इकठ्ठा करके एक व्यापक क्षेत्र बनाया जाता है और उन क्षेत्रों से लिये गये क्षेत्रीय विषयों को मिलाकर एक व्यापक विषय बनाया जाता है। जैसे– इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र तथा नागरिकशास्त्र को मिलाकर सामाजिक विषय का नाम दिया जाता है और इसी प्रकार गणित, भौतिक विज्ञान, जीवविज्ञान तथा रसायन विज्ञान को मिलाकर सामान्य विज्ञान का नाम दिया जाता है। ठीक इसी प्रकार क्षेत्रीय विषयों को मिलाकर एक व्यापक विषय बनाया जाता है। इस प्रकार के पाठ्यक्रम को मिश्रित पाठ्यक्रम भी कहा जाता है।

6.4.11 एकीकृत पाठ्यक्रम

इस प्रकार के पाठ्यक्रम में समूची मानव जाति के अनुभवों के समावेश करने की बात कही जाती है अर्थात मानव अपने जीवन में जितनी बातें अपने अनुभव के द्वारा सीखी हैं उसी को पाठ्यक्रम का रूप देता है। इस प्रकार के पाठ्यक्रम से बालक को प्रेरणा मिलती है। इन्हीं अनुभवों को केन्द्र बिन्दु मानकर विद्यार्थी को सिखाया जाय जिससे वह अपने जीवन में सफल बन सके। क्योंकि अनुभव द्वारा बनाया गया पाठ्यक्रम सबसे अच्छा माना जाता है। इसमें व्यक्ति द्वारा सीखी हुयी बातों को ही शामिल किया जाता है।

इस पाठ्यक्रम के अन्तर्गत विषयों के बन्धनों को तोड़कर अनुभव की एकता द्वारा पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाता है। जैसे एक प्रशिक्षित शिक्षक तथा एक अप्रशिक्षित शिक्षक के पढ़ाने में अन्तर होता है ठीक उसी प्रकार एक अनुभव कृत द्वारा बनाया गया पाठ्यक्रम तथा बिना अनुभवकृत द्वारा पाठ्यक्रम में अन्तर होगा।

6.4.12 संवर्धित पाठ्यक्रम

संवर्धित पाठ्यक्रम मुख्य रूप से प्रतिभावान, सामान्य एवं मन्दबुद्धि बालकों के लिये होता है। इस पाठ्यक्रम के अन्तर्गत कुछ विशेष प्रकार के पाठ्यक्रमों को सम्मिलित किया जाता है। क्योंकि अगर बालक प्रतिभावान है तो पाठ्यक्रम उस बालक के अनुसार होना चाहिए, अगर बालक सामान्य है तो इस बालक के अनुसार पाठ्यक्रम का निर्माण करना चाहिये अगर बालक

मन्द–बुद्धि का है तो पाठ्यक्रम का निर्माण इस मन्द बुद्धि बालक के अनुसार होना चाहिये। इस प्रकार के पाठ्यक्रम में इन सभी बालकों को ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम का निर्माण करना चाहिए। इसलिये इसे संवर्धित पाठ्यक्रम कहा जाता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी–(i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

1. व्यवसाय केन्द्रित पाठ्यक्रम तथा शिल्प केन्द्रित पाठ्य की संक्षेप में तुलना कीजिए।

   .....

2. एकीकृत पाठ्यक्रम पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

   .....

3. संक्षेप में बताइये कि व्यापक पाठ्यक्रम, क्षेत्रीय पाठ्यक्रम तथा सवंर्धित पाठ्यक्रम क्या होता है ?

   .....

6.5 पाठ्यक्रम विकास के चरणः–

पाठ्यक्रम विकास की प्रक्रिया में सामान्य रूप से निम्नलिखित चरणों का सामान्य रूप से ध्यान रखा जाता है–

पाठ्यक्रम के दार्शनिक आधार–

पाठ्यक्रम विकास की प्रकिया में पाठ्यक्रम का दार्शनिक आधार बहुत महत्वपूर्ण होता है। पाठ्यक्रम प्रमुख दार्शनिक आधार निम्नलिखित हैं–

6.5.1 आदर्शवादियों के अनुसार पाठ्यक्रम का निर्माणः–

(i) मानव विचारों तथा आदर्शों का निर्माणः–

आदर्शवादियों के अनुसार पाठ्यक्रम में सम्पूर्ण मानव जाति के अनुभवों को प्रतिबंधित होना चाहिए। चूँकि मानव दो प्रकार के अनुभवों को प्राप्त करता है–

(i) भौतिक पर्यावरण के सम्पर्क से

(ii) साथियों के सम्पर्क से उनके गुणों को ग्रहण करता है।

अतः पाठ्यक्रम में तत्सम्बन्धी विषयों – (i) विज्ञान सम्बन्धी (ii) मानवीय विषयों से सम्बन्धित विषयों को स्थान देना चाहिए।

(ii) ज्ञान अनुभूति तथा क्रिया पर आधारितः–

कुछ आदर्शवादियों जैसे रॉस (Ross) ने मनोवैज्ञानिक आधार को लेकर पाठ्यक्रम निर्माण का विचार प्रस्तुत किया है। इस दृष्टि से उसने मानव व्यवहार को तीन क्रियाओं के आधार पर निम्न प्रकार से विषयों को स्थान दिया है:–

(i) **ज्ञान**– भाषा, साहित्य, विज्ञान, गणित, इतिहास तथा भूगोल

(ii) **अनुभूति**– कविता, संगीत तथा कला

(iii) **क्रिया**– व्यवहारिक कलायें जैसे– भोजन, भवन, वस्त्र आदि का निर्माण

(iii) मानव सभ्यता के आधार पर

टी0पी0 नन महोदय ने पाठ्यक्रम निर्माण के आदर्शवादी विचार प्रस्तुत करते हुये कहा है कि राष्ट्र की भौतिक तथा आध्यात्मिक शान्ति को सुदृढ़ रखने के लिये ऐतिहासिक क्रम से चलने तथा पूर्व प्राप्त निष्पत्तियों को सुरक्षा की अतिआवश्यकता है। यह कार्य विद्यालय अपने पाठ्यक्रम में मानव सभ्यता की झलक प्रस्तुत करने वाले विषयों को स्थान देकर पूरा करता है। अतः नन् महोदय के अनुसार– संसार के सबसे अधिक मूल्यवान तथा मानव के भावों की सर्वश्रेष्ठ अभिव्यक्ति करने वाले विषयों तथा क्रियाओं को पाठ्यक्रम में स्थान देना चाहिए। ये क्रियाएं दो प्रकार की हैं–

(क) व्यक्ति तथा समाज की जीवन रक्षा करने वाली–

इसके लिये शारीरिक साधन, स्वास्थ्य रक्षा, सदाचार, सामाजिक, संगठन, प्रेम, नीति, धर्म की शिक्षा लेनी चाहिये। इन क्रियाओं का मार्गदर्शन शिक्षण एवं अध्ययन से ही संभव है।

(ख) मानव सभ्यता का निर्माण करने वाली–

इसके लिये पाठ्यक्रम में इन विषयों को स्थान देना चाहिए–

(i) साहित्य, मातृभाषा, की उच्च रचनायें

(ii) कला एवं संगीत

(iii) हस्तकौशल, बुनाई, खुदाई, लिखावट आदि

(iv) गणित एवं विज्ञान

(v) इतिहास तथा भूगोल

आदर्शवादी शिक्षा का अन्तिम उद्देश्य आत्मानुभूति निश्चित करते हैं और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिये मनुष्य के शारीरिक, मानसिक एवं बौद्धिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक, नैतिक एवं चारित्रिक और आध्यात्मिक विकास पर बल देते हैं और इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये पाठ्यचर्या में भाषा, साहित्य, धर्मशास्त्र और नीतिशास्त्र को प्रमुख और अन्य विषयों एवं क्रियाओं को गौण स्थान देते हैं।

यूनानी दार्शनिक प्लेटो के अनुसार मानव जीवन का अन्तिम उद्देश्य आत्मानुभूति अथवा ईश्वर की प्राप्ति हैं और इसके लियें सत्यम्, शिवम् एवं सुन्दरम् की प्राप्ति आवश्यक होती है। ये तीनों आध्यात्मिक मूल्य मनुष्य की क्रमशः बौद्धिक, नैतिक एवं कलात्मक क्रियाओं के द्वारा प्राप्त होते हैं। अतः प्लेटो पाठ्यचर्या में उन्हीं विषयों एवं क्रियाओं के समावेश पर बल देते थे जो मानव को उपर्युक्त क्रियाओं में दक्षता प्रदान करें। उन्होंने पाठ्यचर्या में बौद्धिक क्रियाओं के लिये भाषा, साहित्य, इतिहास, भूगोल, गणित तथा शारीरिक विज्ञान का नैतिक क्रियाओं के लिये धर्म, नीतिशास्त्र तथा आध्यात्मवाद का और कलात्मक क्रियाओं के लिये विभिन्न कलाओं तथा संगीत का समावेश किया था।

जर्मन शिक्षाशास्त्री हरबार्ट मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति के लिये चारित्रिक एंव नैतिक विकास पर बल देते थे और इसके लिये पाठ्यक्रम में भाषा, साहित्य, इतिहास, कला तथा संगीत को मुख्य स्थान देते थे। उनके मतानुसार पाठ्यक्रम में भूगोल, गणित तथा विज्ञान को गौण स्थान देना चाहिए।

इग्लैंड के शिक्षाशास्त्री नन् महोदय की दृष्टि से पाठ्यक्रम में उन्हीं विषयों का समावेश करना चाहिए जिससे मनुष्य को मानव सभ्यता एवं संस्कृति की झलक मिल सके और उनके द्वारा बच्चों को कुछ विशेष क्रियाओं में अनुशासित एवं प्रशिक्षित किया जा सके। नन् महोदय ने विशेष क्रियाओं को दो वर्गों में विभाजित किया है। प्रथम वर्ग में उन्होंने क्रियाओं को दो वर्गों में विभाजित किया है। प्रथम वर्ग में वे क्रियायें आती हैं जो व्यक्तिगत एवं सामाजिक संगठन, शिष्ट, नैतिक एवं धार्मिक आचरण पर आधारित होती है और इसके लिये उन्होंने पाठ्यक्रम में शरीर विज्ञान, समाजशास्त्र, नीतिशास्त्र

तथा धर्मशास्त्र आदि को स्थान दिया है। दूसरे वर्ग में सभ्यता तथा संस्कृति का निर्माण करने वाली सृजनात्मक क्रियायें आती हैं और इन क्रियाओं के प्रशिक्षण के लिये उन्होंने पाठ्यक्रम में साहित्य, कला, संगीत, इतिहास, भूगोल, गणित, विज्ञान तथा दस्तकारी को स्थान दिया है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी–(i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

1. आदर्शवादियों के अनुसार पाठ्यक्रम का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

.....

2. आदर्शवादियों का पाठ्यक्रम अन्य पाठ्यक्रमों से किस प्रकार भिन्न है। 5 वाक्यों में बताइये।

.....

6.5.2 प्रकृतिवादियों के अनुसार पाठ्यक्रमः–

उद्देश्यों के अनुकूल ही प्रकृतिवादियों ने पाठ्यक्रम का निर्माण किया है। प्रकृतिवादी भौतिक जीवन को ही सत्य मानते हैं और उसकी रक्षा एवं विकास पर ही सबसे अधिक बल देते हैं, इसलिये ये पाठ्यक्रम में शरीर विज्ञान, स्वास्थ्य विज्ञान एवं भौतिक विज्ञान को सबसे अधिक महत्व देते हैं और साहित्य कला एवं संगीत को सबसे कम। धर्मशास्त्र एवं नीतिशास्त्र को ये कोई स्थान नहीं देते हैं।

रूसों ने अपनी पुस्तक एमिल में विभिन्न स्तरों के बच्चों के लिये विभिन्न पाठ्यक्रम प्रस्तुत किया है। इन्होंने प्रत्येक स्तर पर शारीरिक क्रियाओं एवं अनुभवों को अधिक महत्व दिया हैं और सैद्धान्तिक ज्ञान का विरोध किया है। ये पाठ्यक्रम में खेलने–कूदने, तैरने, घुड़सवारी करने एवं हस्तकार्यों को विशेष महत्व देते हैं। नारी को ये पुरूष की सहचारी एवं सेविका के रूप में स्वीकार करते थे इसलिये उन्हें गृहकार्य में निपुण कराना चाहते थे।

हरबर्ट स्पेंसर के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य को पूर्ण जीवन व्यतीत करने के लिए तैयार करना है। इनके अनुसार वही व्यक्ति पूर्ण जीवन व्यतीत कर सकता है जो निम्नलिखित पाँच क्रियाओं को सफलता पूर्वक कर सकता है–

(i) आत्मरक्षा के कार्य

(ii) जीविकोपार्जन के कार्य

(iii) वंशवृद्धि एवं शिशु रक्षा सम्बन्धी कार्य

(iv) सामाजिक तथा राजनैतिक कार्य

(v) अवकाश के समय का सदुपयोग

इन पाँच प्रकार की भिन्न–भिन्न क्रियाओं को सुचारू रूप से करने के लिये स्पेन्सर ने पाठ्यक्रम में भिन्न–भिन्न विषयों को स्थान दिया है। इन्होंने आत्मरक्षा के कार्यों के लिये स्वास्थ्य विज्ञान, जीविकोपार्जन के लिये भाषा, गणित, भूगोल तथा पदार्थ विज्ञान, वंशवृद्धि एवं शिशु रक्षा के लिये शरीर विज्ञान, बाल मनोविज्ञान तथा गृह विज्ञान, सामाजिक तथा अर्थशास्त्र और अवकाश के समय का सदुपयोग करने के लिये साहित्य, संगीत, कविता तथा कला को स्थान दिया है। स्पेन्सर का कथन है कि पाठ्यक्रम में विभिन्न विषयों को वैसा ही महत्व देना चाहिये जैसा कि जीवन में उनसे सम्बन्धित व्यवसायों का होता है। इनके विचार से साहित्य, कला और संगीत हमारे जीवन की रक्षा नहीं करते, ये तो केवल क्षणिक आनन्द देने वाले होते हैं। अतः इनकी प्राप्ति का प्रश्न तभी उठता है जब हम अपने भौतिक जीवन को सुरक्षित रखने में सफल हो जाते हैं। इस दृष्टि से इन्होंने पाठ्यक्रम में स्वास्थ्य विज्ञान एवं भौतिक विज्ञानों को मुख्य और साहित्य कला तथा संगीत को गौण स्थान दिया है।

हक्सले महोदय साहित्यिक एवं वैज्ञानिक दोनों प्रकार के विषयों को समान स्थान देने के पक्ष में थे। इनका कहना था कि भौतिक विज्ञान के पीछे सांस्कृतिक विषयों के अध्ययन को भुला देना उतना ही बुरा है जितना सांस्कृतिक विषयों के अध्ययन के लिये विज्ञान के अध्ययन को भुला देना और उसकी अपेक्षा करना।

प्रकृतिवादी हरबर्ट स्पेन्सर ने पाठ्यक्रम का वर्णन मनुष्य की स्वाभाविक क्रियाओं के अनुरूप ही किया है। मनुष्य को जीवन की रक्षा करनी है, इसलिये उसे शरीर तथा स्वास्थ्य का ज्ञान कराना चाहिए। जीवन यापन हेतु सामाजिकशास्त्र तथा अवकाश व्यतीत करने के लिये साहित्य तथा कला की शिक्षा देनी चाहिए।

शिक्षा अवस्था के अनुरूप ही मिलनी चाहिए। ज्ञान के लिये ज्ञान तथा

मस्तिष्क को शिक्षित करने के लिये विषय इत्यादि बातें व्यर्थ हैं।

6.5.3 यथार्थवादियों के अनुसार पाठ्यक्रमः–

यथार्थवादी शिक्षा द्वारा मनुष्य को इस जीवन के लिये तैयार करना चाहते हैं। इनका मत है कि पाठ्यक्रम में वे ही विषय रखे जाये जिनका इस जीवन से सीधा सम्बन्ध है और जो मनुष्य के लिये उपयोगी हैं। चूँकि प्रायः सभी विषयों की कुछ न कुछ उपयोगिता है, इसलिए यर्थावादी स्कूली शिक्षा की पाठ्यक्रम में सभी विषयों को स्थान देते हैं। इनके द्वारा निश्चित पाठ्यक्रम बहुत विस्तृत है। लेकिन सबसे अधिक बल ये व्यावसायिक शिक्षा (कृषि आदि) पर देते हैं। इनके द्वारा निश्चित पाठ्यक्रम में व्यावसयिक विषयों एवं विज्ञान को प्रमुख इतिहास, भूगोल, कानून को गौण और साहित्य और कला, संगीत आदि को गौणतम स्थान दिया गया है। बेकन पाठ्यक्रम में सबसे प्रमुख स्थान विज्ञान को देते थे और उसके बाद साहित्य और दर्शन को। कमेनियस चूँकि एक धार्मिक व्यक्ति थे, चर्च में पादरी थें, इसलिये वे स्कूली पाठ्यक्रम में धर्म शिक्षा को भी स्थान देते थे। पर वे धर्म के इस जीवन में उपयोग करने पर बल देते थें, लोगों को सदाचारी और सेवक बनाने पर बल देते थें।

यहाँ यह शंका उठ सकती है कि बच्चों पर इतने अधिक विषयों को लादकर यथार्थवादियों ने मनोवैज्ञानिक तथ्यों की अवहेलना की है, परन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है। यथार्थवादी बच्चों को अपनी रूचि, रूझान, योग्यता और आवश्यकतानुसार विषयों के चयन की छूट देते हैं, पर हाँ मातृभाषा और किसी व्यवसाय की शिक्षा को ये अनिवार्य मानते हैं।

सम्पूर्ण शिक्षा प्रक्रिया का केन्द्र बिन्दु या आधारभूत माध्यम वे विविध विषय हैं जो कक्षा में पढ़ाये जाते हैं। प्रत्येक विषय के अपने आन्तरिक मूल्यों और सामाजिक मूल्य होते हैं। इसलिये सभी विषयों को एक कोटि में नहीं रख सकते। शिक्षा के निर्धारित उद्देश्यों के अनुरूप इन असंख्य विषयों में से चयन करना पड़ता है। यथार्थवादी दृष्टिकोण के अनुसार यह आधारभूत मान्यता है कि पाठ्य–विषय विविध और विस्तृत होने चाहिए। इस सम्बन्ध में यथार्थवादी दर्शन की अन्य मान्यतायें इस प्रकार हैं:–

1. छात्र को सर्वाधिक उपयोगी विषय ही पढ़ाने चाहिए।
2. सर्वाधिक उपयोगी विषयों के चयन का कार्य बालकों पर ही नहीं छोड़ना चाहिए, इस कार्य में शिक्षक और माता–पिता द्वारा उचित

मार्गदर्शन मिलना चाहिए।

3. चयन किये गये विषयों में सम्बन्ध हो।
4. सामाजिक आवश्यकताओं के अनुरूप ही विषयों का चयन होना चाहिए।
5. ज्ञान–विज्ञान के लिये, या कला के लिये जैसी मान्यताए निरर्थक हैं, उपयोगिताहीन विषय पढ़ाने से कोई लाभ नहीं है।
6. आधुनिक भाषाएं ही पढ़ानी चाहिए।
7. स्वान्तः सुखाय साहित्य का अध्यापन नहीं करना चाहिए।
8. कला, संगीत आदि ललित कलाओं का वास्तविक जीवन के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। अतः इनका कोई महत्व नहीं है।
9. विज्ञान का शिक्षण अनिवार्य होना चाहिए, क्योंकि विज्ञान यथार्थ जगत् का परिचय देता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी–(i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

1. प्रकृतिवादी एवं यथार्थवादी पाठ्यक्रम की तुलना संक्षिप्त रूप में कीजिए।

.....

6.5.4 प्रयोजनवादियों के अनुसार पाठ्यक्रमः–

निश्चित उद्देश्यों के अभाव में पाठ्यक्रम को निश्चित करने का प्रश्न ही नहीं उठता। प्रयोजनवादियों का विचार है कि मनुष्य के अनुभव और आवश्यकताएँ बदलती रहती हैं, अतः पाठ्यक्रम को भी बदलते रहना चाहिए। किस समय पाठ्यक्रम का निर्धारण किस प्रकार करना चाहिए इस सम्बन्ध में प्रयोजनवादियों के विचार बड़े मूल्यवान हैं। उनके ये विचार आज पाठ्यक्रम के सिद्धान्त बन गये हैं।

1. उपयोगिता का सिद्धान्तः– डीवी महोदय के अनुसार बच्चों को उन्हीं विषयों एवं क्रियाओं का ज्ञान देना चाहिए जो उनके जीवन के लिए उपयोगी

हो। भिन्न–भिन्न बच्चों की आवश्यकताएँ भिन्न–भिन्न होती हैं। इसलिये किसी भी विषय का ज्ञान या क्रिया में दक्षता सही बच्चों के लिये उपयोगी नहीं हो सकती। एक बच्चे के लिये खेती का कार्य में दक्षता प्राप्त करना उपयोगी हो सकता है तोदूसरे को किसी अन्य कार्य में। बच्चियों के लिये गृह विज्ञान का अध्ययन बहुत उपयोगी होता है परन्तु लड़कों के लिये उतना उपयोगी नहीं होता है। कहना न होगा कि पाठ्यक्रम में विविधता होनी चाहिए और बच्चों को अपनी आवश्यकतानुसार पाठ्य विषयों एवं क्रियाओं के चुनाव की स्वतंत्रता होनी चाहिए। इस दृष्टि से पाठ्यक्रम में विभिन्न उत्पादन कार्यों एवं उद्योगों की शिक्षा का समावेश होना चाहिए।

2. रूचि का सिद्धान्तः– बच्चों की स्वाभाविक रूचियों का ध्यान रखना पाठ्यक्रम निर्माण का दूसरा सिद्धान्त है। डीवी के अनुसार बालकों की प्रवृत्ति गतिशील होती है, उन्हें उनकी स्वाभाविक प्रवृत्तियों और रूचियों के आधार पर ही शिक्षा देनी चाहिए। डीवी ने बालकों की चार स्वाभाविक रूचियों का वर्णन किया है– बातचीत करने की रूचि, अन्वेषण अथवा परीक्षण करने की रूचि, रचना करने की रूचि और कलात्मक अभिव्यक्ति की रूचि, डीवी के अनुसार ये स्वाभाविक रूचियाँ प्राकृतिक स्त्रोत हैं और इन्हीं के आधार पर बालकों का विकास होता है। इस दृष्टि से पाठ्यक्रम में लिखने–पढ़ने, हस्तकार्य करने तथा प्रकृति विज्ञान को विशेष महत्व दिया जाना चाहिए।

क्रिया का सिद्धान्तः–

प्रयोजनवादी क्रिया को बहुत महत्व देते हैं। उनका कहना है कि पाठ्यक्रम का सम्बन्ध बच्चों की वास्तविक क्रियाओं, इन क्रियाओं से प्राप्त अनुभवों और भावी व्यवसायों, इन तीनों से होना चाहिए। डीवी क्रिया को पाठ्यक्रम का आधार मानते थे। उनकी दृष्टि से पाठयक्रम में पाठ्य विषयों के अतिरिक्त सामाजिक क्रियाओं को भी स्थान देना चाहिए जिनको करने से बच्चों का सामाजिक विकास होता है। डीवी के अनुसार पाठ्यक्रम में केवल वे ही विषय और क्रियाये रखनी चाहिए जिनका सम्बन्ध बच्चों के वास्तविक जीवन से हो। उनका कहना है कि विद्यालय समाज का छोटा रूप होता है, इन विद्यालयों में जो कुछ हो उसका सामाजिक जीवन से सम्बन्ध होना चाहिए अन्यथा शिक्षा अपने में निर्जीव एवं व्यर्थ होगी। डीवी के मतानुसार पाठ्यक्रम में विभिन्न विषयों के साथ–साथ बालक के जीवन से सम्बन्धित खेल–कूद, सामाजिक कार्य, उत्सव तथा साहित्यिक एवं सांस्कृतिक क्रियाओं

को सम्मिलित किया जाना चाहिए।

अनुभव का सिद्धान्तः–

प्रयोजनवादी अनुभवों को भी बहुत महत्व देते हैं। जॉन डीवी सामाजिक अनुभवों को पाठ्यक्रम का आधार मानते थे। बालकों के शैक्षिक अनुभव रचनात्मक होते हैं। शैक्षिक अनुभव के अन्तर्गत समाज की आर्थिक, राजनैतिक, औद्योगिक, भौतिक तथा सामाजिक दशाएँ आती हैं। शैक्षिक अनुभवों के द्वारा ही बच्चे नवीन अनुभव प्राप्त करते हैं और पूर्व संचित अनुभव का विकास करते हैं। इसके लिए बच्चों को स्वानुभव का पूरा–पूरा अवसर मिलना चाहिए।

एकीकरण का सिद्धान्तः–

प्रयोजनवादी ज्ञान को इकाई मानते हैं। इनके अनुसार बच्चों को किसी भी स्तर पर जो विषय पढ़ाये जायें और जो क्रियाएं करायी जायें उन सबको एक इकाई के रूप में प्रस्तुत करना आवश्यक है अर्थात उनमें आपसी सम्बन्ध होना चाहिएं। प्रयोजनवादी सबसे अधिक महत्व क्रिया को देते हैं इसलिए वे क्रिया को आधार बनाकर सब विषयों का ज्ञान एवं क्रियाओं को प्रशिक्षण उसके इर्द–गिर्द विकसित करने पर बल देते हैं। अतः पाठ्यक्रम का निर्माण करते समय विषयों एवं क्रियाओं को इस रूप में चुनना चाहिए कि उनमें एकीकरण हो और वे जीवन की वास्तविक क्रियाओं के माध्यम से विकसित हो सकें।

6.5.5 मानववाद के अनुसार पाठ्यक्रमः–

मानवतावादी अच्छे मनुष्य के निर्माण की बात करते हैं। इनकी दृष्टि से अच्छा मनुष्य वह है जो सबकी अच्छाई में विश्वास करता है और तद्नुकूल आचरण करता है। इसी आधार पर इन्होंने शिक्षा के उद्देश्य निश्चित किये हैं और इसी आधार पर तदनुकूल उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु शिक्षा के पाठ्यक्रम का निर्माण किया है।

इस दृष्टि से पाठ्यक्रम में स्वास्थ्य रक्षा एवं उसके विकास के लिये स्वास्थ्य विज्ञान एवं व्यायाम (खेल–कूद) को तर्क शक्ति के विकास के लिये तर्क प्रधान विषयों एवं क्रियाओं को, सामाजिक एवं सांस्कृतिक सहिष्णुता के विकास के लिये विभिन्न भाषा, साहित्य, इतिहास, कला एवं अन्य मानविकीय विषयों को, उच्च मानवीय मूल्यों के विकास के लिये समाज सेवा को, उत्पादन क्षमता के विकास के लिये कला–कौशलों, विज्ञान एवं तकनीकी को और

सृजनात्मकता के विकास के लिये सृजनात्मक क्रियाओं को स्थान देना चाहिए।

इसके अन्तर्गत शिक्षा के पाठ्यक्रम में और बहुत से दार्शनिक आधार हैं जो निम्नलिखित हैं–

क. व्यावहारिकतावादी आधार

ख. पुनर्रचनावादी आधार

ग. अस्तित्ववादी आधार

घ. साम्यवादी आधार

ङ. दार्शनिक विश्लेषणात्मक आधार

च. राष्ट्रवादी आधार

छ. जनतन्त्रात्मक आधार

6.6 मनोवैज्ञानिक आधार का विवेचनः–

इस आधार में मुख्य रूप से निम्न बिन्दुओं पर ध्यान दिया जाना चाहिएः–

क. बाल विकास, किशोरावस्था, प्रौढ़ता, परिपक्वता

ख. व्यक्तिगत भिन्नता

ग. अभिरूचि

घ. अभिप्रेरणा

ङ. अधिगत प्रक्रिया एवं अधिगम स्थानान्तरण

च. मानव प्रकृति

छ. बुद्धि, व्यक्तित्व, सृजनात्मकता

6.6.1 सामाजिक आधार पर विश्लेषणः–

इस सामाजिक आधार में मुख्य रूप से निम्न बिन्दुओं का विश्लेषण अपेक्षित हैः–

क. परिवार　　ख. परम्पराएँ

ग. धार्मिक संगठन　　घ. शिक्षक

ङ. छात्र
च. समाज की प्रकृति
छ. समूह का मनोविज्ञान
ज. गतिशीलता
झ. नेतृत्व
ञ. सामाजिक संगठन
ट. शैक्षिक नियोजन
ठ. आर्थिक संगठन
ड. औद्योगीकरण
ढ. कृषिपरक समाज
ण. वर्तमान समाज

6.6.2 पाठ्यक्रम विकास हेतु शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारणः–

पाठ्यक्रम विकास का पाँचवां चरण, शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण करना है। वैयक्तिक, सामाजिक, ज्ञानोपार्जन, अर्थोपार्जन, चरित्र–निर्माण जैसे व्यापक शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण ही पर्याप्त नहीं है, बलूम के शैक्षिक उद्देश्यों का वर्गीकरण भी ध्यातव्य है। हमें निश्चित करना है कि पाठ्यक्रम का संगठन करने से निम्नलिखित उद्देश्यों की कहाँ तक हम प्राप्ति कर सकते हैं:–

ज्ञानात्मक पक्षः–

1. ज्ञान
2. अवबोध
3. अनुप्रयोग
4. विश्लेषण
5. संश्लेषण
5. मूल्यांकन

भावात्मक पक्षः–

1. प्राप्ति
2. अनुक्रिया
3. मूल्यनिर्धारण
4. प्रत्यक्षीकरण
5. संगठन
6. लक्षण वर्णन

क्रियात्मक पक्षः–

1. अनुकरण
2. परिचालन
3. नियन्त्रण
4. समायोजन
5. नैसर्गीकरण
5. आदत निर्माण

6.6.3 पाठ्यक्रम द्वारा देय अधिगम–अनुभवों का निर्धारणः–

शैक्षिक उद्देश्यों का निर्धारण करने के पश्चात् पाठ्यक्रम द्वारा कौन–से अधिगम अनुभवों को दिया जाना है, इसका निश्चय करना चहिये। अधिगम के

अनुभवों की चयन की कसौटी क्या–क्या हो ? इस सम्बन्ध में व्हीलर का मत द्रष्टव्य है, व्हीलर के अनुसार अधिगम–अनुभव के चयन के लिये सात बिन्दुओं का ध्यान रखा जाना चाहिए। ये विन्दु निम्नलिखित हैं:–

1. वैधता
2. व्यापकता
3. विविधता
4. उपयुक्तता
5. प्रतिमान
6. जीवन से सम्बन्ध
7. छात्रों की सहभागिता

वैधता में शैक्षिक उद्देश्यों के सम्बन्ध को देखा जा सकता है। व्यापकता में यह देखना है कि सामग्री किसी एक ही उद्देश्य की पूर्ति न करे, वरन् अनेक उद्देश्य पूरे हों। विविधता में भिन्न–भिन्न प्रकार के अनुभवों की बात है और उपयुक्तता में छात्र के लिये अनुभव के वैयक्तिक और सामाजिक दृष्टि से औचित्य को देखा जाता है। प्रतिमान में सन्तुलन, अविच्छिन्नता, संचय, पुनरावृत्ति और अधिगम की बहुलता को देखा जाता है। चयनित सामग्री को जीवन से सम्बन्धित होना चाहिए और इसमें छात्रों की सहभागिता सुनिश्चित होनी चाहिए।

वैधता का अर्थ कुछ इस प्रकार से भी है जब कोई मनोवैज्ञानिक शैक्षिक पाठ्यक्रम ठीक उसी गुण या क्षमता को अच्छे ढंग से मापता है जिसके लिये उसे बनाया गया है, तब पाठ्यक्रम के इस गुण को वैधता की संज्ञा दी जाती है। एनासटसी ने वैधता को कुछ इस ढंग से परिभाषित करते हुए कहा है, किसी भी पाठ्यक्रम की वैधता से तात्पर्य इस बात से होता है कि पाठ्यक्रम क्या मापता है और कितना अच्छी तरह से मापता है।" स्पष्ट है कि जब कोई पाठ्यक्रम उसका मापन अच्छी तरह कर पाता है जिसे उसे करना है तो वह एक वैध पाठ्यक्रम कहलाता है।

6.6.4 अर्न्तवस्तु का चयनः–

अधिगम अनुभवों का निर्धारण के पश्चात अन्तर्वस्तु के चयन का पद आता हैं अन्तर्वस्तु के स्त्रोत का निश्चय करना पड़ता है, मापदण्ड निर्धारित करना पड़ता है, चयन प्रक्रिया के चरण निश्चित करने पड़ते हैं और तब सामग्री का विवरण प्रस्तुत करना होता है।

6.6.5 पाठ्यक्रम को संगठित करनाः–

अब पाठ्यक्रम को संगठित करना है। यह संगठन निम्नलिखित तत्वों से मिलकर होता हैः–

क. प्रकल्प

ख. क्षेत्र

ग. अनुक्रम

घ. सातत्य

ङ. सन्तुलन

च. एकीकरण

प्रकल्प वह संरचना है जिसका प्रयोग शैक्षिक अनुभवों को चुनने, उनको नियोजित करने तथा क्रियान्वयन करने में होता है। यह एक प्रकार का ढॉचा है। कभी–कभी ऐसा किया जाता है कि पाठ्यक्रम को अंशों में विभाजित कर दिया जाता है और कभी–कभी पूरा ढाँचा के रूप में एकीकृत होता है। ये दोनों प्रकल्प के प्रकार हैं।

पाठ्यक्रम का क्षेत्र छात्र एवं अध्यापक की क्रियाएं तथा विभिन्न प्रकार के अनुभव हैं। इनमें क्रम होना चाहिए। सरल से जटिल, ज्ञात से अज्ञात, मूर्त से अमूर्त की ओर इनका क्रम हो। इसमें निरन्तरता होनी चाहिए न कि टुकड़े–टुकड़े में हों। इनमें क्लिष्टता और सरलता का सन्तुलन होना चाहिए तथा अन्त में पूरा पाठ्यक्रम एक दिखाई पड़े। पाठ्यक्रम का क्षेत्र इतना बड़ा नहीं काना चाहिए कि उसकी तारतम्यता ही समाप्त हो जाय। पाठ्यक्रम का क्षेत्र उसकी आवश्यकता के अनुसार होनी चाहिए। कभी–कभी इस क्षेत्र में यह देखने को मिलता है कि इसकी कोई दिशा ही निर्धारित नहीं होती है, यह दिशा विहिन होता है। इसका क्षेत्र भले ही व्यापक हो परन्तु इसको अपने लीक से हटना चाहिए। यही इसमें सबसे बड़ी खाशियत होती है।

पाठ्यक्रम की संरचना कभी–कभी इकाईयों में की जाती है और सम्पूर्ण पाठ्यक्रम को इकाईयों में विभक्त कर दिया जाता है। यह विभाजन विषयानुसार, क्रियानुसार, आवश्यकतानुसार या समस्यानुसार हो सकता है। कहने का तात्पर्य यह है कि पाठ्यक्रम को बहुत से इकाईयों में विभक्त तो कर दिया जाता है परन्तु इसका विभाजन जिस प्रकार की परिस्थिति हो उसी के

अनुसार किया जाता हैं पाठ्यक्रम का विभाजन समय, परिस्थितियों एवं उसकी आवश्यकताओं पर निर्भर करता है।

6.6.6 शिक्षण–संकेत का आयोजनः–

यह पाठ्यक्रम विकास का अग्रिम सोपान है। इस सोपान में इस बात के संकेत दिये जाते हैं कि अमुक पाठ्यवस्तु को किस प्रकार पढ़ाया जाय कि उसके साथ न्याय हो सकें कभी–कभी कुछ शिक्षकोपयोगी या शिक्षणोंपयोगी सामग्री का भी निर्माण किया जाता है। जिसमें अध्यापकों के लिये उचित मार्गदर्शन हेतु कुछ निर्देश दिये जाते हैं। इसमें मुख्य रूप से शिक्षक को यह बताया जाता है कि वह किसी भी विद्यार्थी से भेद–भाव न करे, वह सभी के साथ सामान्य व्यवहार करे। क्योंकि एक शिक्षक की गरिमा उस विद्यालय में पढ़ने वाले सभी विद्यार्थियों की गरिमा होती है।

इसलिये अक्सर देखा गया है कि सरकार द्वारा समय–समय पर अध्यापकों के प्रशिक्षण का कार्य किया जाता है। इससे यह होता है कि पाठ्यक्रम में जो कुछ नयी बातों का समावेश किया जाता है। उनके बारे में उस प्रशिक्षण के दौरान अध्यापकों को बताया जाता है। इससे यह होता है कि अध्यापक उस नयी विषय वस्तु के बारे में पूरी तरह से प्रशिक्षित हो जाते हैं और जब वे कक्षा में शिक्षण का कार्य करते हैं तो उनका किसी भी प्रकार के समस्या का सामना नहीं करना पड़ता है।

6.6.7 मूल्यांकन–नियोजनः–

यह पाठ्यक्रम विकास का अन्तिम बिन्दु है जिसमें विषय–सामग्री अन्तर्वस्तु के उचित मूल्यांकन को नियोजित किया जाता है। निबन्धात्मक, लघुउत्तरीय एवं वस्तुनिष्ठ प्रश्नों को आवश्कयतानुसार नियोजित करने के लिये सुझाव दिये जाते हैं।

मूल्यांकन के द्वारा अर्जित किये गये शिक्षा के उद्देश्यों की जानकारी की जाती है। दूसरे शब्दों में यह कह सकते हैं कि मूल्यांकन वह प्रक्रिया है जो बताती है कि निर्धारित उद्देश्यों को किस सीमा तक छात्रों के द्वारा अर्जित किया जा चुका है। शिक्षण के द्वारा छात्रों के व्यवहार में जिन परिवर्तनों को लाना अपेक्षित होता है उन्हें शिक्षा उद्देश्यों के नाम से पुकारा जाता है तथा इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये ही शिक्षा संस्थाओं में सीखने की प्रक्रिया का आयोजन किया जाता है। ये सीखने की क्रियायें वांछित उद्देश्यों की प्राप्ति में

कितनी सफल रही हैं, यह मूल्यांकन के द्वारा देखा जाता है। इस प्रकार मूल्यांकन प्रक्रिया के तीन अंग हैं:–

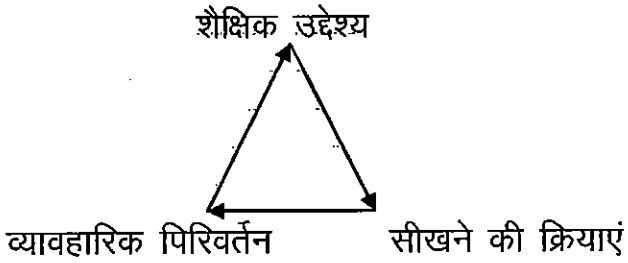

ब्लूम के अनुसार छात्रों के व्यवहार में परिवर्तन निम्नांकित तीन क्षेत्रों में होते हैं।

1. ज्ञानात्मक
2. भावात्मक
3. क्रियात्मक

ज्ञानात्मक क्षेत्र के उद्देश्यों को छः वर्गों में विभक्त किया गया है जो निम्नांकित हैं:–

1. ज्ञान
2. बोध
3. अनुप्रयोग
4. विश्लेषण
5. संश्लेषण
6. मूल्यांकन

भावात्मक क्षेत्र के उद्देश्यों को पाँच वर्गों में विभक्त किया गया है, जो निम्नलिखित हैं:–

1. आग्रहण
2. प्रतिक्रिया
3. मूल्यांकन निर्धारण
4. व्यवस्थापना
5. किसी मूल्य के द्वारा चरित्रिकरण।

क्रियात्मक क्षेत्र के उद्देश्यों को भी पाँच वर्गों में विभक्त किया गया है, जो निम्नलिखित हैं:–

1. प्रत्यक्षीकरण
2. मनोस्थिति

3. निर्देशित प्रतिक्रिया

4. कार्य कौशल

5. जटिल वाह्य प्रतिक्रिया

इस प्रकार मूल्यांकन के द्वारा यह ज्ञात किया जाता है कि शैक्षिक उद्देश्यों की प्राप्ति किस सीमा तक हुयी है। मूल्यांकन के द्वारा पाठ्यक्रम अथवा विषय–वस्तु में निहित दुर्बलताएं ज्ञात हो जाती हैं जिससे सुधार किया जा सकता है।

मूल्यांकन के द्वारा अध्यापक द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली शिक्षण विधि की दुर्बलताओं का ज्ञान हो जाता है जिसके फलस्वरूप अध्यापक अपने आगामी शिक्षण में अपेक्षित परिवर्तन कर सकता है। इसके अतिरिक्त अध्यापक की शिक्षण प्रभावशीलता का भी ज्ञान हो जाता है जिससे अध्यापक अपनी प्रभावशीलता को बढ़ा सकता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

1. प्रयोजन वादियों के अनुसार पाठ्यक्रम की संक्षिप्त में विवेचना कीजिए।

.....

2. पाठ्यक्रम–विकास के प्रमुख चरणों की विवेचना कीजिए।

.....

6.7 सारांशः–

इस इकाई के अन्तर्गत पाठ्यक्रम विकास की प्रक्रिया को मुख्य विन्दु मानकर इसके अन्य पक्षों पर प्रकाश डाला। पाठ्यक्रम–विकास प्रक्रिया के अन्तर्गत यह देखा गया है कि किस प्रकार से एक नये पाठ्यक्रम का विकास करते हैं। क्योंकि किसी भी पाठ्यक्रम विकास के अन्तर्गत बहुत से पक्ष आते हैं उनका भी हम क्रमवार वर्णन करते गये। पाठ्यक्रम–विकास प्रक्रिया को भारतीय स्कूलो में रखकर इसकी विकास प्रक्रिया का वर्णन किया गया।

इसके अन्तर्गत हमने पाठ्यक्रम विकास प्रक्रिया में विषयों को केन्द्र विन्दु मान कर उस पर विस्तृत वर्णन किया है। इसमें यह भी देखा गया है कि पाठ्यक्रम के अन्तर्गत किस प्रकार के विषयों को शामिल किया जाय। साथ में विद्यार्थियो से सम्बन्धित पाठ्यक्रम पर विशेष बल दिया गया है। उसके बाद हमारे भारत देश की धरोहर के रूप में स्थान बनायी संस्कृत भाषा के अन्तर्गत आने वाले शास्त्रीय पाठ्यक्रम को भी विशेष स्थान दिया गया है। क्योंकि शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत हमारे देश की संस्कृति झलकती है, क्योंकि किसी भी स्थान या किसी देश की पहचान उस देश स्थान के संगीत से पता चलता है।

पाठ्यक्रम–विकास की प्रक्रिया के अन्तर्गत अनुभव सम्बन्धी पाठ्यक्रम को भी स्थान दिया गया है और जब किसी वस्तु का अनुभव हो जाता है तो वहाँ पर आवश्यकता एवं सभ्यता की चर्चा होने लगती है। इनको भी इसमें स्थान प्रदान किया गया और इसके साथ वास्तविकता को भी जोड़ा गया है। आज की स्थिति को देखते हुये व्यवसाय सम्बन्धित पाठ्यक्रम को भी स्थान दिया गया है। कुछ विद्यार्थियों ध्यान स्थान में रखकर शिल्प केन्द्रित पाठ्यक्रम पर भी विचार किया गया है।

पाठ्यक्रम विकास की प्रक्रिया में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इसमें सभी वादों को ध्यान में रखकर तथा वैज्ञानिक पद्धति को भी ध्यान में रखकर पाठ्यक्रम निर्माण करने को वरीयता प्रदान की गयी है। इसके अन्तर्गत पाठ्यक्रम निर्माण के कुछ और भी नियम हैं जो इस प्रक्रिया में शामिल किये गये है और अन्त में पाठ्यक्रम मूल्यांकन निर्माण की प्रक्रिया को भी शामिल किया गया है।

अन्ततः यह कहा जा सकता है कि पाठ्यक्रम–विकास की प्रक्रिया के अन्तर्गत सभी विन्दुओं पर ध्यान दिया गया है कि किस प्रकार से एक नये पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाता है।

6.8 अभ्यास प्रश्नः–

निबन्धात्मक प्रश्नः–

1. पाठ्यक्रम विकास के प्रथम चरण का वर्णन कीजिए।
2. विषय केन्द्रित पाठ्यक्रम के गुण एवं दोष को बताइये।

लघु उत्तरीय प्रश्नः–

1. वर्तमान पाठ्यक्रम निर्माण की क्रिया–विधि बताइये ?

2. शास्त्रीय पाठ्यक्रम का क्या अर्थ है ?

3. अधिगम अनुभव के चयन के लिये किन बिन्दुओं को ध्यान में रखना चाहिए ?

4. मूल पाठ्यक्रम से आप क्या समझते हैं ?

वस्तुनिष्ठ प्रश्नः–

1. 'सामाजिक अध्ययन और सामान्य विज्ञान' किस प्रकार के पाठ्यक्रम हैं ?

क. मूल पाठ्यक्रम　　ख. व्यापक क्षेत्रीय पाठ्यक्रम

ग. सहसम्बन्धित पाठ्यक्रम　　घ. एकीकृत पाठ्यक्रम

2. विद्यालयों में निर्धारित पाठ्यक्रम द्वारा शिक्षा की व्यवस्था इसलिये की जाती है जिससे विद्यार्थियों की

क. सुरक्षा बढ़े　　ख. देख–रेख ठीक से हो सके

ग. जानकारी और कुशलता बढ़े　　घ. प्रतिष्ठा बढ़े

उत्तर– 1. ख

2. ग

इकाई–7 पाठ्यक्रम में विभिन्न विषयों का महत्व

इकाई की रूपरेखा

7.1 प्रस्तावना

7.2 उद्देश्य

7.3 पाठ्यक्रम और उसमें विभिन्न विषयों का महत्व

7.3.1 विभिन्न विचारधाराएं

7.4 पाठ्यक्रम में भाषाओं का महत्व

7.4.1 अभिव्यक्ति का सरलतम साधन

7.4.2 शिक्षा की आधारशिला

7.4.3 सामाजिक एकता में सहायक

7.4.4 मानसिक एवं बौद्धिक विकास में सहायक

7.4.5 व्यवहारिक जीवन में सहायक

7.5 पाठ्यक्रम में गणित का महत्व

7.5.1 निष्कर्ष

7.6 पाठ्यक्रम में विज्ञान शिक्षण का महत्व

7.7 पाठ्यक्रम में सामाजिक विज्ञान का महत्व

7.8 पाठ्यक्रम में अन्य विषयों का महत्व

7.9 पाठ्यक्रम में विषयों को सम्मिलित करना

7.10 पाठ्यक्रम का एकीकरण

7.11 सारांश

7.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

7.1 प्रस्तावनाः–

शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य बालक का व्यवहार परिवर्तन होता है। एक शिक्षक शिक्षा द्वारा अपने विद्यार्थी के व्यवहार में आपेक्षित परिवर्तन लाने का प्रयास करता है। पाठ्यक्रम, शिक्षण की क्रियाओं के सम्पादन का प्रमुख आधार होता है। पाठ्यक्रम के आधार पर ही एक शिक्षक बालक में अपेक्षित

गुणों को उत्पन्न कर उसके व्यवहार परिवर्तन का प्रयास करता है।

प्रस्तुत इकाई 'पाठ्यक्रम में विभिन्न विषयों का महत्व' में पाठ्यक्रम में विभिन्न विषयों के शामिल किये जाने का क्या कारण है ? इनका छात्रों के व्यवहार पर क्या प्रभाव पड़ता है ? इन विषयों की पाठ्यक्रम में क्या उपयोगिता है ? आदि–आदि प्रश्नों के उत्तर के सम्बन्ध में आप जान सकेंगे।

भाषा, गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान एवं अन्य विषयों का पाठ्यक्रम में क्या महत्व है, के विषय में आप जन सकेंगे। पाठ्यक्रम में विषयों को सम्मिलित करना तथा पाठ्यक्रम के एकीकरण आदि के सम्बन्ध में इस इकाई में चर्चा की गई है।

7.2 उद्देश्यः–

प्रस्तुत इकाई 'पाठ्यक्रम में विभिन्न विषयों का महत्व' के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगे कि आपः–

- पाठ्यक्रम में विभिन्न विषयों को सम्मिलित किये जाने के महत्व के विषय में जान सकेंगे।
- पाठ्यक्रम में विभिन्न विषयों के महत्व की व्याख्या कर सकेंगे।
- पाठ्यक्रम के एकीकरण के महत्व की व्याख्या कर सकेंगे।
- पाठ्यक्रम में विभिन्न विषयों जैसे– भाषा, गणित, विज्ञान, सामाजिक विज्ञान आदि विषयों के महत्व की समीक्षा कर सकेंगे।

7.3 पाठ्यक्रम और उसमें विभिन्न विषयों का महत्वः–

पाठ्यक्रम शिक्षा का एक अभिन्न अंग है। यह शिक्षक को बताता है कि उसे कक्षा विशेष को क्या और कितना पढ़ाना है ? यह जानकारी प्राप्त करके वह अपने सम्पूर्ण वर्ष के कार्य का उचित विभाजन करता है और विभिन्न विषयों को पढ़ाने की उचित तैयारी करता है। पाठ्यक्रम के अभाव में उसका शिक्षण कार्य उद्देश्य विहीन और अव्यवस्थित हो जाएगा।

शिक्षकों के समान छात्रों को भी पाठ्यक्रम में लाभ होता है, वे जान जाते हैं कि उन्हें कितने विषय पढ़ने है और किन पुस्तकों का प्रयोग करना है। इस जानकारी के अभाव में उनके ज्ञान के अर्जन की गति का एक सा होना असम्भव है।

'सेलर व विलियम्स' ने पाठ्यक्रम को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि:– "पाठ्यक्रम वह ढाँचा या संरचना है जिसका विद्यालय में शैक्षिक अनुभवों को चुनने, नियोजित करने तथा कार्यान्वित करने में प्रयोग किया जाता है। अतः यह आयोजन वह योजना है जिसका सीखने की क्रियाओं को प्रदान करने के लिए शिक्षक द्वारा अनुसरण किया जाता है।"

पाठ्यक्रम का सम्बन्ध बालक के सम्पूर्ण विकास से होता है, जिसके अन्तर्गत ज्ञानात्मक, भावात्मक, क्रियात्मक, शारीरिक एवं सामाजिक विकास को सम्मिलित किया जाता है। बालक के सम्पूर्ण विकास हेतु शिक्षा के पाठ्यक्रम में विभिन्न विषयों जैसे– सामाजिक विषय, (इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र), गणित, विज्ञान, भाषा आदि को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है।

पाठ्यक्रम में यहाँ ध्यान देने योग्य यह बात है कि पाठ्यक्रम में केवल उपरोक्त विद्यालयी विषयों का ही महत्व नहीं है वरन इसमें विद्यालय नियोजन एवं विद्यालय में सम्पादित सभी क्रियाओं को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाता है।

7.3.1 विभिन्न विचारधाराएं:–

पाठ्यक्रम में विभिन्न विषयों का क्या महत्व है ? कौन–कौन कसे विषयों को पाठ्यक्रम में प्रमुखता प्रदान की जाए ? आदि प्रश्नों पर आदर्शवादियों, प्रकृतिवादियों, प्रयोजनवादियों एवं यर्थावादियों ने अपने–अपने विचारों अथवा मतों को अभिव्यक्त किया है।

प्रकृतिवादियों ने पाठ्यक्रम का निर्माण अपने शिक्षा के उद्देश्यों के आधार पर किया है। वे भौतिक जीवन को सत्य मानते हैं, इसलिए उन्होंने पाठ्यक्रम में भौतिक विज्ञान स्वास्थ्य विज्ञान, शरीर विज्ञान आदि को अधिक महत्व दिया है। साहित्य कला और संगीत को पाठ्यक्रम में कम महत्व दिया गया है। उनके विचार से नीतिशास्त्र और धर्मशास्त्र का पाठ्यक्रम में कोई स्थान नहीं होना चाहिए।

आदर्शवादियों के अनुसार पाठ्यक्रम को आदर्शों, मूल्यों, विचारों आदि को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया है। इसके पाठ्यक्रम में भाषा, साहित्य, धर्मशास्त्र, नीतिशास्त्र आदि को प्रमुख स्थान दिया गया है। इसके साथ ही साथ विज्ञान एवं मानवीय विषयों को स्थान दिया गया है।

प्रयोजनवादियों के अनुसार पाठ्यक्रम में उपयोगिता के आधार पर विषयों को सम्मिलित किया जाना चाहिए। उपयोगिता की दृष्टि से बालक को भाषा, गणित, विज्ञान, भूगोल, इतिहास, गृहविज्ञान आदि विषयों के अतिरिक्त व्यवसायिक विषयों को भी महत्व दिया जाना चाहिए।

यथार्थवादियों के अनुसार पाठ्यक्रम में विषय की विविधता और उसे विस्तृत होना चाहिए। इसमें विज्ञान और भाषा को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है।

7.4 पाठ्यक्रम में भाषाओं का महत्व:–

भाषा मानव–भाव की अभिव्यक्ति का सर्वश्रेष्ठ साधन है जिसके अभाव में मानव पशु तुल्य है। व्यापक रूप में विचार विनिमय के समस्त साधनों को भाषा कहते हैं। भाषा ज्ञान प्राप्ति का प्रमुख साधन है। भाषा द्वारा ही किसी जाति या समाज का ज्ञान सुरक्षित रहता है, किन्तु भाषा पैतृक सम्पत्ति नहीं वरन अर्जित सम्पत्ति है। भाषा का अर्जन व्यक्ति अनुकरण द्वारा करता है। भाषा का कोई अन्तिम स्वरूप नहीं होता है, यह चिर परिवर्तनशील है। मानव सभ्यता और संस्कृति के विकास में भाषा का पर्याप्त हाथ है, इसीलिए एक विद्वान ने लिखा है–

''भाषा की कहानी सभ्यता की कहानी है।''

जिस साधन से हम अपने भाव या विचार दूसरों तक पहुँचा सकें वह भाषा है। भाषा की यह परिभाषा बहुत व्यापक है। महर्षि **'पतंजलि'** ने इसकी परिभाषा इस प्रकार दी है–

"भाषा वह व्यापार है जिससे हम वर्णनात्मक या व्यक्त शब्दों द्वारा अपने विचारों को प्रकट करते हैं।"

विश्वकोश ब्रिटेनिका में यह परिभाषा इस प्रकार से दी गई है–

"भाषा उच्चारण अवयवों से उच्चारित यादृच्छिक (Arbitrary) ध्वनि प्रतीकों की वह व्याख्या है जिसके द्वारा एक समाज के लोग आपस में भावों एवं विचारों का आदान–प्रदान करते हैं।'

भाषा के कई रूप होते हैं जैसे– मातृभाषा, प्रादेशिक या क्षेत्रीय भाषा तथा विदेशी भाषा आदि। मातृ भाषा से तात्पर्य उस भाषा से है जिसे बालक अपने जन्म के समय अपने माता–पिता एवं परिवार से सीखता है। क्षेत्रीय

भाषा वह भाषा होती है जो कि किसी क्षेत्र विशेष में बोली जाती है। जैसे– असम में असमिया बोली जाती है तथा उड़ीसा में उड़िया भाषा बोली जाती है। विदेशी भाषा से तात्पर्य उस भाषा से है जिसे हम अपनी मातृभाषा के रूप में प्रयोग में नहीं लाते।

पाठ्यक्रम में भाषाओं का बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान होता है। पाठ्यक्रम में भाषा के महत्व को हम निम्न शीर्षकों के माध्यम से स्पष्ट कर सकते हैं।

7.4.1 अभिव्यक्ति का सरलतम साधनः–

पाठ्यक्रम में भाषा का सबसे बड़ा महत्व यह है कि भाषा भाव अभिव्यक्ति का सबसे सरलतम एवं सशक्त माध्यम एवं साधन है। बालक प्रारम्भ से ही अपनी मातृभाषा को सीखने लगता है। जैसे–जैसे बालक बढ़ता है, वह अपने परिवार तथा अपने निकटवर्ती समाज व वातावरण में अपने भावों की अभिव्यक्ति हेतु भाषा का प्रयोग करने लगता है। बालक आगे बड़ा होकर अन्य भाषाओं जैसे– क्षेत्रीय एवं विदेशी भाषाओं को भी सीख लेता है जिससे वह अन्य क्षेत्रीय एवं विदेशी लोगों के भावों को समझने एवं अपने भावों को अभिव्यक्त करने के योग्य हो जाता है। अतः पठ्यक्रम में भाषा को प्रमुख स्थान दिया जाना चाहिए।

7.4.2 शिक्षा की आधारशिलाः–

भाषाएं विचार विनिमय का एक माध्यम होती हैं। विचार विनिमय की सरलता के कारण ही भाषा को शिक्षा का माध्यम बनाया जाता है। भाषा के माध्यम से ही हम शिक्षण सिद्धांतों नियमों, विधियों, अवधारणाओं को बालाकों को भली–भाँति स्पष्ट करा सकते हैं। भाषा के अभाव में व्यक्ति की शिक्षा की कल्पना नहीं की जा सकती। भाषा के अभाव में व्यक्ति पशु तुल्य हो जाएगा।

अन्य भाषा के ज्ञान द्वारा व्यक्ति दूसरे क्षेत्र एवं विदेशों के ज्ञान एवं विज्ञान का अर्जन कर सकता है। अतः हम कह सकते हैं कि भाषा शिक्षा की प्रमुख आधारशिला है।

7.4.3 सामाजिक एकता में सहायकः–

प्रायः देखा गया है कि एक ही देश में तथा विश्व के विभिन्न देशों में भिन्न– भिन्न भाषाएं बोली जाती हैं। पाठ्यक्रम में विभिन्न विषयों के शामिल होने से बालक को अपने देश के अन्य प्रान्तों के लोगों के विषय में जानने,

समझने का अवसर प्राप्त होता है जिससे उन व्यक्तियों में सामाजिकता का विकास होता है और उनमें एकता की भावना विकसित होती है।

7.4.4 मानसिक एवं बौद्धिक विकास में सहायकः–

ज्ञानवृद्धि से बुद्धि विकसित होती है और बौद्धिक विकास से मानसिक विकास प्रभावित होता है। मानसिक विकास के लिए विचारशक्ति तथा अभिव्यक्ति कौशल का होना अत्यन्त आवश्यक है। जिस व्यक्ति का भाषा पर जितना अधिक अधिकार होगा उसकी विचार शक्ति, तर्कशक्ति एवं अभिव्यक्ति भी उतनी ही अधिक विकसित होगी। सशक्त भाषा, विचारशक्ति, तर्कशक्ति एवं अभिव्यक्ति कौशल को विकसित करती है एवं व्यक्ति को मानसिक प्रबलता प्रदान करती है।

7.4.5 व्यावहारिक जीवन में सहायकः–

व्यवहारिक जीवन में सफल होने के लिए जरूरी है कि बच्चे को अपने से बड़ों, छोटों एवं बराबर वालों के साथ बातचीत करनी आती हो। यह कुशलता बालक में भाषा के द्वारा ही आती है। भाषा बालक को व्यवहारिक कुशलता प्रदान करती है। प्रायः देखा जाता है कि जो व्यक्ति मौखिक एवं लिखित भाषा के प्रयोग में जितना कुशल होता हे, व्यवहारिक जीवन में भी उतना ही सफल होता है।

7.4.6 निष्कर्षः–

इस प्रकार उपरोक्त विवरण के आधार पर हम कह सकते हैं कि भाषा मानव–भाव अभिव्यक्ति का महत्वपूर्ण साधन है। व्यक्ति का सम्पूर्ण विकास उसकी भाषा पर निर्भर करता है। अतः हम कह सकते हैं कि पाठ्यक्रम में भाषा को महत्वपूर्ण स्थान दिया जाना चाहिए।

बोध प्रश्न

टिप्पणी–(i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

प्रश्न 1:– पाठ्यक्रम में कौन से विषयों को स्थान दिया जा सकता है?

.....

प्रश्न 2:– भाषा के अभिव्यक्ति का सरलतम साधन के रूप में महत्व को अपने शब्दों में लिखिए।

.....

7.5 पाठ्यक्रम में गणित का महत्वः–

विद्यालय पाठ्यक्रम में गणित एक महत्वपूर्ण विषय है। अन्य विषयों की अपेक्षा गणित का हमारे दैनिक जीवन से घनिष्ट सम्बन्ध है। मातृभाषा के अलावां अन्य कोई विषय ऐसा नहीं है जो कि गणित की भाँति दैनिक जीवन से इतना अधिक सम्बन्धित हो। गणित को विज्ञान का जन्मदाता भी माना जाता है। वर्तमान समय में गणित को विद्यालयी पाठ्यक्रम में विशेष महत्व दिया गया है। किसी विषय को पाठ्यक्रम में विशेष महत्व देने के लिए उस विषय को सामान्यतः तीन दृष्टिकोणों से देखा जाता है–

अ. अमुक (उस) विषय की बच्चों के दैनिक जीवन में उपादेयता (Utility)

ब. अमुक विषय से बच्चों को मानसिक अनुशासन (Mental Discipline) में सहायता मिलती है अथवा नहीं।

स. अमुक विषय का सामाजिक एवं सांस्कृतिक महत्व (Social and Cultural Imprortance)

आज विद्यालयों में गणित एक अनिवार्य विषय है। गणित विषय को विद्यालयों या पाठ्यक्रम में अनिवार्य करने के लिए किसी विशेष दृष्टिकोण से गणित का मूल्यांकन (Evaluation) अथवा परीक्षण करने की आवश्यकता नहीं है। अन्य विषयों की भाँति गणित भी बच्चों को एक सामाजिक तथा बुद्धिमान नागरिक के रूप में विकसित करने में सहायक है। जब बालक गणित का अध्ययन करता है तो अनुशासन जैसे अन्य गुणों का विकास स्वतः ही हो जाता है। इसके अलावां गणित विषय द्वारा उन सभी गुणों का विकास भी सम्भव है, जो कि किसी अन्य विषय द्वारा विकसित हो सकते हैं। यही नहीं गणित, विज्ञान और तकनीकी शिक्षा को दिनों दिन महत्व दिया जा रहा है और कहा जा रहा है कि यदि हमें राष्ट्र को आगे बढ़ाना है तो इन विषयों के स्तर को उन्नत करना होगा तथा प्राथमिक स्तर से ही इन पर ध्यान देना होगा।

इस सम्बन्ध में कोठारी आयोग ने अपने सुझावों में स्पष्ट किया है किः–

"विद्यालयी जीवन के प्रथम दस वर्षों में विज्ञान एवं गणित विषय अनिवार्य रूप से सभी बच्चों को पढ़ाए जाने चाहिए।"

व्यापक रूप से देखा जाय तो बच्चे को विद्यालय में विभिन्न लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए भेजा जाता है। सामान्यतः यह अपेक्षा की जाती है कि

विद्यालय में बच्चा निम्नलिखित लक्ष्यों को प्राप्त करने में समर्थ हो सकेगा–

क. ज्ञान तथा कुशलताओं की प्राप्ति (Acquisitoin of Knowedge and Skills)

ख. बौद्धिक आदतों एवं विभिन्न शक्तियों–अनुशासन आदि की प्राप्ति (Acquisition of Intellectual Habits and various Powers as discipline etc.)

ग. वांछित दृष्टिकोण एवं आदर्शों की प्राप्ति (Acquisition of desirable attitudes and ideals)

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या गणित विषय का अध्ययन करने से बच्चा इन लक्ष्यों की प्राप्ति करता है ? यदि गणित का अध्ययन इन लक्ष्यों की प्राप्ति में सहायक है, तब तो यह शिक्षा के क्षेत्र में मूल्यवान हैं तथा शिक्षा का एक महत्वपूर्ण अंग है। वास्तविक रूप से गणित विषय को इतना अधिक महत्व देने और अनिवार्य विषय बनाने में इसके अध्ययन से बच्चों को विभिन्न लाभ मिलते हैं, जिनको हम गणित शिक्षण के मूल्य भी कहते हैं। गणित शिक्षण द्वारा निम्नलिखित मूल्यों या लाभों की प्राप्ति हो सकती हैं–

बौद्धिक मूल्य (Intellectual value)–

निरीक्षण शक्ति, तर्कशक्ति, स्मरण शक्ति, एकाग्रता, मौलिकता, अन्वेषण शक्ति, विचार एवं चिन्तन शक्ति, आत्मनिर्भरता तथा कठिन परिश्रम आदि का विकास करना।

प्रयोगात्मक मूल्य (Utilitarian or Practical Value):–

अपने दैनिक व्यवहार में घर, बाहर, बाजार, आय–व्यय आदि से सम्बन्धित गणित का ज्ञान।

अनुशासन सम्बन्धी मूल्य (Disciplinary Value):–

गणित अध्ययन से केवल बच्चों की मानसिक शक्तियों का विकास एवं उन्हें नियंत्रित ही नहीं करता है, बल्कि उनके व्यक्तित्व में गम्भीरता, विवेके एवं चिंतनशीलता जैसे गुण भी विकसित करता है। यही कारण है कि गणित का अनुशासन सम्बन्धी मूल्य भी महत्वपूर्ण है।

नैतिक मूल्य (Moral Value)

Dutton के अनुसार "गणित तर्क सम्मत विचार, यथार्थ कथन तथा

सत्य बोलने की सामर्थ्य प्रदान करता है। व्यर्थ गप्पें, आडम्बर धोखा तथा छल–कपट सब कुछ उस मन का कहना है, जिसको गणित का प्रशिक्षण नहीं दिया गया है।"

सामाजिक मूल्य (Social Value):–

सामाजिक जीवन यापन करने के लिए गणित के ज्ञान की अत्यधिक आवश्यकता होती है। क्योंकि समाज में भी लेन–देन, व्यापार, उद्योग आदि व्यवसाय गणित पर ही निर्भर है।

उपरोक्त मूल्यों के साथ–साथ सौन्दर्यात्मक या कलात्मक मूल्य जीविकोपार्जन सम्बन्धी मूल्य, मनोवैज्ञानिक मूल्य, वैज्ञानिक दृष्टिकोण सम्बन्धी मूल्य तथा अंतराष्ट्रीय मूल्यों आदि के विकास में गणित शिक्षण की महत्वपूर्ण भूमिका होती है।

7.5.1 निष्कर्ष:–

इस प्रकार सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि हमारे जीवन का कोई पहलू ऐसा नहीं है जो कि गणित के ज्ञान से किसी न किसी रूप में प्रभावित तथा सम्बन्धित न हो। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में गणित के दैनिक जीवन व राष्ट्रीय विकास में महत्व को स्वीकार करते हुए स्पष्ट किया गया है कि:–

"यह वास्तविकता है कि गणित को अधिकांश बच्चे कठिन विषय समझते हैं। अतः विद्यालय और अध्यापक द्वारा ऐसे ठोस कदम उठाए जाने चाहिए जिनसे सभी बच्चों के गणित के स्तर को उन्नत किया जा सके।'

इस प्रकार हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि गणित मनुष्य जाति के लिए उसके जीवन में कदम–कदम पर अनेक प्रकार से उपयोगी है। इसके बिना जीवन में तनिक भी उन्नति के पथ की ओर नहीं चल सकता है। स्कूल के अन्य सभी विषय इसी के आधार पर मनुष्य के लिए उपयोगी हो सकते हैं। इसके बिना सभी विषय निरर्थक प्रतीत होते हैं। अतः गणित का स्कूल पाठ्यक्रम में सर्वप्रथम तथा प्रतिष्ठित स्थान होना अति आवश्यक है।

7.6 पाठ्यक्रम में विज्ञान शिक्षण का महत्व:–

मानव जीवन को किसी भी दूसरी परिघटना ने इतना अधिक प्रभावित नहीं किया जितना कि विज्ञान ने। मानव की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति

से लेकर उसके अधिकार भाव की तुष्टि हेतु राजनीतिक सत्ता प्राप्त करने जैसे कामों में भी विज्ञान और उसके उपकरणों का समान रूप से उपयोग होता है। खाद्योत्पादन के क्षेत्र में वैज्ञानिक खाद, ट्रैक्टर, पानी निकालने के विभिन्न उपकरण, कपड़ा उद्योग के क्षेत्र में कृत्रिम रेशे से निर्मित टेरेलीन, टेरीकाटन, टेरीवूल, स्वास्थ्य के क्षेत्र में सामान्य शल्य चिकित्सा से लेकर हृदय स्थानान्तरण तक, मनोरंजन के क्षेत्र में टेलीवीजन, यातायात के क्षेत्र में सामान्य रेलगाड़ी से लेकर पराध्वनिक (सुपरसोनिक) जेट विमानों तक और व्यापार के क्षेत्र में कम्प्यूटर का उपयोग आज किसी से छिपा नहीं है।

ऐसी स्थिति में विज्ञान की आवश्कयता एवं महत्व का प्रश्न मूलतः अपने पर्यावरण को समझने की आवश्यकता का ही प्रश्न है। यदि आज के जीवन का बोध उसको समझने की उपयुक्त दृष्टि छात्रों को देनी है उसकी जटिलताओं को हल करने की क्षमता छात्रों में उत्पन्न करनी है तो विज्ञान की शिक्षा अपरिहार्य है। सारांश रूप में आज के सामाजिक और राजनैतिक गठन में प्रभावकारी और सफल जीवन यापन के लिए विज्ञान वर्ग की सामान्य शिक्षा छात्रों के लिए आवश्यक हो गयी है।

विज्ञान का प्राकृतिक तथ्यों की जानकारी के रूप में कुछ शताब्दियों पूर्व ही उद्‌भव हुआ और आज वह ज्ञान के एक स्वतंत्र और पूर्ण अनुशासन के रूप में विकसित हो गया है। आज विज्ञान की प्रकृति उसको शेष सभी विषयों से स्पष्ट रूप से अलग अंकित करने में सक्षम है। विज्ञान की कतिपय लाक्षणिक विशेषताएं है, उसकी अपनी तकनीक है और अपना दर्शन है। इस नूतन अनुशासन का छात्रों के व्यक्तित्व और उसके विकास में विशेष योगदान हो सकता है। विज्ञान शिक्षा यदि उपयुक्त रूप से प्रदान की जाए तो वह छात्रों में जीवन के प्रति एक विशेष प्रकार का दृष्टिकोण काम करने का ढंग और चिंतन की पद्धति का विकास कर सकती है। इस प्रकार विज्ञान शिक्षण द्वारा छात्रों के व्यक्तित्व विकास की दृष्टि से यह अति महत्वपूर्ण है। इसका महत्व निम्न कारणों के कारण है–

छात्रों के मन मस्तिष्क को अंधविश्वास से मुक्ति दिलाने के लिएः–

विज्ञान वाह्य प्रकृति के अध्ययन का एक प्रायोगिक ढंग है। इसके अन्तर्गत प्रकृति की घटनाओं की ऐसी व्याख्या प्रस्तुत की जाती है जो तथ्यों एवं प्रमाणों पर आधारित हो। व्याख्या में विश्वास का स्थान लगभग शून्य होता है। विज्ञान की खोजों का मूल ही, "क्या", "किस प्रकार", और "क्यों"

आदि प्रश्नों में निहित है। विज्ञान का दीर्घकालीन अध्ययन करने से यही प्रश्न छात्रों के व्यक्तित्व का अंग बन जाते हैं और वे प्रकृति और समाज की प्रत्येक घटना का विश्लेषण और व्याख्या इन्हीं प्रश्नों के माध्यम से करने के अभ्यस्त हो जाते हैं। इन घटनाओं के विषय में कोई भी व्याख्या ठोस प्रमाणों के आध ाार पर ही स्वीकार की जाती है, उदाहरण के लिए जब आज के विद्यार्थी को यह बताया जाता है कि वर्षा इन्द्र की कृपा का फल है और यज्ञ तथा हवन के माध्यम से उसे प्रसन्न किया जा सकता है, तब विज्ञान का छात्र उसे प्रयोग की दृष्टि से देखता है। वह परीक्षण करता है और ज्यों ही वह देखता है कि प्रत्येक हवन का परिणाम वर्षा नहीं होता, वह इस तर्क को अस्वीकार कर देता है। इस प्रकार वस्तुनिष्ठ प्रमाणों, प्रेक्षणों और तथ्यों के अभाव में केवल विश्वासों के सहारे चली गई सभी व्याख्याएं अपना स्थान खो बैठतीं हैं और केवल वे ही टिक पाती हैं जिन्हें तर्कों, तथ्यों और प्रेक्षणों के माध्यम से प्रमाणित किया जा सकता है और इस प्रकार छात्रों को समाज में व्याप्त अंध ाविश्वासों से मुक्ति मिल जाती है।

छात्र में तथ्यात्मक चिंतन पद्धति विकसित करने के लिएः–

समाज की परिस्थितियाँ जिस तेजी से बदलती हैं उतनी तेजी से सामाजिक व्यवहार और सामाजिक रीति–रिवाज नहीं बदलते। वे सदैव ही कुछ वर्षों के लिए पिछड़े रहते हैं। इसलिए समाज में बहुत सी अनावश्यक और अनुपयुक्त बातें चलती हैं जिनका अतीत में भले ही कुछ उपयोग रहा हो लेकिन आज के जीवन में जो तर्क संगत प्रतीत नहीं होती है। इस प्रकार रीति–रिवाज सामाजिक रूढ़ियों के रूप में चलते रहते हैं। विज्ञान की प्रकृति कुछ इस प्रकार की है कि उसमें हर नये तथ्य के प्रकाश में पुराने ज्ञान का भी पुनरावलोकन होता रहता है। जब भी कुछ नया तथा मिलता है उसके प्रकाश में पुरानी सभी धारणाओं को पुनः परिभाषित कर लिया जाता है। इस प्रकार यहाँ पुरातन धारणाओं का ऐतिहासिक दृष्टि के अतिरिक्त कोई महत्व नहीं रहता। विज्ञान के अध्ययन से छात्रों की चिन्तन पद्धति पर इसी प्रकार का प्रभाव पड़ता है तथा नियोजन प्रयासों के माध्ययम से इन प्रभावों को और अधिक समृद्ध बना लिया जाता है। परिणाम स्वरूप छात्र अपने सम्पूर्ण वातावरण और सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में अपनी मान्यताओं को नित नये तथ्यों के प्रकाश में परिवर्तित करके चले जाएंगे और इस प्रकार की रूढ़ियों से सदैव ही मुक्त रहेंगे।

छात्रों में सामाजिक प्रगति की तैयारी के लिए:–

प्रत्येक मनुष्य अपनी महत्वाकांक्षाओं के अनुरूप पर्यावरण के साथ सामन्जस्य की प्रक्रिया में विकास और प्रगति करता है। जब पर्यावरण में कोई परिर्वतन नहीं होता है तब वहाँ प्रेरणा और प्रोत्साहन का कोई स्थान नहीं होता और ऐसी स्थिति में मनुष्य प्रगति नहीं कर पाता। दूसरी ओर जब मनुष्य के पर्यावरण में तो वे तत्व हों परन्तु उसकी महत्वाकांक्षाओं के साथ उनका तालमेल न बैठता हो, तब मनुष्य प्रगति की धारा के साथ गतिमान नहीं रहता। इस प्रकार मनुष्य की प्रगति और विकास में दो प्रकार के अवरोध आते हैं, एक तो परम्परागत पर्यावरण की देन और दूसरे का आधार मनुष्य की चिंतन पद्धति को माना जा सकता है। विज्ञान ने मनुष्य के पर्यावरण को बदलने में बड़ा ही महत्वपूर्ण योगदान दिया है और इस दृष्टि से विज्ञान का अध्ययन और प्रगति सामाजिक विकास की तैयारी में सहायक होती है।

छात्रों की कार्यक्षमता में वृद्धि करने के लिए:–

जीवन के पुरातन रीति–रिवाज और तौर–तरीकों पर जीने वाले मनुष्य की कार्य क्षमता अत्यंत सीमित होती है। जो मनुष्य अपने लेखन के कार्य में केवल हस्तक्षेप तक ही सीमित रहता हैं उनकी अपेक्षा यंत्रों का उपयोग करने वाला मनुष्य कई गुना कार्य कर सकता है। पर्यटन की दृष्टि से आवागमन में पुरातन विधियों की अपेक्षा आधुनिकतम उपकरणों के उपयोग ने एक ओर मनुष्य की सुविधाओं में बृद्धि की है तो दूसरी ओर उसकी गति में अपूर्व योगदान दिया है। विज्ञान के अध्ययन से ज्यों–ज्यों वैज्ञानिक यंत्रों के उपयोग और उसके प्रयोग में कौशल का विकास होता जायेगा, मनुष्य की कार्य क्षमता में भी वृद्धि होती जाएगी। विज्ञान के अध्ययन से छात्रों को इस तथ्य का सहज ही ज्ञान हो जाता है।

इसके साथ ही छात्रों में विज्ञान के अध्ययन से प्रजातांत्रिक नागरिकता की तैयारी की जा सकती है। उनमें (छात्रों में) सार्वभौमिक दृष्टिकोण के विकास में विज्ञान की महती भूमिका होती है। विज्ञान के अध्ययन द्वारा छात्रों को समस्या हल करने की वैज्ञानिक विधि में प्रशिक्षित किया जा सकता है।

निष्कर्ष:–

इस प्रकार उपरोक्त विवरण के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यदि छात्र मानस को अंधविश्वासों से मुक्त करना है, उनकी प्रगति के लिए तैयार करना है, उनमें सार्वभौमिक दृष्टिकोण का विकास करना है, उनमें

सफल प्रजातांत्रिक नागरिकता के लिए आवश्यक गुणों का विकास करना है और जीवन में नित्यप्रति आने वाली समस्याओं को हल करने की क्षमता और आत्म विश्वास का विकास करना है तो विज्ञान का अध्ययन छात्रों के लिए विशेष रूप से सहायक होगा।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

प्रश्न 3:– किसी विषय को पाठ्यक्रम में शामिल किये जाने के सम्बन्ध में दिये गये किसी एक दृष्टिकोण को लिखिए?

.....

प्रश्न 4:– छात्रों में तथ्यात्मक चिंतक का विकास कैसे किया जा सकता है?

.....

7.7 पाठ्यक्रम में सामाजिक विज्ञान का महत्वः–

सामाजिक विज्ञान के अन्तर्गत इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र, समाजशास्त्र अर्थशास्त्र, दर्शन शास्त्र तथा अर्थशास्त्र का अध्ययन शामिल है। इनके अध्ययन के महत्व को हम दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं–

क. वैयक्तिक महत्व

ख. सामाजिक महत्व

वैयक्तिक महत्वः–

वैयक्तिक दृष्टि से इसके अध्ययन के निम्नलिखित महत्व हैं–

i. सामाजिक चरित्र का निर्माणः– इसके अध्ययन द्वारा व्यक्ति में विभिन्न सामाजिक गुणों का विकास किया जाता है– सहयोग, सहकारिता, सहिष्णुता, निष्पक्षता आदि। ये गुण सामाजिक चरित्र के निर्माण में आधार का कार्य करते हैं।

ii. व्यक्ति की मानसिक शक्तियों का विकास किया जाता है।

iii. व्यवहारिक समस्याओं के समाधान के लिए तैयार किया जाता है।

iv. अपने उत्तरदायित्वों के निर्वाह के लिए समर्थ बनाया जाता हैं।

v. विभिन्न सामाजिक आदतों तथा कुशलताओं का विकास किया जाता है।

vi. व्यक्ति को अपने वातावरण में व्यवस्थित होने के लिए समर्थ बनाया जाता है। इसके अतिरिक्त उसमें स्वयं की अपनीं आवश्यकताओं के अनुकूल बनाने की क्षमता प्रदान की जाती है।

सामाजिक महत्वः–

वर्तमान समय में पाठ्यक्रम में सामाजिक विज्ञानों के महत्व को हम निम्न प्रकार से स्पष्ट कर सकते हैं–

i. सामाजिक विज्ञानों का अध्ययन छात्रों में स्वस्थ दृष्टिकोण विकसित करने में सहायक है।

ii. वह सहयोगी भावना विकसित करता है।

iii. सामाजिक अध्ययन देश की विरासत तथा संस्कृति के लिए प्रेम तथा सम्मान एवं श्रद्धा जाग्रत करता है।

iv. यह समाज की प्रगति के लिए मार्ग प्रशस्त करता है।

v. सामाजिक अध्ययन समाज में एकरूपता तथा दृढ़ता लाने का प्रयास करता है।

vi. यह सामाजिक जीवन को उन्नत, सकल तथा समृद्ध बनाने में परम उपयोगी है।

vii. सामाजिक विज्ञानों का अध्ययन सामाजिक जागरूकता तथा अन्तर्राष्ट्रीय सद्भावना के विकास में सहायक है।

viii. यह साथियों के लिए सहिष्णुता, सहानुभूति तथा प्रेम की भावना विकसित करता है।

ix. सामाजिक विज्ञानों का अध्ययन पूर्वद्वेषों एवं पूर्वाग्रहों को दूर करके व्यापक दृष्टिकोण के विकास में सहायता प्रदान करता है।

x. सामाजिक अध्ययन समीक्षात्मक चिंतन की भावना विकसित करके पूर्णजीवन यापन में सहायता करता है।

निष्कर्षः–

इस प्रकार उपरोक्त विवरण से स्पष्ट हो जाता हैं कि पाठ्यक्रम में सामाजिक विषयों को स्थान देना अति महत्वपूर्ण है। बालक के सम्पूर्ण विकास में सामाजिक विज्ञानों का अति महत्वपूर्ण स्थान है। जो बालक के सामाजिक समायोजन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

7.8 पाठ्यक्रम में अन्य विषयों का महत्वः–

पाठ्यक्रम में उपरोक्त विभिन्न विषयों का महत्वपूर्ण स्थान तो है, इसके साथ ही साथ कुछ अन्य विषय भी हैं जिनकी पाठ्यक्रम में महत्वपूर्ण भूमिका होती है। इस प्रकार के विषयों में हम खेल, व्यायाम, कला, संगीत आदि को सम्मिलित किया जा सकता है।

पाठ्यक्रम में खेल एवं व्यायाम विषय द्वारा बालक के शारीरिक विकास का प्रयास किया जाता है। उनमें स्फूर्ति के संचार का मुख्य साधन खेल, व्यायाम अथवा शारीरिक शिक्षा ही है। कला एवं संगीत व्यक्ति के आंतरिक भावों के प्रकट करने का प्रमुख आधार है। व्यक्ति के अन्तः मन में उठने वाले भाव इसकी कला द्वारा ही अभिव्यक्ति पाते हैं। व्यक्ति अपनी खुशियों एवं गमों को कला एवं संगीत के द्वारा अभिव्यक्त करता है।

7.9 पाठ्यक्रम में विषयों को सम्मिलित करनाः–

इस प्रकार उपरोक्त विवरण के आधार पर स्पष्ट हो जाता है कि पाठ्यक्रम में विभिन्न विषयों को उन महत्व को ध्यान में रखकर सम्मिलित करना चाहिए।

पाठ्यक्रम में विषयों को सम्मिलित करते समय हमें सर्वप्रथम हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि पाठ्यक्रम में उन विषयों को सम्मिलित करना चाहिए जो कि जीवन से सम्बन्धित हों, ऐसे विषयों का अध्ययन करके ही बालक जीवन में प्रवेश करने के बाद सफलता प्राप्त कर सकेंगे। पुराने ढंग से पाठशालाओं और मकतबों का इसलिए लोप हो गया, क्योंकि उनमें जो विषय पढ़ाये जाते थे, उनका जीवन से कोई सम्बंध नहीं था।

इसके साथ ही साथ पाठ्यक्रम में विषयों को सम्मिलित किया जाना चाहिए जो कि छात्रों की रूचियों, विभिन्नताओं, दृष्टिकोणों, मनोवृत्तियों और आवश्यकताओं के अनुकूल हो। बालकों पर अनुपयुक्त विषयों को लादने का

प्रयत्न नहीं करना चाहिए। इससे उनमें निराशा की भावना उत्पन्न होती है। साथ ही उनके विकास में बाधा पड़ती है। इसके विपरीत ज्ञान, कुशलता और मूल्यांकन के कुछ ऐसे विस्तृत क्षेत्र हैं जिनके सम्पर्क में बालकों को लाना चाहिए अतः पाठ्यक्रम में इन्हें प्रथम स्थान देना चाहिए। किन्तु इनको ऐसी मात्रा में सम्मिलत करना चाहिए कि छात्रों की शक्तियों और क्षमताओं से परे न हो जाए।

7.10 पाठ्यक्रम का एकीकरण करना:–

जैसा कि उपरोक्त विवरण से स्पष्ट है कि पाठ्यक्रम में अलग–अलग विषयों के शिक्षण का अपना अलग–अलग महत्व है। इनके महत्व के कारण ही इन्हें पाठ्यक्रम में शामिल किया जाता है। यद्यपि पाठ्यक्रम में उपरोक्त सभी विषयों को स्थान मिलना चाहिए किन्तु साथ ही साथ हमें यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि पाठ्यक्रम में जिन विषयों को शामिल करने के बाद ऐसा प्रतीत हो कि वे एक ही विषय के अंग हैं। उनमें आपस में एकीकरण होना चाहिए जिससे व्यक्ति एवं बालक का सर्वांगीण विकास सम्भव हो सके।

पाठ्यक्रम को अनेक सम्बंधित विषयों में खण्डित नहीं करना चाहिए। ऐसा पाठ्यक्रम खण्डित होने के कारण प्रभावहीन हो जाता है। अतः यह आवश्यक है कि पाठ्यक्रम में एकीकरण हो। पाठ्यक्रम में सभी विषयों का एकीकरण होना अति आवश्यक है। इसमें सभी विषयों को एक दूसरे से सम्बद्ध होना चाहिए और सभी को जीवन से सम्बन्धित होना चाहिए।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

प्रश्न 5:– पाठ्यक्रम में सामाजिक शिक्षण के किन्हीं चार महत्वों को लिखिए?

.....

प्रश्न 4:– पाठ्यक्रम में अन्य कौन–कौन से विषय हैं जो शामिल किये जाने योग्य हैं ?

.....

7.11 सारांशः—

पाठ्यक्रम एक प्रकार की रूपरेखा होती है जिसका उपयोग विद्यालय में शैक्षिक अनुभवों को चुनने, नियोजित करने तथा कार्यान्वित करने में प्रयोग किया जाता है। इसमें अनेक विषयों को समुचित स्थान प्रदान किया जाता है, जिनका कि बालक के सर्वांगीण विकास में महत्वपूर्ण स्थान होता है। गणित और विज्ञान को पाठ्यक्रम में शामिल करने से बालक में तार्किक एवं चिन्तन शक्ति का विकास होता है। भाषा शिक्षण बालक में समक्ष और अभिव्यक्ति की क्षमता प्रदान करती है। सामाजिक विज्ञानों का शिक्षण बालक को सामाजिक परिवेश से परिचित कराकर उसके सामाजिक एवं नागरिक गुणों का विकास करती है। कला, संगीत और खेल बालक के भावात्मक एवं शारीरिक विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

इस प्रकार इन विषयों का पाठ्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान है। इसके साथ ही साथ हमें यह भी ध्यान देना चाहिए कि पाठ्यक्रम में इन विषयों का इस प्रकार से सम्मिलित किया जाए कि इनमें एकरूपता हो अर्थात पाठ्यक्रम में एकीकरण होना चाहिए।

7.12 बोध प्रश्नों के उत्तरः—

1. पाठ्यक्रम में उन विषयों को स्थान दिया जाना चाहिए जिससे बालक का सम्पूर्ण विकास हो सकें। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि जहाँ एक ओर गणित और विज्ञान जैसे तार्किक विषयों को स्थान दिया जाए वहीं सामाजिक विषयों को भी पाठ्यक्रम में प्रमुख स्थान दिया जाना चाहिए।

2. भाषा व्यक्ति की अभिव्यक्ति का एक सरलतम साधन है। इस रूप में इसका बड़ा ही महत्वपूर्ण स्थान रखता है। भाषा ही व्यक्ति को पशु से मानव बनाती है। इसके द्वारा व्यक्ति अपनी भावनाओं एवं विचारों दूसरों को स्पष्ट कर सकता और उनके विचारों एवं भावनाओं को आसानी से समझ सकता है।

3. किसी विषय को पाठ्यक्रम में शामिल करते समय हमारे समक्ष मुख्य दृष्टिकोण होता है कि अमुक विषय की बच्चों के दैनिक जीवन में क्या उपयोगिता है।

4. गणित एवं विज्ञान द्वारा बालकों में तथ्यात्मक चिंतन का विकास किया जा सकता है।

5. पाठ्यक्रम में सामाजिक विज्ञान शिक्षण के महत्व को हम इस प्रकार से स्पष्ट कर सकते हैं–

   i. सामाजिक चरित्र का निर्माण।

   ii. बालक को व्यवहारिक समस्याओं के समाधान करने के योग्य बनाना।

   iii. बालकों में सहयोग की भावना का विकास।

   vi. सामाजिक विज्ञानों का अध्ययन बालकों में स्वस्थ दृष्टिकोण का विका करता है।

6. पाठ्यक्रम में संगीत, कला, योग, खेल आदि ऐसे अन्य विषय हैं जिन्हें पाठ्यक्रम में महत्वपूर्ण स्थान मिलना चाहिए।

इकाई– 8 सहपाठ्यक्रमीय क्रियाकलाप

इकाई की रूपरेखा

8.1 प्रस्तावना

8.2 उद्देश्य

8.3 पाठ्यक्रम सम्बन्धित क्रियाकलाप

8.4 सहपाठ्यक्रमीय क्रियाकलाप की परिभाषा

8.5 सहपाठ्यक्रमीय क्रियाकलाप की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

8.6 पाठ्येत्तर क्रियाओं की योजना क्यों ?

8.7 पाठ्येत्तर क्रियाओं के आयोजन से लाभ

8.7.1 प्राप्त ज्ञान का प्रत्यक्ष व्यवहारीकरण

8.7.2 पाठ्य विषय का बोध

8.7.3 अवकाश का सम्यक् सदुपयोग

8.7.4 कुंठा से मुक्ति

8.7.5 अध्ययन में रुचि रखने वाले भी कार्योन्मुख

8.7.6 अनुशासन की समस्याओं का शमन

8.7.7 सामाजिकता

8.7.8 गुरु–शिष्य सामीप्य

8.7.9 शैक्षिक एवं व्यावसायिक मार्गदर्शन

8.7.10 शारीरिक आरोग्य प्राप्ति

8.7.11 प्रतिभाओं का प्रकटीकरण

8.7.12 चरित्र निर्माण

8.7.13 आदर्श ग्रहण

8.7.14 मानसिक रेचन और तुष्टि

8.7.15 जीवनोपयोगी मूल्यों की प्राप्ति

8.8 पाठ्येत्तर क्रियाकलाप–शिक्षण के प्रयोजन

8.9 पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं के कार्यक्रम

8.10 सारांश

8.11 अभ्यास प्रश्न

8.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें

8.1 प्रस्तावनाः–

पिछली इकाई में हमने देखा कि पाठ्यक्रम का विकास किस प्रकार से होता है तथा इस पाठ्यक्रम को किस प्रकार से विद्यार्थियों के अनुरूप केन्द्रित करके इसको अनेक रूपों में ढाला गया है। इस इकाई में यह भी देखने को मिला कि पाठ्यक्रम को सामाजिक, दार्शनिक एवं मनोवैज्ञानिक यानि कि तीनों रूपों में विद्यार्थियों के शैक्षिक उद्देश्यों का विश्लेषण करते हैं। इस इकाई में हमने पाठ्यक्रम निर्माण करने की सभी विधियों को सीखा तथा साथ में यह भी जाना कि कहाँ पर और किस प्रकार के पाठ्यक्रम का विकास करना चाहिए। इस पाठ्यक्रम के विकास की प्रक्रिया को देखते हुये इसमें विभिन्न विषयों को महत्व भी दिया गया। जैसे– भाषा, गणित एवं विज्ञान, सामाजिक विज्ञान। इसके साथ ही इसमें अन्य विषयों को भी स्थान दिया गया। इस इकाई के अन्तर्गत हमने कुछ क्षेत्रीय, देशीय, विदेशी तथा अन्य भाषाओं का भी बखूबी से वर्णन किया।

इसके बाद अब आने वाली इस इकाई के अन्तर्गत हम प्रस्तावना, सह पाठ्यक्रमीय क्रिया कलाप की परिभाषा, सहपाठ्यक्रमीय क्रियाकलाप की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, पाठ्येत्तर क्रियाओं की योजना, पाठ्येत्तर क्रियाओं के आयोजन से लाभ, पाठ्येत्तर क्रियाकलाप शिक्षण के कार्यक्रम के इन सभी विन्दुओं पर विस्तृत चर्चा की जायेगी। इसके साथ ही इनके विभिन्न पहलुओं पर भी ध्यान केन्द्रित किया जायेगा।

8.2 उद्देश्यः–

इस इकाई के पढ़ने के पश्चात् आप इस योग्य हो जायेंगे किः–

- सह पाठ्यक्रमीय क्रिया कलाप की परिभाषा को परिभाषित कर सकेंगे।
- सहपाठ्यक्रमीय क्रियाकलाप की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की अवध ारणाओं को स्पष्ट कर सकेंगे।
- पाठ्येत्तर क्रियाओं के आयोजन से लाभ तथा पाठ्येत्तर क्रियाकलाप शिक्षण कार्यक्रम की व्याख्या कर सकें।
- इन सभी उपागमों की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कर सकेगें।

8.3 पाठ्यक्रम सम्बन्धित क्रियाकलापः–

पाठ्यक्रम सम्बन्धी क्रियाकलाप की अगर हम बात करें तो पीछे कई इकाइयों में इससे सम्बन्धित बातें हो चुकी हैं। परन्तु पाठ्यक्रम की शिक्षा ही सम्पूर्ण शिक्षा नहीं है। इसके साथ ही जीवन में कुछ अन्य क्रियायें भी आवश्यक होती हैं जो समाज और देश के लिये अत्यधिक उपयोगी होती हैं। इन क्रियाओं को अनेक नामों से जाना जाता है, किन्तु कुछ शिक्षाविद्वों के अनुसार इसको आठ नामों से जाना जाता है जो अत्यधिक प्रचलित हैं–

1. पाठ्यक्रमेतर क्रियाएँ (Extra- Curricular Activities)
2. सहपाठ्यक्रमीय क्रियाएँ (Co- Curricular Activities)
3. सम्बद्ध क्रियाएँ (Allied Activities)
4. विद्यालयीय क्रियाएँ (School Activities)
5. सहपाठ्यक्रमीय क्रियाएँ (Extra- Class Activities)
6. अर्द्ध पाठ्यक्रमीय क्रियाएँ (Semi- Curricular Activities)
7. पाठ्यक्रमोपरि क्रियाएँ (Super- Curricular Activities)
8. अकक्षागत क्रियाएँ (Non- Curricular Activities)

पाठ्यक्रम सम्बंधी इन क्रियाओं को शामिल करने के बाद इन आठ नामों में से कुछ शिक्षाशास्त्रियों का दो नामों के प्रति अधिक झुकाव है–

1. पाठ्यक्रमेतर क्रियाकलाप
2. सहपाठ्यक्रमीय क्रियाकलाप

पाठ्यक्रमेतर क्रियाकलाप से यह ध्वनि निकलती है कि इसके अन्तर्गत आने वाली खेल–कूद सम्बन्धी, साहित्यिक और सांस्कृतिक क्रियाएं आवश्यक नहीं हैं और इनका पाठ्यक्रम के समान महत्व नहीं है। इनको कराना या न कराना अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। यह विचार त्याज्य है। दूसरे में यह भाव निहित है कि ये क्रियाएं वैसे ही महत्वपूर्ण है जैसे कि पाठ्यक्रम सम्बन्धी क्रियायें। वस्तुतः ये क्रियाएं पाठ्यक्रम के साथ–साथ चलने वाली क्रियाएं हैं और इनका उतना ही महत्व है जितना पाठ्यक्रमीय क्रियाओं का। कभी–कभी भ्रमवश कुछ लोगों को 'करीक्यूलर एक्टिविटीज' का अर्थ उन क्रियाओं से ले लेते हैं जिनमें बालक– बालिकाएँ साथ–साथ भाग लेते हैं। इन भ्रम के कारण

ही बहुत से लेखक इन्हें पाठ्यक्रमेतर लिखना अधिक पसन्द करते हैं।

सहपाठ्यक्रमीय क्रियाकलाप की परिभाषा

नामों की भिन्नता के कारण इन क्रियाओं के प्रत्यय का निश्चय करने में कठिनाई आती है और अनेक नामों में से उपयुक्त चयन और परिभाषा उलझी हुयी है क्योंकि जितने ही शब्द उतने ही अर्थ और उतनी ही व्याख्यायें तथा उतने ही मत हैं। सभी शिक्षाविद यही कहते हैं कि इनकी व्याख्या कठिन है। जान्सटन तथा फ्रांस के मत में प्रवृत्तियाँ क्या हैं ? इन प्रश्न का उत्तर इतना सरल नहीं है। वे स्वयं इसकी व्याख्या न कर एक पूर्ववर्ती ग्रन्थकार को उद्धृत करते हैं पर अपना मत नहीं देते। प्रसिद्ध प्रवृत्तिनिष्ठ विद्वान शिक्षाशास्त्री **हैरी मेकाउन** का भी यही कथन है। "आज इनकी परिभाषा व व्याख्या कठिन है और इसीलिये अनेक बोधक शब्द अस्तित्व में आ गये हैं। फिर भी यह बात नहीं कि व्याख्या हुयी ही न हो। इस विषय से सम्बन्धित बहुत प्रयास हुये हैं। "एतद्विविषयक ग्रन्थों में इन प्रवृत्तियों को" विद्यालय के माध्यम से समाज द्वारा प्रदत्त मनोरंजन, शिक्षण–प्रशिक्षण, रूचियों, योग्यताओं और प्रवृत्तियों के क्रियाओं के निमित्त आयोजित कार्यक्रम व घटनायें कहा गया है। इसके मत में इस विषयक प्रसिद्ध शिक्षाविद फ्रैटवैल का सिद्धान्त समस्त विद्यालयों पर घटित होता है कि, यह विद्यालय का ही कार्य है कि वह अपनी सम्पूर्ण व्यवस्था इस भाँति करे कि अध्यापक तथा छात्र प्रत्येक को अभ्यास के अनुकूल परिणाम सुखद सन्नागरिक के भुजों का अभ्यास करने का इसी काल में सुअवसर प्राप्त हो। इसी सिद्धान्त के द्वितीय स्थापना इनके अनुसार बहुमान्य होती जा रही है कि, यथासम्भव सर्वत्र ही पाठ्येत्तर प्रवृत्तिया पाठ्यक्रिया जन्य हो और उन्हीं की सर्ववृद्धि के लिये उन्हीं में लीन हो जाएं। कुछ भिन्नता के साथ ही इनकी व्याख्या से इनमें उन सब क्रियाओं एवं कार्यों का समावेश हो जाता है जो विद्यालय के माध्यम से समाज द्वारा प्रदत्त हैं। **जोस्टन एवं फ्रांस** एक पूर्ववर्ती ग्रन्थकार की व्याख्या उद्धत करते हैं जिसके अनुसार ये वे प्रवृतियाँ हैं जो नियमित कक्षागत सामान्य से बाहर होती हैं, जो छात्र की अन्तः प्रेरित रूचियों से उद्भूत हैं, तथा जो विद्यालय की मान्यता से परे क्रियान्वित होती हैं। परिभाषा के विषय में वे आगे कहते हैं कि, यह नहीं कहा जा सकता कि वे यही है। साधारणतः यह कहा जा सकता है कि ये कक्षा अध्ययन, अध्यापन के बाहर के क्रिया–कलाप हैं जो स्वयमेव पाठ्यविषयों तथा छात्रों की प्रवृत्तियों, रूचियों, योग्यताओं आदि से उद्भूत हैं, उनसे

सम्बन्धित है तथा जिनके लिये कोई शिक्षण योग्यता का मानदण्ड निर्धारित नहीं है, अथवा जिनके लिये विद्यालय कोई अंक नहीं देता, एक और अधिकारी विद्वान हैरी मैकाउन का मत बहुत प्रमाणिक है। वे कहते हैं, तीन–चार दशक पूर्व इन्हें एक्स्ट्रा करिक्यूलर कह देना बहुत सरल था, क्योंकि तब यह कार्य केवल छात्रों द्वारा यों ही विद्यालय की मान्यता से परे, विशेष मान्यता के बिना, हो जाते थे किन्तु आज इनकी परिभाषा व व्याख्या बहुत कठिन है। क्योंकि प्रायः समस्त शिक्षकों का इनके आयोजन उन्नयन में निश्चित दायित्व है, पाठ्यक्रम से इनके घनिष्ट सम्बन्ध हैं और इन्हें सब प्रकार की मान्यता प्राप्त है। साथ ही इनमें भाग लेने के लिये अंक भी दिये जाते हैं। इन्हीं नवीनताओं के कारण इनके अनेक नाम अस्तित्व में आ गये हैं।

यह प्रसन्नता की बात है कि इन क्रियाओं की वांछनीयता को सभी विद्धान स्वीकार करते हैं। उलझन उन्हें केवल इन्हें पाठ्यक्रम स्वीकार न करने की है। अर्थात इन्हें भी पाठ्यक्रम ही के समान पर्याप्त महत्व प्राप्त हो अथवा 'गौण स्थान'? यही आज विवाद का विषय है, इसीलिये इसे इतने विशेषण दिये गये हैं। इस मत वैविध्य के कारण यद्यपि विद्वानों ने प्रयत्न अवश्य किये हैं। इससे अब केवल दो ही शब्द प्रचलन में रह गये हैं– एक्स्ट्रा करिक्यूलर और कोकरिक्यूलर।

अब इन क्रियाओं को प्रायः पाठ्यक्रमेतर लिख दिया जाता है। यह शब्द भी असंतोषजनक है। इससे अधिक उपयुक्त शब्द को करिक्यूलर जो आज की विचारधारा के निकटतम है। फिर भी विद्वजन विवश हो 'एक्स्ट्रा करिक्यूलर' का ही प्रयोग अधिक कर रहे हैं क्योंकि स्थिति अभी तक बहुत कुछ वही है। हाँ अब एक ही शब्द 'कोकरिक्यूलर एक्टीविटीज' हिन्दी में जिसके लिये 'सहशैक्षिक', 'पाठ्यचर्यानुवर्ती' या सहपाठ्यक्रमीय क्रियाएं शब्दों का प्रचलन है, को प्रयोग करते हैं।

इन सब चर्चा का तात्पर्य यह नहीं कि इनकी कोई परिभाषा ही अभी सम्भव नहीं। इनमें फ्रेटवेल और हैरीमेकाउन अधिक ग्राह्य हैं। कोई एक परिभाषा इसकी कभी होगी यह नहीं मानना चाहिए। क्योंकि जैसा कि विषय से स्पष्ट है, ये विद्यालय की शिक्षा के अंग रूप शिक्षा ही है और शिक्षा की जैसी एक सुनिश्चित परिभाषा अशक्य है उसी प्रकार इसकी भी रहेगी। पाठ्यक्रम या शिक्षा का अविच्छेद अंग होते हुये भी इन्हें अभी तक वह मान्यता प्राप्त नहीं है, किन्तु हमें विश्वास है वह दिन आने वाला है जब सभी भारतीय

अपने पाठ्यक्रम के साथ इन पाठ्येता क्रियाओं को भी देगें।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

1.पाठ्यक्रम सम्बन्धी क्रियाकलाप के बारे में आप क्या जानते हैं ? संक्षेप में वर्णन कीजिए।

.....

2. सहपाठ्यक्रमीय क्रियाकलाप की परिभाषा का संक्षेप में वर्णन कीजिए?

.....

8.5 सहपाठ्यक्रमीय क्रियाकलाप की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि:– (Historcal Background of Co-Curricular Activities)

पाठ्येत्तर प्रवृत्तियों को जीवन निर्माण के लिये अत्यन्त महत्वपूर्ण तथा शिक्षा का अनिवार्य अंग मानना कोई आज के शिक्षाशात्रियों का ही नवीन विचार नहीं। अत्यन्त प्राचीन काल से हमारे देश भारत में तथा अत्यन्त्र भी यह मान्यता चली आयी है। हमारे अपने भारतीय आश्रमों व गुरूकुलों में प्राचीन काल में प्रयत्न पूर्वक चौदह विद्यायें तथा चौसठ कलाएँ सिखाई जाती थीं। छात्र ही नहीं छात्राएँ भी अपने लिये जीवनोपयोगी समस्त विद्याएँ सीखतीं किन्तु कलाओं में साधारणतया अधिक निपुण होती थीं। राजाओं के लिए पाठ्यविषयों के साथ लंघन अर्थात कूदना–फाँदना, प्लवन अर्थात तैरना, गंधर्व विद्या, अश्वविद्या, हस्तिविद्या आदि अवश्यक आने थे। महाभारत काल में भी लंघन, हस्ति आवाहन, रथ वाहन, संगीत कला, कथा कहानी आदि प्रमुख थे। समय–समय पर अनेक उत्सवों, भ्रमणों पर्यटनों, मेलों आदि का आयोजन होता रहता था। प्रतियोगितायें होती थीं, छात्रों को अपनी विद्याओं तथा कलाओं की सार्वजनिक परीक्षा देनी पड़ती थी। शास्त्रार्थ इनके विशेष साहित्यिक अंग थे, तो मल्लयुद्ध, अस्त्र–शस्त्र–नैपुण्य–प्रदर्शन आदि कलाओं के विशेष लोकप्रिय आयोजन थे। समस्त प्राचीन भारतीय साहित्य–वेद–पुराण, शास्त्र, महाकाव्य, जातक, काव्य, नाटक, कथा, गाथा आदि में इनका प्रचुर उल्लेख है। आधुनिक विद्वानों के प्राचीन भारतीय शिक्षा विषयक ग्रन्थों में इनका सविस्तार संकलित वर्णन है। हमारे यहाँ भारत में इनका सविस्तार संकलित वर्णन है। हमारे यहाँ भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से गुप्तों के युग

तक तो इनमें उत्कृष्टता बनी रही। तदन्तर ज्ञान–विज्ञान के क्रमिक ह्रास के साथ मध्यकाल में जाकर इनका अत्यन्त विकृत रूप हो गया जो आज तक रहा। अब जाकर नवयुग के नव प्रभात के साथ यह भावना पुनर्जीवित हुयी है और अपने उन्नयन विकास के लिये नयी पीढ़ी की ओर देख रही है। हमारे यहाँ अभी इसका बहुत विकास होना है।

यही नहीं यूरोप में भी पूर्व मध्य तथा मध्य काल में ऐसी कुछ बातें प्रचलित थीं। एथेंस और स्पार्टा में क्रीड़ाएं, संगीत, अमिनय विशेष उत्सव, छात्र समितियों और सम्मानादि प्रचलित थे। ये क्रमशः विकसित हुये और आज तो वहाँ सर्वत्र पर्याप्त प्रसंशनीय रूप में प्रचलित है।

अमेरिका में इसकी बड़ी प्रसंशनीय प्रगति हो रही है और उत्तरोत्तर नवीन रूप लेती जा रही है। यह एक शास्त्र बनता जा रहा है।

फिर भी आज के इस प्रबल प्रगतिशली युग में होते हुये भी हमारे देश में ऐसे विद्यालयों एवं अध्यापकों की संख्या अधिक है जिन्हें शिक्षा के इस अत्यन्त आवश्यक महत्वपूर्ण कार्य में विश्वास ही नहीं है। वे आज भी दुर्भाग्यवश पुस्तकीय ज्ञान को ही सबकुछ मानते हैं। पर शीघ्र ही वह दिन आने वाला है, जब नव भारत के नव शिक्षक युग धर्मानुकूल इन प्रवृत्तियों के महत्व को अन्तःकरण से स्वीकार कर उनके तथा इनसे देश के उत्थान में प्रवृत्त होंगे।

"यस्तु क्रियावान् पुरूषः स विद्वान" उपर्युक्त तथ्य को स्पष्ट करता है। आश्रमों और गुरूकुलों में व्यक्ति– विकास और चरित्र निर्माण तथा जीवन की तैयारी एक विशिष्ट उद्देश्य था। इसके दो पक्ष थे– इहलौकिक तथा पारलौकिक। लौकिक का उद्देश्य था– मानव जीवन के समस्त भौतिक सम्बन्धों का सम्यक् ज्ञान तथा निर्वाह। पारलौकि का लक्ष्य था– परम ज्ञान की उपलब्धि। समस्त गुरूजन, ऋषि–मुनि इन मूल उद्देदश्यों की प्राप्ति के लिये सदा सचेष्ट रहते थे। इन लक्ष्यों के विविध रूप थे। जीवन के असंख्य क्रिया–कलाप हैं और कुछ इसी प्रकार पारलौकिक के भी हैं। पर साधारण ज्ञान तथा समन्वय सामन्जस्य की दृष्टि से इन्हें अत्यन्त संक्षिप्त कर केवल चार शब्दों में ही निर्धारित कर दिया था– चतुर्वग अर्थात धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष। इनके लिये भी नियम निर्धारित थे कि व्यक्ति इन चारों को समान रूप में क्रियान्वित करेगा, प्रवृत्त होगा जिसका यह सिद्धान्त था–

धर्मार्थकामाः सममेव सेव्याः

यो ह्येक सक्तः स जनो जधन्यः।

अर्थात धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चारों समान सेवनीय हैं। जो किसी एक ही में प्रवृत्त होता है वह जन परम निन्दनीय है।

इस प्रकार उनका दृष्टिकोण सम्पूर्ण मानव का विकास अथवा विविध तामय व्यक्ति का एकीकरण था। आदर्श था व्यक्ति का व्यक्तित्व विकास।

8.6 पाठ्येतर क्रियाओं की योजना क्यों ?

निम्नलिखित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिये छात्रों को इन क्रियाओं में रूचि लेना आवश्यक है–

1. अनुकूल वातावरण की उपलब्धि
2. धार्मिक तथा नैतिक शिक्षण व जीवन को सार्थक करने वाले नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों की जीवन में प्रतिष्ठा
3. देश की परम्परागत साहित्यिक सांस्कृतिक सामाजिक निधियों अर्थात ज्ञान–विज्ञान और मानवता के क्षेत्रों की उपलब्धियों पर गर्व करना।
4. शरीरिक एवं मानसिक आरोग्य हृष्ट–पुष्ट तेजस्वी प्रफुल्ल मन का विकास।
5. अपने जीवन एवं जीविका के विकास के लिये अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति के लिये आवश्यक योग्यता।
6. विविध सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक समस्याओं पर स्वतंत्र चिन्तन, मनन, वैज्ञानिक विचार भाव तथा कर्तव्य–निर्धारण क्षमता।
7. मुक्त चर्चा तथा स्वस्थ लोकमत निर्माण में सहायता।
8. व्यक्ति के सर्वांगीण व्यक्तित्व का मनोवैज्ञानिक, सामाजिक, भावात्मक एवं व्यावहारिक विकास।
9. संकीर्ण के स्थान पर उदार शिक्षा।
10. सहयोग के मूल्यांकन की क्षमता।
11. अनुशासन, नियमन, सहयोग, सहिष्णु लोक भावना, व्यक्ति के सामाजीकरण का विकास।
12. राष्ट्र प्रेम भाव, कट्टरता नहीं।
13. देश की सामाजिक, सांस्कृतिक सफलताओं को अन्तःकरण से स्वीकार कर उन पर गर्व करना।
14. व्यक्ति का लोक हितार्थ समष्टि में विलीन करना।
15. अन्तराष्ट्रीय नागरिकता को भी राष्ट्रीय के समान महत्व देना।

16. सृजनात्मकता प्रतिभा, निर्माणात्मक शाक्ति एवं कलात्मक रूचि का प्रवाह।
17. राष्ट्र की सांस्कृतिक परम्परा की निधि को समझना।
18. जीविका और व्यावसायिक कुशलता से छोटे काम की भी कुशलता सुन्दरता और पूर्णता से करने की भावना।
19. उद्योग शिल्प द्वारा आगे चलकर जीवन उन्नयन करना। काम की श्रीवृद्धि करना, राष्ट्रीय धन की अभिवृद्धि करना।
20. निजी प्रतिभा से स्वतः कार्य अधिक करने के लिये आवश्यक ज्ञान, कौशल एवं मानसिक प्रवृत्ति का विकास।
21. जीवन के विविध क्षेत्रों में प्रवेश तथा अग्रणी लोगों के स्थान की पूर्ति कर लेने की क्षमता।
22. पितृ अभिभावक सहयोग
23. विद्यालय सामाजिक जीवन और प्रवृत्तियों का केन्द्र हो सके।
24. धार्मिक तथा नैतिक शिक्षण– प्रार्थना सभा, प्रेरणाप्रद प्रवचन के द्वारा।
25. सुनियोजित शिष्ट "जीवन की कला" का शिक्षण।
26. छात्र के व्यवहार व शील को प्रभावित करना।
27. दलीय कार्य, धर्म, निष्ठा शान्त स्वभाव, बन्धुत्वभाव अनुशासन की भावना का विकास।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

1. सहपाठ्यक्रमीय क्रियाकलाप की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की विस्तृत चर्चा कीजिए।

8.7 पाठ्येतर क्रियाओं के आयोजन से लाभ

8.7.1 प्राप्त ज्ञान का प्रत्यक्ष व्यवहारीकरणः–

प्रवृत्तियों के आयोजन से छात्र–छात्राओं को अपने पाठ्यविषयों व कक्षागत प्राप्त ज्ञान का प्रत्यक्ष व्यवहारीकरण हो जाता है जो ज्ञान और क्रिया का सुन्दर समन्वय है और जिससे हमारे प्राचीन शास्त्रों की उक्ति 'यस्तु क्रियावान पुरूषः से विद्वान्' को चरितार्थ करता है।

8.7.2 पाठ्य विषय का बोधः–

आयोजनों में होने वाली वैचारिक चर्चाओं से पाठ्य विषयों के अनेक प्रसंगों पर प्रभाव पड़ता है उनके विविध दृष्टिकोण आते हैं इससे वे छात्र–छात्राओं को अधिक सरलता हृदयगम होते हैं। चर्चाओं में अधिक सक्रिय भाग लेने वालों के लिये तो यह वरदान हो जाता है।

8.7.3 अवकाश का सम्यक् सदुपयोगः–

प्रवृत्तियों के कार्यक्रमों में कार्य करने, भाग लेने में वही समय लगेगा जो उनके अवकाश का है। इस कार्य में उसका बहुत सदुपयोग हो जाता है। अन्यथा यही अवकाश काल दुखद तक हो जाता है। इससे शिक्षा में छात्र–छात्राओं के अवकाश के सदुपयोग की जो समस्या है उसका समुचित प्रभावकारी हल हो जाता है और संभावित दोषों का निराकरण हो जाता है।

8.7.4 कुंठा से मुक्तिः–

कक्षा में पढ़ते हुए छात्र–छात्राओं को उबा देने, थकाने, उदासीनता आने की जो स्थिति आ जाती है, इससे उनमें जो कुंठा उत्पन्न हो जाती है, वह आयोजनों में भाग लेने में समाप्त हो, उसका शासन हो, नवीन स्फूर्ति आती है, कार्य में अधिक रूचि की वृद्धि होती है।

8.7.5 अध्ययन में अरूचि रखने वाले भी कार्योन्मुखः–

ऐसे अनेक छात्र–छात्राएं जो कक्षा अध्ययन में अरूचि होने व असफल होने से उबकर अन्य कार्यों व रूपों में अपने समय तथा शक्ति का अपव्य करते हैं। वे भी इनमें लगकर अपना अच्छा विकास कर लेते हैं। इससे जहाँ उन लोगों के लिये विद्यालय नीरस उपेक्षणीय था वही आकर्षक एवं प्रिय हो जाता है। तब उनका अध्ययन भी अधिक अच्छा होने लगता है।

8.7.6 अनुशासन की समस्याओं का शमनः–

तब उदण्डताओं में बहुत कमी आ जाती है। उनका शमन होता है। यही नहीं, इसमें भाग लेने से उनकी शक्तियों का विकास होता है, विद्यालय में शान्ति सुव्यवस्था आती है और विद्यालय उन्नति करता है।

8.7.7 सामाजिकताः–

उपरोक्त प्राकर के लोग जब यह सुअवसर नहीं पाते तो वे उदण्ड हो

असामाजिक तत्व तक बन जाते हैं, पर इधर अवसर प्राप्ति से अपने समय और शक्ति का सदुपयोग कर सकते हैं जिससे वे सुपात्र बनते हैं।

8.7.8 गुरू–शिष्य सामीप्यः–

इस सब बातों को करते हुए तथा सभी आयोजनों में भाग लेते हुए छात्र–छात्राएँ जो पहले अपने गुरूजनों से बहुत दूर थे और जिन्हें वे जान भी नहीं पाते थे अब अपने गुरूजनों से बहुत अधिक समीप्य एवं विश्वास प्राप्त करते हैं। उनके पारस्परिक सम्बन्ध अब अधिक सुमधुर और आत्मीयतामय तक हो जाते हैं। इससे उत्साहित हो छात्र–छात्राएं उनसे निजी कठिनाइयों व समस्याओं को हल करने, अपनी उन्नति तथा भावी जीवन के लिये आवश्यक परामर्श, मार्गदर्शन, सहायता, सहयोग प्राप्त करते हैं जो आगे चलकर बहुत उपयोगी होता है। ये सम्बन्ध जीवन–पर्यन्त भी रह सकते हैं।

8.7.9 शैक्षिक एवं व्यावसायिक मार्ग–दर्शनः–

विद्यालय में कक्षाओं में अध्यापक अपने शिष्य–शिष्याओं की प्रवृत्तियों, गुणों आदि का उतना ज्ञान नहीं कर पाता। किन्तु इस नैकट्य से यह ज्ञान सरल एवं वास्तविक हो जाता है तथा मार्गदर्शन प्रभावकारी हो जाता है।

8.7.10 शारीरिक आरोग्य प्राप्तिः–

आयोजन कार्यों में अधिक परिश्रम पूर्वक कार्य करने से शारीरिक आरोग्य प्राप्ति भी सरल होगी क्योंकि परिश्रम रोगशमन करेगा। इससे शरीरमाद्यम् खलु धर्म साधनम्' की सिद्धि होगी।

8.7.11 प्रतिभाओं का प्रकटीकरणः–

इन कार्यों में भाग लेते रहने से छात्र–छात्राओं को अनेक प्रकार के कार्य करने पड़ेगे– व्यवस्था करने, मंच–मंडप अलंकृत करने, चर्चाओं में भाग लेने आदि के कार्य। इनसे उनकी समस्त प्रतिभाओं, रूचियों, प्रवृत्तियों, मौलिक सृजनात्मक शक्तियों, अभिरूचियों, गुणों, क्षमताओं, योग्यताओं आदि का सम्पूर्ण प्रकटीकरण, विकास एवं उन्नयन होता है। इसके अनेक लाभ हैं। जिनसे कार्यक्षेत्र एवं जीवन बनता है। मार्ग–दिशा निश्चित होती है। यह शिक्षा का अत्यन्त महत्वपूर्ण साध्य है जो इन्हीं के द्वारा सम्भव होता है।

8.7.12 चरित्र निर्माणः–

प्रवृत्तियों के कार्यों में भाग लेने पढ़ने, देखने, सुनने, अभिनय, प्रदर्शन में

भाग लेने, भाषण देने व चर्चाओं में योग देने, कर्तव्य–दायित्व का वहन करने, पद लेने आदि के द्वारा जो अनुभव होंगे, उनसे छात्र–छात्राएं विविध गुण प्राप्त कर, कतिपय आदर्श ग्रहण कर अपने चरित्र का निर्माण करेंगे।

8.7.13 आदर्श ग्रहणः–

चरित्र निर्माण में प्रयत्न करते हुए क्रमों के कतिपय कार्यों, पात्रों, भावनाओं, विचारों आदि से प्रभावित हो मनोवैज्ञानिक आधार के इस वय के कारण स्वभावतः अपने लिये किन्हीं जीवनादर्शों एवं मूल्यों का ग्रहण कर, जीवन में तदनुकूल योग्यता– कुशलता प्राप्त कर महान बनने की कामना करते हुए उन्नति के लिये प्रयत्नशील होंगे।

8.7.14 मानसिक रेचन एवं तुष्टिः–

प्रवृत्तियों के कार्यक्रमों में भाग लेते हुए छात्र–छात्राओं की कक्षा की तथा घर की समस्त दमन की हुई अवरूद्ध भावनाएँ, आकांक्षाएं, वृत्तियाँ प्रवृत्तियाँ आदि की उन्मुक्त अभिव्यक्ति होगी। इससे मानसिक रेचन होगा जो उन्हें आन्तरिक तुष्टि, सुख एवं आनन्द प्रदान करेगा। इससे सन्तुलित मानसिक आरोग्य भी प्राप्त होगा।

8.7.15 जीवनोपयोगी मूल्यों की प्राप्तिः–

स्वयं ये काम करने से छात्रों में आत्म–विश्वास, आत्म–निर्भरता, श्रम–प्रतिष्ठा, शोषणहीन वृत्ति, साधनहीनता, उपलब्ध साधन सामग्री का अधिकाधिक सदुपयोग, अपने ही साधनों पर निर्भर रहना, परस्पर सहयोग सहायता से कार्य करना, कठिनाईयों का सामना करना, धैर्य रखना, समस्याओं को हल करना, दूसरे को सहायता करना, पारस्परिक प्रेम, बन्धुत्व एवं परामर्श, लोक कल्याण आदि के भावों तथा आवश्यक गुणों का विकास होता है जो जीवन में बहुत उपयोगी होता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

1. पाठ्येत्तर क्रियाओं के लाभ एवं हानियों के मुख्य बिन्दुओं पर संक्षिप्त रूप में वर्णन कीजिए।

.....

8.8 पाठ्येतर क्रियाकलाप–शिक्षण के प्रयोजन

1. महात्मा गांधी ने 'द टीचर्स वर्ल्ड' में ये बातें इस सम्बन्ध में आवश्यक मानी हैं–

क. उन समस्त सामाजिक, आर्थिक कठिनाइयों और समस्याओं को समझना जो सदा व्यक्ति के सम्मुख आती है।

ख. व्यक्ति के व्यक्तित्व का अपने स्वयं के लिये सर्वाणीण विकास।

ग. वयस्क माता–पिताओं का शिक्षण ताकि वे समुचित रूप में अपनी संतानों का निर्माण करें। उन्हें उचित मार्गदर्शन भी दें।

2. मैन्शार्ट कमेटी बंबई ने इनमें ये बातें जोड़ी हैं–

घ. निराश जीवन को आशामय सरस बनाने में सहायक होना।

ङ. वातावरण में जो साधन व्यक्ति को प्राप्त हैं उनका उपयोग करने में मार्गदर्शन देना ताकि वे योग्य बन जीवनोपयोगी सुख–सुविधाएं प्राप्त कर सकें। सामाजिक दोषों से अपनी रक्षा कर सकें।

3. भारत सरकार ने अपनी 'हैण्डबुक' में निम्नलिखित प्रयोजन बताए हैं–

(i) **निवारक**– आर्थिक कुशलता, उत्कृष्टता, अभिकथन और श्रेष्ठ सम्पन्न सांस्कृतिक जीवनयापन।

(ii) **व्यावसायिक**– व्यवसाय कुशलता तथा समृद्धि।

(iii) **आरोग्य**– स्वस्थ जीवन।

(iv) **सामाजिक गुण**– अपने साथियों के साथ मेल–जोल, जीवन में प्रगति करना, कौटुम्बिक जीवन को अधिक प्रभावकारी भी बनाना आज के विषय वासनामय क्लिष्ट विपन्न विश्व में अपने कर्तव्यों और अधिकारों का ज्ञान होना।

(v) मनोरंजन के लिये विविध रूपों का ज्ञान और उनकी उपलब्धि।

(vi) **आत्मोन्नति**– सांस्कृतिक गुण प्राप्ति– किसी विषय या विभाग विशेष में विशेष ज्ञान अथवा जीवन का एक दर्शन, दृष्टिकोण विशेष बनाना अथवा किसी कला का विशेष ज्ञान प्राप्त करना। इसमें व्यक्ति को अपने सम्पूर्ण प्रयत्नों तथा कार्यों के विशेष में 'क्यों' और 'क्या' देखना है। यह एक नवीनीकरण है जिसमें–

क. सामाजिकता को बढ़ावा देना है। एक ऐसी संस्कृति का निर्माण करना है, जिसमें हमारे राष्ट्रीयता तत्व भाग ले सकें।

ख. राष्ट्रीय साधनों का संरक्षण एवं उन्नयन।

ग. सहयोगी सहकारी समूह तथा प्रणालियों का निर्माण।

घ. सामाजिक आदर्शों की प्रवृत्ति डालना। व्यक्ति को अपने निजी हित व कल्याण भावना को अपने समूह, दल समाज और अपने को देश के कल्याण के हित में प्रसन्नतापूर्वक अपर्ण कर देने को प्रस्तुत होने की भावना का विकास करना।

4. समाज की थाती को सौपनें का श्रेयः–

समाज से विद्यालय को अल्प वयस्क निरीह बालक बालिका थाती के रूप में प्राप्त होते हैं। इन्हें सुयोग्य बनाकर समाज को पुनः सौपने का श्रेय प्राप्त करना।

5. अभिभावक सम्मेलनः–

विद्यालय के कार्यक्रमों को देखने जनता बड़ी संख्या में आती है। ये अभिभावक ही तो हैं। फिर विद्यालयों में यदा–कदा अभिभावक सम्मेलन होते रहते हैं। इन सब के अनेक लाभ हैं। वे लोग विद्यालय में अपने पुत्र–पुत्रियों तथा संरक्षितों की प्रगति को प्रत्यक्ष देखकर उत्साहित होते हैं। इससे विद्यालय के प्रति उनकी श्रद्धा दृढत्र होती है। इससे विद्यालय की विशेषताओं का प्रचार होता है। अध्यापकों की प्रतिष्ठा में वृद्धि होती है। लोग अपने बालकों–बालिकाओं को वहाँ भेजना अधिक पसन्द करते हैं। विद्यालय उस क्षेत्र के सामाजिक जीवन के मार्गदर्शन का एक महत्वपूर्ण केन्द्र बन जाता है। ऐसे सम्मेलनों से विद्यालय की, छात्र–छात्राओं की, उनके घरों की, अभिभावकों, समुदाय तथा क्षेत्र विशेष की समस्याओं को समझने–सुलझाने और आवश्यकतानुसार समाज को बहुमूल्य सहयोग प्रदान करते हैं।

विद्यालय का स्तर–उन्नयन एवं परम्पराओं का निर्माणः–

प्रवृत्तियों के उद्देश्यों की सम्यक् सम्पूर्ति से विद्यालय के स्तर का निरन्तर उन्नयन होगा। वह सतत् प्रगति पथ पर आरूढ़ रहेगा। उसकी प्रतिष्ठा की वृद्धि हो, यश का विस्तार होगा। इससे अपनी प्रतिष्ठा, मानमर्यादा के अनरूप वह विद्यालय सबका मार्गदर्शक बना रहेगा। फलतः विद्यालय में उत्तरोत्तर अच्छी परम्पराओं का निर्माण होता रहेगा।

7. अपनी देन पर गर्वः–

विद्यालय के छात्र–छात्राएं आगे चलकर जो कुछ उल्लेखनीय देन समाज और साहित्य व ज्ञान विज्ञान को देंगे उसके लिये विद्यालय उनपर गर्व करेगा और अपने पर भी गर्व करेगा कि ये उसकी उपज हैं।

8. महापुरूष–निर्माणः–

विद्यालय के ये शिष्य–शिष्याएँ माता–पिता, कृषक, व्यवसायी, श्रमिक, शिल्पी, निर्माता, सैनिक, विधिशास्त्री, प्रशासक, न्यायधीश, लोक सेवक, लोकनायक, विद्वान, अध्यापक, वैज्ञानिक, वक्ता, लेखक, साहित्यकार, कवि, पत्रकार, अभिनेता, नर्तक, गायक, कलाकार, धर्मगुरू, दार्शनिक आदि कुछ न कुछ बनते हैं। समाज तथा संसार को अपनी कार्य शक्ति की प्रतिभा की देन से ये महापुरूष बन देश और समाज का मुख उज्ज्वल करते हुए उसका गौरवपूर्ण यशस्वी इतिहास निर्माण करते हैं। उन्हें विद्यालयों की बड़ी देन होती है।

9. समाज सेवक निर्माणः–

विद्यालय समाज का सच्चा प्रहरी भी है। अपनी इस सचेष्ट सेवा से विद्यालय समाज रूपी वृक्ष की जड़ें सिंचित कर पुष्ट करता है जिससे समाज फलता–फूलता है। अपने उन्नयन के लिये इन आयोजनों द्वारा यह सब होता रहता है। पाठ्यक्रमेतर क्रियाओं के आयोजन का यह प्रमुख प्रयोजन है।

10. परामर्श और मार्गदर्शनः–

विद्यालय के द्वारा समाज अपने लिये प्रत्येक समय विशेषकर असाधारण परिस्थितियों में समस्त आवश्यक सहायता उद्‌बोधन, परामर्श आदि के साथ ही छात्र का मार्गदर्शन औपचारिक न होकर अनौपचारिक होता है और अधिक स्थायी होता है।

11. देश एवं समाज की गौरववृद्धिः–

आयोजनों के माध्यम से प्रशिक्षित ये ही जन कुशल हो अपने प्राप्त गुणों के अधिकाधिक विकास का प्रयत्न करते हुए, शिल्पकला आदि की प्रगति के साथ ही सभ्यता संस्कृति का विकास करते हैं और उच्च आदर्शों–परम्पराओं के पालन से अधिकाधिक राष्ट्रसेवा का इतिहास निर्माण कर उसके गौरव की वृद्धि करते हैं।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

1. पाठ्येत्तर क्रियाकलाप में शिक्षण के प्रयोजन का सविस्तार वर्णन कीजिए।

8.9 पाठ्यक्रम सहगामी क्रियाओं के कार्यक्रम:–

सहपाठ्यक्रमीय क्रियाएं अनेक प्रकार की हो सकती हैं। ये क्रियायें व्यक्ति की दृष्टि से, विद्यालय की दृष्टि से और राष्ट्र की दृष्टि से उपयोगी हो सकती हैं। कुछ क्रियायें छात्र के स्वास्थ्य, शारीरिक विकास, भावात्मक विकास और चरित्र उन्नयन की दृष्टि से आवश्यक हो सकती हैं तो कुछ अन्य क्रियायें उसके मानसिक विकास की दृष्टि से उपयोगी हो सकती हैं। नीचे कुछ क्रियाओं का विवरण दिया जा रहा है। ये क्रियायें केवल नमूने के लिये उदाहरण स्वरूप दी जा रही हैं जिनमें भाग लेकर छात्र अपने बहुमुखी विकास के पथ पर अग्रसर हो सकते हैं।

1. दैनिक प्रार्थना सभा के आयोजनों में सहायता करना।
2. वाचनालय की व्यवस्था कराना।
3. नैतिक गुणों पर व्याख्यान का आयोजन।
4. धार्मिक आयोजन।
5. क्रीड़ा आयोजन तथा शारीरिक प्रशिक्षण एवं प्रतियोगिताएँ।
6. सैनिक सेवा।
7. समाज सेवा, श्रमदानादि तथा अन्य सेवा कार्य जैसे– महामारियों आदि में स्वयं सेवा। बालचर, रेडक्रास और तत्सम्बन्धी कार्य। आपात कालीन सेवाएँ जैसे– अग्नि सेवाएँ, नदी, सरोवर, समुद्र, भूकम्प, सूखा, बाढ़ सम्बन्धी कार्य। गृह रक्षक दल तथा सेवा दल।

आरोग्य सेवायें जैसे– स्वच्छ पेयजल व्यवस्था, विद्यालय स्वच्छता सेवायें, जलपान, उपहार, गृह–अव्यवस्था, प्राथमिक सहायता।

8. छात्र कल्याण सम्बन्धी क्रियाएं–

क. निर्धन छात्र कोष।

ख. निर्धन छात्र पुस्तकालय।

ग. भोजन आवास सेवा।

घ. अध्ययन सहायता सेवा।

ङ. छात्रवृत्ति सहायता सेवा।

च. रोग में सेवा सुश्रषा।

9. सांस्कृतिक कार्यक्रमः–

क. ललित कला

ख. साज–सज्जा अलंकरण मण्डन।

ग. संगीत, नृत्य, वाद्य।

घ. विविध अभिनय, प्रहसन।

ङ. लोक कला तथा लोकगीत नृत्य वाद्यादि, सरल, शास्त्रीय, एकांकी अभिनय, मूक अभिनय।

च. अनेक विधि प्रदर्शन एवं झाँकियाँ।

छ. विशेष उत्सव आयोजन।

ज. प्रतियोगिताएँ।

झ. हास्य–व्यंग्य विनोद, चातुर्य।

10. साहित्यिक कार्यक्रमः–

क. विद्वत् प्रवचन।

ख. वाद–विवाद

ग. काव्यपाठ तथा अंताक्षरी– कवि दरबार या कवि सम्मेलन।

घ. रचना कौशल जैसे पद लालित्य का गद्य, हास्य व्यंग्य, विनोद चातुर्य, गल्प कौशल– कोई आप बीती।

ङ. निबन्ध एंव निबन्ध प्रतियोगितायें।

च. सामयिक प्रसंग चर्चा।

छ. अन्य प्रतियोगिताएं।

11. सामाजिक कार्यक्रम, प्रीतिभोज, सामाजिक उत्सव, क्लब, क्लब व्यवस्था उसका कार्यक्रम– अतिथि स्वागत–सत्कार।

12. अभिभावक– अध्यापक संघ।

13. छात्रावास सम्बन्धी सेवाएं।

14. अनुशासन नियमन तथा शील शिष्टाचार सुसंस्कार, मर्यादा, परम्परा सम्बन्धी कार्यकलाप।

15. बाल न्यायालय।

16. शैक्षणिक यात्राएँ भ्रमण तथा शिविर।

17 दृष्य–श्रव्य सामग्री साधन एवं प्रदर्शनी।

18. विद्यालय सूचनाएं, समाचार तथा समाचार पत्र।

19. विद्यालय पत्रिका।

- विद्यालय प्रकाशन।
- सहकारी समिति।
- बैंक चलाना।
- वाहन एवं यातायात व्यवस्था।
- सत्र प्रारम्भ तथा सत्रांत समारोह तथा उत्सव व्यवस्था आयोजन।
- अन्य विद्यालयों में प्रतिनिधि भेजना और उनकी पाठ्येतर क्रियाओं में भाग लेना।
- समस्त प्रकार के व्यायाम पूर्वी तथा पश्चिमी योगासन सहित।
- समस्त विविध क्रीड़ाएं जैसे धावन, उत्तोलन, प्रक्षेपण, कूद, भार आदि।
- समस्त प्रकार के खेल आन्तरिक और वाह्य प्रांगणों में।
- इनकी प्रतियोगिताएँ, शरीरिक प्रशिक्षणादि।
- संगीत– प्रत्येक प्रकार– शास्त्रीय, सरल, साधारण, मौखिक, वाणी से, वाद्यादि का, भारतीय, एशियाई, योरोपीय, लोकसंगीत, गीत व वाद्य, वैयक्तिक प्रदर्शन, सामूहिक प्रदर्शन।
- नृत्य– प्रत्येक प्रकार का।
- अभिनय– प्रत्येक प्रकार का– एकांकी अभिनय, मूक अभिनय, संवाद, नाटक, प्रहसन, नृत्य नाट्य।
- प्रदर्शन एवं झाँकियाँ।
- शिविर ज्वालाएं।

- वेश वैचित्र्य।
- हास्य व्यंग, विनोद।
- शील, मर्यादा, शिष्टाचार, अनुशासनादि के लिये छात्र प्रतियोगिताँ।
- नव विचारों के आदान प्रदानार्थ अन्य विद्यालयों की दर्शन यात्रा।
- झण्डे, चित्र, पदक आदि खरीद कर चन्दे में योग देना।
- चन्दे के लिये नाटक करना।
- छात्रवृत्ति की व्यवस्था करना।
- नगर में यदा–कदा आवश्यक जन–सभाओं में विद्यालय सम्बन्धी वक्तव्य देना।
- रेडियो पर कार्यक्रम देना।
- नागरिक संगठनों के लिये कार्यक्रम देना।
- विद्यालय विचार–विमर्श मंच स्थापित करना।
- स्थानीय इतिहास एवं प्रदर्शिका तैयार करना।
- विद्यालय संग्रहालय तथा पुरातत्व संग्रहालय स्थापित कर उसे समृद्ध करना।
- नगर तथा विद्यालय के लिये कला और संगीत के प्रति रूचिवर्द्धन के कार्यक्रम देना।
- पुस्तकालय में, वाचनालय में सेवा देना।
- विद्यालय की क्रियाओं के लिये प्राप्त धन का व्यय और उसके हिसाब का दायित्व लेना।
- विद्यालय के संगठनों का संचालन करना।
- खोई हुयी वस्तुओं के विभाग का संचालन करना।
- कैफेटेरिया चलाना व उसमें सहायता देना।
- बुलेटिन या समाचार पट्ट पर रोचक प्रदर्शनियाँ लगाना।
- नव–आगन्तुक छात्रों के लिये प्रथम दिवसीय कार्यक्रम आयोजन करना।
- विद्यालय परिषद् के अध्ययन मनन के लिये अन्य विद्यालयों की परिषदों से प्रतिवेदन मंगवाना।
- सहकारी भण्डार संचालन करना।
- ध्वजोत्तोलन तथा संवरण का दायित्व लेना।

- पाठ्येत्तर कार्यों में प्रशिक्षक का कार्य करना।
- विद्यालय चिकित्सालय में सहायता देना।
- आपातकालीन सेवाओं का सुसंचालन करना।
- विद्यालय प्रांगणों की स्वच्छता और उनकी सुरक्षा करना।
- विद्यालय समाचार पत्र, परिचायिका और वार्षिक प्रतिवेदन प्रकाशन करना।
- युवक केन्द्र चलाना।
- स्थानीय या अन्य क्षेत्रीय अभाव पीड़ितों के लिये अन्न–वस्त्र एकत्रित कर भेजना।
- खिलौने एकत्रित कर वितरण करना।
- विद्यालय में दूरदर्शन कार्यक्रमों की समीक्षा करना एवं रोचक कार्यक्रमों की चर्चा करना।

यदि उपर्युक्त सूची की समीक्षा की जाय तो प्रतीत होगा कि ये सब बातें कुछ मुख्य कार्यों के अंग मात्र हैं। इन्हें भी सुव्यस्थित नहीं कहा गया है। जब मुख्य–मुख्य कार्यों का प्रसंग आयेगा तो हम देखेंगे कि ये तो मार्गदर्शक बिन्दु मात्र है। विद्यालय उसकी स्थिति, वातावरण, परिस्थिति, प्रकार लघु विशाल होना, साधन सम्पन्नता, कार्यकर्ता, पाठ्यक्रम पाठ्यविषय सेवा सुविधाएँ आदि–आदि के अनुसार ये सब बातें न्यूनाधिक होती ही रहेंगी।

उपर्युक्त सूची को अन्तिम नहीं समझना चाहिए। अनेक अन्य कार्यक्रम भविष्य में आते रहेंगे। आजकल कम्प्यूटर का युग है। इस युग में इन्टरनेट से सम्बन्धित अनेक कार्यक्रमों की योजना के अवसर मिलेंगे। तब उन कार्यक्रमों में भाग लेना छात्र के विकास के लिये आवश्यक होगा। इसी प्रकार दूरदर्शन से सम्बद्ध अनेक कार्यक्रमों का आयोजन किया जा सकता है।

कार्यक्रमों की भिन्नता एवं विविधता से रोचकता बढ़ेगी अतः उसमें नीरसता नहीं आनी चाहिए। कार्यक्रमों के आयोजन में छात्र तो भाग लेगें ही, शिक्षकों की भागीदारी भी आवश्यक है। शिक्षकों में उपयुक्त मार्गदर्शन से ही तो छात्र इनक कार्यक्रमों में दक्षतापूर्वक भाग ले सकेंगे। छात्रों का उपयुक्त अवसर देने के लिये शिक्षकों एवं विद्यालय के अन्य कार्मचारियों का सहयोग अत्यन्त आवश्यक है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

1. निम्नलिखित प्रश्नों का विस्तृत उत्तर लिखिए।

क. पाठ्येत्तर सहगामी क्रियाओं का सविस्तार वर्णन कीजिए।

.....

ख. इनके विभिन्न भागों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

.....

8.10 सारांशः–

सहपाठ्यक्रमीय क्रियाकलाप पाठ्यक्रम निर्माण करने की उन विधियों में से एक ऐसी विधि है जिसकी सहायता से पाठ्यक्रम को विद्यार्थियों के अनुरूप निर्माण किया जा सकता है। इसमें विद्यार्थियों के भविष्य को ध्यान में रखते हुये ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, पाठ्येत्तर क्रियाओं की योजना आदि पक्षों का विशेष ध्यान दिया गया है।

इस प्रकार से पाठ्यक्रम का निर्धारण करने में शिक्षाविदों ने सभी प्रकार की बातों का ध्यान रखते हुये विद्यार्थियों के अनुरूप पाठ्यक्रम निर्माण करने पर बल दिया है तथा साथ में उन्होंने इस बात का भी जिक्र किया है कि एक ऐसा पाठ्यक्रम का निर्माण किया जाना चाहिए जिससे विद्यार्थियों को आने वाले समय में भरपूर लाभ मिल सके और इसके अन्दर पाठ्यक्रम निर्माण सम्बन्धी अन्य शिक्षण क्रियाकलाप पर भी विशेष ध्यान दिया गया है जो विद्यार्थियों को उनकी अधिक से अधिक रूचि के अनुसार पाठ्यक्रम का निर्माण कर सके। सहपाठ्यक्रमीय क्रियाकलाप के अन्तर्गत शिक्षाविदों ने शिक्षण सम्बन्धी कार्यक्रमों का भी वर्णन किया है।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि इस प्रकार के सहपाठ्यक्रमीय क्रिया कलाप के माध्यम से विद्यार्थियों के बेहतर भविष्य का निर्माण किया जा सकता है। क्योंकि जब एक सही पाठ्यक्रम का सही समय पर निर्माण होगा तो विद्यार्थियों को आने वाले समय में उनको नवीन पाठ्यक्रम के अनुसार पढ़ने में आसानी होगी जिससे वे इसके माध्यम से अपने सुन्दर भविष्य का निर्माण कर सकेंगे।

8.11 अभ्यास प्रश्न

1. सहपाठ्यक्रमीय क्रिया कलाप के स्वरूप की विवेचना कीजिए।
2. सहपाठ्यक्रमीय क्रियाओं की योजना के उद्देश्य लिखिये।
3. सहपाठ्यक्रमीय क्रियाकलाप से आप क्या समझते हैं ?
4. सहपाठ्यक्रमीय क्रियाओं की योजना के तीन प्रयोजन लिखिए।
5. निम्नलिखित में से कौन सा नाम सहपाठ्यक्रमीय क्रियाकलाप का नही है ?

अ. पाठ्यक्रमेतर क्रियाए ब. शिक्षणीय क्रियाएं

स. कक्षेतर क्रियाये द. विद्यालय क्रियाएं। **उत्तर (ब)**

6. विद्यालयों की समाज के प्रति जिम्मेदारी बढ़ाने के लिये आवश्यक है–

अ. शिक्षकों की संख्या बढ़ाना

ब. छात्रों का मनोबल बढ़ाना।

स. शिक्षक–अभिभावक सम्बन्ध बढ़ाना।

द. बच्चों में आपसी सम्बन्ध मधुर बनाना। **उत्तर– (स)**

7. विद्यालयों में वाद–विवाद प्रतियोगिता का आयोजन करना चाहिए जिससे बच्चे–

अ. एक–दूसरे को परास्त कर सकें।

ब. शिक्षक द्वारा दिये जाने वाले पुरस्कार प्राप्त कर सकें।

स. अपने अभिभावकों को खुश रख सकें।

द. तर्कपूर्ण ढंग से सोचने में प्रवृत्त हो सकें। **उत्तर– (द)**

8.12 कुछ उपयोगी पुस्तकें:–

- शिक्षा के दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय सिद्धान्त – एन0आर0 सक्सेना।
- शिक्षा सिद्धान्त – एन0आर0 सक्सेना
- उदयीमान भारतीय समाज में शिक्षा – डी0एल0 शर्मा
- डा0 रामशकल पाण्डेय – शिक्षा की दार्शनिक एवं समाज शास्त्रीय पृष्ठभूमि।
- शिक्षा के मूल सिद्धान्त – डा0 राम शकल पाण्डेय
- शिक्षा के आधार – डा0 सरयू प्रसाद चौबे एवं डा0 अखिलेश चौबे
- शिक्षा के सिद्धान्त एवं शैक्षिक नियोजन – डा0 पाल, गुप्ता एवं श्रीवास्तव
- शिक्षा के दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय सिद्धान्त – रमन बिहारी लाल

उत्तर प्रदेश राजर्षि टण्डन मुक्त
विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

खण्ड

3

जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में शिक्षा के मूल्य

इकाई-9 5
जनतन्त्र और शिक्षा

इकाई-10 27
समुदाय और शिक्षा

इकाई-11 44
समाजिक परिवर्तन और गतिशीलता

इकाई-12 65
समाजवाद और शिक्षा

UGED-03 - शिक्षा के सिद्धान्त

खण्ड-1 शिक्षा के सिद्धान्त

इकाई-1 शिक्षा की अवधारणा

इकाई-2 शिक्षा के सामाजिक एवं वैयक्तिक उद्देश्य

इकाई-3 शिक्षा के अन्य उद्देश्य

इकाई-4 शिक्षा के अभिकरण या साधन

खण्ड-2 पाठ्यक्रम के अन्तर्गत विभिन्न सोपान

इकाई-5 पाठ्यक्रम का अर्थ, प्रकार एवं सिद्धान्त

इकाई-6 पाठ्यक्रम विकास की प्रक्रिया

इकाई-7 पाठ्यक्रम - विभिन्न विषयों का महत्व

इकाई-8 सहपाठ्यक्रमीय क्रियाकलाप

खण्ड-3 जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में शिक्षा के मूल्य

इकाई-9 जनतन्त्र और शिक्षा

इकाई-10 समुदाय और शिक्षा

इकाई-11 समाजिक परिवर्तन और गतिशीलता

इकाई-12 समाजवाद और शिक्षा

खण्ड-4 वैश्वीकरण और शिक्षा

इकाई-13 राज्य और शिक्षा

इकाई-14 राष्ट्रीयता के लिए शिक्षा

इकाई-15 अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध के लिए शिक्षा

इकाई-16 भावात्मक एकता के लिए शिक्षा

खण्ड-3 परिचय- जीवन के विभिन्न क्षेत्र में शिक्षा के मूल्य

'जनतन्त्र' एक प्रकार की सामाजिक व्यवस्था है। जनतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति महत्व होता है तथा प्रत्येक व्यक्ति को अपे व्यक्तित्व के विकास के लिए समुचित अवसर प्राप्त होते हैं। व्यक्ति की अपनी योग्यता के अनुसार अपने व्यक्तित्व का चरम विकास करने का पूर्ण अधिकार है। जनतंत्र में सभी व्यक्तियों को अपने विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता होती है।

इकाई-9 में आप जनतंत्र के सम्प्रत्य, उसके उद्देश्यों, उसके स्वरूप एवं आदर्शों के विषय में अध्ययन करेंगे। इसमें शिक्षा जनतंत्र के पारस्परिक सम्बन्धों की व्याख्या की गई है। अतः छात्र उपरोक्त सम्प्रत्यय को समझ सकेंगे।

इकाई-10 आप समुदाय के सम्प्रत्यय, उसकी विशेषताओं, समुदाय और शिक्षा के मध्य सम्बन्ध तथा बालक पर समुदाय के शैक्षिक प्रभाव भारत में सामुदायिक विकास की चर्चा की गयी। अतः छात्र सम्प्रत्यय को समझ सकेंगे।

इकाई-11 में सामाजिक परिवर्तन और गतिशीलता, सा0 परिवर्तन की विशेषताएं, सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्त, सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया, सामाजिक परिवर्तन और शिक्षा की भूमिका, सामाजिक गतिशीलता के प्रकार, सामाजिक गतिशीलता के प्रभावित करने वाले कारक आदि की चर्चा की गई। अतः छात्र उपरोक्त सम्प्रत्यय को समझ सकेंगे।

इकाई - 12 समाजवाद का अभिप्राय, समाजवाद की परिभाषाएं, समाजवाद के तत्व, समाजवाद के मूल सिद्धान्त, समाजवाद और शिक्षा के मध्य सम्बन्धों, समाजवादी शिक्षा के उद्देश्यों, पाठ्यक्रम विधियों आदि की चर्चा की गई है। अतः उपरोक्त सम्प्रत्यय की समझ सकेंगे।

इकाई– 9 जनतन्त्र और शिक्षा

इकाई की रूपरेखा

9.1 प्रस्तावना

9.2 उद्देश्य

9.3 जनतंत्र का अर्थ

9.3.1 राजनैतिक

9.3.2 आर्थिक जनतन्त्र

9.3.3 सामाजिक जनतन्त्र

9.3.4 शैक्षिक जनतन्त्र

9.3.5 जनतन्त्र का वास्तविक अर्थ

9.4 जनतंत्र का प्रमुख आदर्श

9.5 जनतंत्र में शिक्षा का उद्देश्य

9.5.1 अनिवार्य और मौलिक उद्देश्य

9.5.2 साधारण उद्देश्य

9.6 जनतंत्र और शिक्षा का स्वरूप

9.7 जनतंत्र और शिक्षा

9.8 जनतंत्र में शिक्षा का पाठ्यक्रम

9.9 जनतंत्र और शिक्षा-विधि

9.10 जनतंत्र और शिक्षक

9.11 जनतंत्र और विद्यालय

9.12 जनतंत्र और अनुशासन

9.13 जनतंत्र की सफलता के उपाय

9.14 सारांश

9.15 अभ्यास प्रश्न

9.16 बोध प्रश्नों के उत्तर

9.17 कुछ उपयोगी पुस्तकें

9.1 प्रस्तावना:–

'जनतन्त्र' एक प्रकार की सामाजिक व्यवस्था है। जनतंत्र में प्रत्येक व्यक्ति महत्वपूर्ण होता है तथा प्रत्येक व्यक्ति को अपने व्यक्तित्व के विकास के लिए समुचित अवसर प्राप्त होते हैं। व्यक्ति को अपनी योग्यता के अनुसार अपने व्यक्तित्व का चरम विकास करने का पूर्ण अधिकार है। जनतंत्र में सभी व्यक्तियों को अपने विचार प्रकट करने की स्वतंत्रता होती है।

इस इकाई में आप जनतंत्र के सम्प्रत्यय, उसके उद्देश्यों, उसके स्वरूप एवं आदर्शों के विषय में अध्ययन करेंगे। इसमें जनतंत्र और शिक्षा के पारस्परिक सम्बन्धों की व्याख्या की गई है। जनतंत्र में शिक्षा का पाठ्यक्रम कैसा हो? कौन–कौन सी शिक्षण विधियाँ जनतांत्रिक व्यवस्था में उपयुक्त होगीं? जनतंत्र में शिक्षक की भूमिका कैसी होनी चाहिए? तथा अनुशासन और विद्यालय का वातावरण कैसा हो? आदि प्रश्न ऐसे हैं, जिनके सम्बन्ध में इस इकाई में चर्चा की गई। साथ ही साथ जनतंत्र की सफलता के लिए प्रमुख उपायों की भी चर्चा की गई है। जिनके पालन से जनतंत्र और शिक्षा के विकास में प्रगति हो सकेगी।

9.2 उद्देश्य:–

इस इकाई में आप जनतंत्र और शिक्षा के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण तथ्यों को जानने के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगे कि आप:–

- जनतंत्र के सम्प्रत्यय को जान सकेगें।
- जनतंत्र में शिक्षा के उद्देश्यों की व्याख्या कर सकेंगे।
- जनतंत्र में शिक्षक की भूमिका को समझ सकेगें।
- जनतंत्र और शिक्षा के मध्य सम्बन्धों की व्याख्या कर सकेंगे।
- जनतंत्र की सफलता के उपायों की समीक्षा कर सकेंगे।

9.3 जनतंत्र का अर्थ:–

जनतंत्र एक ऐसा शब्द है जिसके कई अर्थ हैं। इसकी व्याख्या कई रूपों में की गई है। जनतंत्र क्या है वह जानने के लिए यह आवश्यक भी है कि हम यह समझ ले कि जनतंत्र की व्याख्या कितने रूपों में की गई है। हम यहाँ जनतंत्र के चार प्रमुख रूपों में इसके अर्थ को स्पष्ट करेंगे, ये चारों रूप

निम्नलिखित प्रकार से हैं–

9.3.1 राजनैतिक जनतंत्रः–

राजनैतिक जनतंत्र सरकार का वह रूप है जिसमें प्रशासकीय वर्ग सम्पूर्ण राष्ट्र का बहुत बड़ा भाग होता है। जनता प्रजातंत्र रूप से मतदान करके शासक वर्ग का चुनाव करती है। अर्थात सरकार का निर्माण जनता अपने स्वतंत्र मत के द्वारा करती है। राजनैतिक स्वतंत्रता का अर्थ स्पष्ट करते हुए 'अब्राहम लिंकन' ने लिखा है कि "जनतंत्र जनता के उस शासन को कहते हैं जो जनता के द्वारा जनता के लिए बनाया जाता है।"

(Democracy is the government for the people of the people and by the People)

'डायसी' ने राजनैतिक राजतंत्र को अपने शब्दों में स्पष्ट करते हुए लिखा है कि, – "राजनैतिक जनतंत्र सरकार का वह रूप है जिसमें प्रशासकीय वर्ग, सम्पूर्ण, राष्ट्र का एक बहुत बड़ा भाग होता है।"

9.3.2 आर्थिक जनतंत्रः–

आर्थिक जनतंत्र का अर्थ है कि आर्थिक मामलों में सबको एक समान समझना। आर्थिक जनतंत्र में सबको समान रूप से कार्य करने और समान रूप से धन कमाने और व्यय करने का अधिकार है। अन्य शब्दों में हम कह सकते हैं कि राज्यतंत्र में सबको अपनी योग्यता के अनुसार धन कमाने का अवसर दिया जाना ही आर्थिक जनतंत्र का मूलमंत्र है। यह प्रतियोगिता पर आधारित न होकर सहकारिता को अपना आधार मानता है। इसको परिभाषित करते हुए एक विद्वान ने लिखा है कि–

"आर्थिक जनतंत्र का तात्पर्य आर्थिक शक्ति का सब लोगों के हाथ में होना है, न कि कुछ विशेष पूँजीपतियों के हाथ में।"

आर्थिक जनतंत्र को स्पष्ट करते हुए हॉरेस एम0 कालेन ने कहा है– "एक शब्द में, स्वतंत्रता तथा अकाल एक साथ नहीं रह सकते हैं। स्वतंत्रता वहीं से प्रारम्भ होती है, जहाँ आर्थिक आवश्यकता (कमी) समाप्त होती है।"

(In a world, freedom and famine cannot live together. Freedom begins where economic necessity ends.- Horace M.Kallen)

कालेन महोदय का उपरोक्त कथन काफी हद तक ठीक भी है।

वास्तव में स्वतंत्रता का प्रयोग व्यक्ति क्या करेगा यदि वह भूखा है? अस्तु आर्थिक रूप में स्वतंत्रता तभी होगी, जबकि धन के वितरण में सभी को समान हिस्सा मिलेगा। यहीं आर्थिक जनतन्त्र की भावना आती है।

9.3.3 सामाजिक जनतंत्रः–

'सामाजिक जनतंत्र का तात्पर्य धर्म, जन या सम्पत्ति पर आधारित सभी भेदों का अभाव है।' इसमें समाज के सभी लोगों को सामाजिक दृष्टि से समान समझना। अर्थात कोई भी अपने जातीयता के आधार पर बड़ा अथवा छोटा नहीं समझना चाहिए। समाज में किसी भी क्षेत्र में जाति, धर्म, लिंग, जन्म, वर्ग आदि का बिना ध्यान दिये अपनी क्षमताओं को विकसित करने और अपनी बौद्धिक योग्यता के आधार पर पद प्राप्त करने का अधिकार मिलना चाहिए। समाज में इस प्रकार के दृष्टिकोण की व्यवस्था को सामाजिक जनतंत्र कहा जाता है।

आई0 एम0 कैन्डेल के अनुसार, " एक आदर्श के रूप में जनतंत्र जीवन की एक विधि है, जो व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं उसके उत्तरदायित्व पर आधारित है।"

(A society which makes provision for participation of all its members on equal terms and which secures flexible readjustment of its institutions through interaction of the different forms of associated life is in so far democratic.)

9.3.4 शैक्षिक जनतंत्रः–

शैक्षिक जनतंत्र उस व्यवस्था को कहते हैं जिसमें जाति, भेद, लिंग, वर्ग आदि बातों पर ध्यान देते हुए समान रूप से शिक्षा प्राप्त करने का अवसर प्रदान किया जाता है। वास्तव में शिक्षा प्राप्त करना व्यक्ति का जन्म सिद्ध अधिकार है।

ई0जे0 पाबर ने लिखा है कि, "शिक्षा में जनतंत्र का अर्थ कभी–कभी व्यावहारिक होता है कि सभी लोगों के सभी बालकों को शैक्षिक अवसर मिले और वे उन सामाजिक भेदभाव आदि जो भी शैक्षिक प्रगति में बाधक तत्व हों के बिना शिक्षालयों में पढ़ाने के लिए उपस्थित हों।

शैक्षिक जनतंत्र पर प्रकाश डालते हुए 'बोड' महोदय ने लिखा है,

"एक ओर जनतांत्रिक आन्दोलन का अर्थ हुआ व्यक्ति की रूचियों और क्षमताओं के विकास द्वारा उसकी मुक्ति। शिक्षा के क्षेत्र में इसका अर्थ हुआ व्यक्तिगत विभिन्नताओं, व्यक्तिगत आत्म प्रयत्न, स्वतंत्रता और आत्म प्रकाशन पर बल दिया। लेकिन दूसरी ओर जनतंत्र का अर्थ हुआ एक अधिक व्यापक सामाजिक चेतना, सामान्य उत्साह के लिए उत्तरदायित्व की एक उच्च भावना। जनतंत्र का यह पहलू सामाजिक मूल्यों पर शैक्षिक बल में प्रतिबिम्बित होता है।"

9.3.5 जनतंत्र का वास्तविक अर्थः–

जनतन्त्र का वास्तविक अर्थ एक ऐसी व्यवस्था अथवा जीवन के विकास से समझना चाहिए जो सभी प्रकार के विकास की स्वतंत्रता तथा सम्पूर्ण जीवन बिताने के लिए एक समान सबको सुविधा प्रदान करती है।

ब्रायड ने जनतंत्र के वास्तविक अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है कि "जनतंत्र जीवन यापन की एक रीति या तरीका है और जीवन–यापन की रीति का तात्पर्य है कि जीवन के प्रत्येक प्रमुख क्षेत्र को प्रभावित करना।"

9.4 जनतंत्र के प्रमुख आदर्शः–

जनतंत्रात्मक व्यवस्था में कुछ आदर्श अपनाए जाते हैं। इन आदर्शों का वर्णन हम इस प्रकार से कर सकते हैंः–

- मानव व्यक्तित्व का आदर करना और उसे भौतिक पदार्थों से अधिक कीमती समझना क्योंकि मानव ही जनतंत्र का निर्माता और आधार है।
- प्रत्येक व्यक्ति को स्वतंत्रता समानता और सामाजिक न्याय देना, जिससे वह अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास कर सके।
- सभी व्यक्तियों को स्वतंत्र वातावरण में स्वतंत्र ढंग से रहने एवं शिक्षा आदि के लिए सभी सुविधाएं देना। इसमें किसी प्रकार का भेदभाव न करना।
- जनतंत्र का विश्वास व्यक्ति की क्षमताओं, शक्ति, बुद्धि और योग्यता में है। इस विचार से सभी व्यक्तियों को एक दृष्टि से देखा जाता है।
- जनतंत्र में समान अधिकार और आपेक्षिक उत्तरदायित्व भी होता है। सभी चीजों पर सभी लोगों को अधिकार है तथा उसकी सुरक्षा का उत्तरदायित्व है।

- आर्थिक व सामाजिक शोषण के लिए कोई भी स्थान जनतंत्र में नहीं होता है। इसलिए अल्पसंख्यक वर्ग की सुरक्षा रहती है तथा उसे भी उनके अनुसार अधिकार मिलते हैं।
- जनतंत्र से धर्म को दूर रखा जाता है, जिससे साम्प्रदायिक संकीर्णता और कट्टरता तथा मत विरोध न हो। इससे सामाजिक एकता छिन्न–भिन्न नहीं होती है और जीवन में कटुता नहीं आती है।
- जनतंत्र हमें आत्म–शासन सिखाता है, ऐसा विचार एम0जीव फोलेट का है। तभी तो लोगों में एक सामाजिक हित की चेतना रहती है।
- जनतंत्र भ्रातृत्व के कारण शांतिप्रिय जीवन को प्रोत्साहन देता है, युद्धों से दूर रहता है, जिससे आपस का संघर्ष दूर रहे और समाज की प्रगति में किसी भी प्रकार का अवरोध न हो।
- जनतंत्र विशाल दृष्टिकोण को प्रोत्साहन देता है। वाद–विवाद की प्रविधि में विरोधी विचार का स्वागत किया जाता है, उस पर विचार विनिमय में सहिष्णुता एवं सहयोग की भावना रहती है।
- जनतंत्र में स्वतंत्रता का अर्थ स्वच्छन्दता नहीं होता, वल्कि उसका अर्थ आत्म नियंत्रण होता है, जिसमें दूसरों का पूरा ख्याल रखा जाता है।
- जनतंत्र और जीवन दोनों सम्बन्धित हैं। जनतंत्र में जीवन में बुद्धि या मस्तिष्क को अपना कार्य करने की स्वतंत्रता होती है।

9.5 जनतंत्र में शिक्षा का उद्देश्यः–

जनतंत्रीय शिक्षा के उद्देश्यों पर प्रकाश डालते हुए प्रसिद्ध अमेरिकी शिक्षाशास्त्री 'जान डीवी' ने लिखा है, "जनतंत्र केवल सरकार का रूप न होकर उससे भी अधिक कुछ है। यह मुख्यतः सहयोगी जीवन एवं सम्मिलित रूप में दिये गये अनुभव की वृद्धि है।"

(Democracy is more than a form of government, it is primarily a mode of associated living of conjoint communicated experience.)

अब प्रश्न यह है कि बालकों में सहयोगी जीवन व्यतीत करने के लिए किस प्रकार की शिक्षा दी जानी चाहिए। अतएव छात्रों को इस प्रकार की शिक्षा दी जाए कि उनमें सह जीवन तथा सह–अस्तित्व की भावना का

विकास हो सके। इस ढंग की शिक्षा जनतांत्रिक शिक्षा ही हो सकती है। जनतांत्रिक शिक्षा को मुख्यतया दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है–

i. अनिवार्य या मौलिक उद्देश्य

ii. सामान्य उद्देश्य

9.5.1 अनिवार्य या मौलिक उद्देश्यः–

प्रजातांत्रिक या जनतांत्रिक शिक्षा के लिए अनिवार्य या मौलिक उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

- **सामाजिक दृष्टिकोण निर्मित करनाः–** जनतंत्रात्मक शिक्षा का प्रथम उद्देश्य बालकों में सामाजिक दृष्टिकोण का निर्माण करना है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। समाज में वह पैदा हुआ है, समाज में उसका पालन–पोषण और विकास हुआ है। अतएव शिक्षा के द्वारा बालकों में सामाजिक रूचियों की जानकारी करानी चाहिए, समाज को समझने की शक्ति प्रदान करनी चाहिए तथा सहयोग के साथ समाज में रहने के लिए उत्साहित करना चाहिए। बालकों ऐसी शिक्षा का विकास करना चाहिए कि वे समाज की समस्याओं को समझ सकें तथा इन समस्याओं के निराकरण के लिए सोंच सकें। उक्त सभी बातों का विकास करना शिक्षा का एक आवश्यक अंग होना चाहिए तभी समाज की नई पीढ़ी में सामाजिक दृष्टिकोण का विकास उद्देश्य होगा।
- **छात्रों में अच्छी आदतों का निर्माण करनाः–** मनुष्य के सभी क्रियाकलाप आदतों के परिणाम होते हैं। इन आदतों का निर्माण प्रारम्भ से ही किया जा सकता है क्योंकि बालक को उसकी युवावस्था प्राप्त हो जाने के पश्चात किसी भी आदत का निर्माण करना कठिन होगा। आदत के खराब हो जाने पर छात्र आलसी, निम्न स्तर के छोटे विचारों के और गरीब हो जाते हैं। अतएव शिक्षा के द्वारा उनमें अच्छी–अच्छी आदतों का निर्माण किया जाना चाहिए जिससे वे स्वस्थ मस्तिष्क तथा बुद्धि वाले बन सकें। उनमें स्फूर्ति का विकास हो तथा वे आदर्श कार्यों की ओर झुकें। ऐसा करने से ही वे वास्तविक जन कल्याण कर सकते हैं और समाज के योग्य तथा सक्रिय सदस्य बन सकते हैं।
- **व्यक्ति को आर्थिक रूप से सम्पन्न बनानाः–** मनुष्य कोई न कोई व्यवसाय करता है, कोई न कोई कार्य सीखता है। इसी को अपनी

जीविका का माध्यम बनाता है। इसलिए जनतंत्र में शिक्षा का एक यह भी उद्देश्य होना चाहिए कि व्यक्ति को आर्थिक रूप से सम्पन्न बनाने के लिए व्यवसायिक कुशलता लाए। जो व्यक्ति आर्थिक रूप से सम्पन्न होगा वह अन्याय या चोरी नहीं कर सकता। अन्यथा कोई जिम्मेदारी का स्थान पाने पर वह अपनी गठरी भरने का प्रयास करेगा। इसके बाद अन्यों के बारे में सोचेगा। अतएव यदि जनतंत्र में अन्याय और लूट–खसोट को कम करना हो तो शिक्षा के द्वारा बालकों में ऐसी क्षमता का विकास करना होगा कि वे आर्थिक रूप से सम्पन्न हो सकें

- **जन सामान्य को कुशलता की प्राप्ति कराना:–** प्रजातंत्र तभी सफल हो सकता है जबकि देश में कुशल लोग होंगे। कुशलता का अर्थ व्यक्त करते हुए **'इलियट'** ने लिखा है– "कुशलता से मेरा अभिप्राय स्वस्थ एवं सक्रिय जीवन में कार्य तथा तथा सेवा की सार्थक शक्ति। इस शक्ति के प्रशिक्षण एवं विकास के लिए प्रत्येक व्यक्ति को शिक्षा दी जानी चाहिए।"
- **व्यक्ति में अच्छी रूचियों का विकास करना:–** जनतंत्र में अच्छी रूचियों के लोगों की जरूरत होती है। उनकी रूचियाँ जितनी ही विकसित होगी उनके कार्य उतने ही अच्छे तथा स्वस्थ होंगे। एतएव शिक्षा द्वारा व्यक्तियों में अच्छी रूचियों का विकास किया जाना चाहिए जिससे कि व्यक्ति अच्छे कार्य द्वारा अपने जीवन को सुखी बना सके।
- **उच्च उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति और समाज का स्वस्थ जीवन:–** जनतंत्र जिस किसी भी देश में है उस देश में हर किसी नागरिक में ज्ञान, रूचि और आदर्शों का विकास किया जाना चाहिए, जिससे कि सभी लोग अपने उचित स्थान प्राप्त कर सकें तथा इस स्थान का प्रयोग वे अपने ढंग से कर सकें। यह कार्य समाज को उच्च आदर्शों की ओर तो ले जाने वाले होने चाहिए।
- **छात्रों को नागरिकता का प्रशिक्षण देना:–** जनतंत्र की सफलता आदर्श नागरिकों पर निर्भर है। अतएव शिक्षा के द्वारा छात्रों को आदर्श नागरिकता की शिक्षा दी जानी चाहिए। इस शिक्षा के द्वारा छात्रों को राज्य तथा समाज को प्रति अधिकारों और कर्तव्यों का ज्ञान कराया जाय।

- **समाज के साथ सामंजस्य कर सकने वाले व्यक्ति का निर्माण करनाः–** जनतंत्र में शिक्षा यह भी उद्देश्य है कि नागरिकों को समाज के साथ सामन्जस्य करने की शिक्षा प्रदान की जाए। इससे समाज में रहने वाले लोगों को संसार की कटुता का ज्ञान होगा तथा उनमें निष्पक्षता, उदारता और कुशलता आयेगी। शिक्षा के इस उद्देश्य पर प्रकाश डालते हुए 'हुमायूँ कबीर ने लिखा है, " शिक्षा को मानव प्रकृति के समस्त पक्षों के लिए सामग्री जुटानी चाहिए और मानवीय विज्ञानों तथा प्रौद्योगिकी को समान महत्व देना चाहिए जिससे कि मनुष्य को सभी कार्यों को निष्पक्षता के साथ करने के योग्य बना सके।"
- **देश भक्ति का विकास करनाः–** देश की एकता, अखण्डता व चहुमुखी उन्नति के लिए आवश्यक है कि बालक व व्यक्तियों में देश भक्ति की सच्ची भावना का विकास किया जाए। यह देश मेरा है, यह मेरी मातृभूमि मेरी है, मैं इस भूमि का सबूत हूँ, इसके लिए मुझे सब कुछ करना है। ऐसी भावनाएं प्रत्येक व्यक्ति में विकसित करनी है। इसमें शिक्षा का योगदान अमूल्य है। शिक्षा द्वारा बालकों में देश–प्रेम व देश–भक्ति की भावना का विकास करना चाहिए।
- **नेतृत्व गुणों का विकास करनाः–** प्रजातंत्र की सफलता सफल नेतृत्व पर निर्भर करती है। यदि प्रजातांत्रिक राष्ट्र को कुशल नेतृत्व मिल जाए तो देश अबोध रूप से चहुँमुखी उन्नति की ओर अग्रसर हो जाएगा। अन्यथा देश वांछित उन्नति नहीं कर सकेगा। नेतृत्व का अर्थ केवल राजनीति तक ही सीमित नहीं है। सभी क्षेत्रों में कुशल नेतृत्व की आवश्यकता होती है। नेतृत्व के लिए आवश्यक गुणों का विकास शिक्षा द्वारा किया जा सकता है। सफल नेता में निर्णय–शक्ति, सहनशीलता, निष्पक्ष न्याय, बुद्धिमत्ता आदि गुणों का होना आवश्यक है। शिक्षा के द्वारा इनका विकास सहज ही किया जा सकता है।

9.5.2 साधारण उद्देश्यः–

जनतांत्रिक शिक्षा के कुछ साधारण उद्देश्य होते हैं। जिनका वर्णन हम निम्न प्रकार से कर सकते हैं–

- विद्यालय के बालकों में ऐसी भावना पैदा करना कि वे सहयोग का जीवन व्यतीत करें।
- उनको सहयोग के जीवन से होने वाले लाभों से परिचित कराना।

- छात्रों में शिक्षा के द्वारा सहकारिता के गुणों का विकास करना।
- छात्रों को व्यवसाय की शिक्षा देना।
- छात्रों को इस योग्य बनाना कि वे कोई न कोई व्यवसाय करके अपनी जीविका का उपार्जन कर सकें।
- छात्रों का उनके व्यवसाय में कुशलता प्रदान करना।
- मनोरंजन के साधनों से छात्रों को परिचित कराना।
- छात्रों में शिक्षा के द्वारा अवकाश के समय का सदुपयोग करने का ढंग बताना।
- छात्रों को अवकाश के समय का सदुपयोग के योग्य बनाना।
- आत्म प्रगति के लिए छात्रों को अवसर देना।
- अपनी शक्तियों का जीवन में प्रयोग करने का ढंग बताना।
- शारीरिक शक्तियों के विकास करने का अवसर देना।
- मानसिक शक्तियों के विकास करने का अवसर देना।
- जीवन में चरित्र तथा अनुशासन के महत्व को बताना।
- जन समूह का नेतृत्व कर सकने योग्य नागरिक बनाना।
- छात्रों को इस योग्य बनाना कि वे जन समूह तथा शिक्षा का नेतृत्व कर सकें।

अतएव जनतंत्र में शिक्षा के उपरोक्त दोनों प्रकार के उद्देश्य, अनिवार्य और साधारण उद्देश्यों को पूर्ण करने का प्रयास किया जाना चाहिए। जो देश शिक्षा की व्यवस्था करेंगे वहाँ निःसन्देह जनतंत्र सफल होगा।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।
(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

प्रश्न 1:– जनतंत्र से आप क्या समझते हैं?

.....

प्रश्न 2:– जनतंत्र का प्रयोग किन–किन रूपों में होता है?

.....

प्रश्न 3:– जनतंत्र में शिक्षा के किन्हीं दो अनिवार्य उद्देश्यों को बताइए?

.....

9.6 जनतंत्र और शिक्षा का स्वरूपः–

जैसा कि स्पष्ट है कि शिक्षा जनतंत्र का मुख्य आधार है। ऐसी दशा में हमें विस्तार पूर्वक शिक्षा तथा जनतंत्र के मध्य पाये जाने वाले सम्बन्ध के विषय में जानना चाहिए। शिक्षा का स्थान जनतंत्र में बहुत ही महत्वपूर्ण है क्यों कि जनतंत्र की सफलता शिक्षा पर निर्भर करती है। यदि जनतंत्र में व्यक्ति शिक्षित नहीं होते, तो अशिक्षितों का एक वर्ग बन जाता है। और वही सत्तारूढ़ हो जाता है और अपने अधिकारों का दूसरे वर्ग पर प्रयोग करता है। फलस्वरूप अशिक्षित वर्ग उस सत्ताधारी वर्ग की इच्छाओं के आधीन हो जाता है, जिससे जनतंत्र का लक्ष्य ही नष्ट हो जाता है और असफलता भी मिलती है।

शिक्षा एक आवश्यक साधनः– अशिक्षित जनतंत्र सबसे खराब प्रकार का शासन है, जैसा कि हमारे देश में दिखाई पड़ रहा है। ऐसी दशा में नागरिक अपने कर्तव्य और अधिकार को उचित ढंग से उपयोग में नहीं लाता है। जनतंत्र के लिए ऐसे सुयोग्य नागरिकों की जरूरत है, जो स्वतंत्र विचार एवं स्वतंत्र क्रिया वाले हों। शिक्षा व्यक्ति को इस योग्य बनाती है कि वह समाज का उपयोगी सदस्य बनता है। अतः जनतंत्र की जिम्मेदारी को पूरा करने के लिए शिक्षा की अत्यंत आवश्यकता है। इसलिए मुदालियर आयोग की रिपोर्ट में कहा गया है कि वह शिक्षा, शिक्षा कहलाने योग्य नहीं हैं, जो जीवन में उपयोगी न हो और जनतंत्र के लिए आवश्यक गुण न उत्पन्न कर सके।

शिक्षा सामाजीकरण की प्रक्रियाः– शिक्षा इस प्रकार जनतंत्र में सामाजीकरण की प्रक्रिया, समाज के पुनः निर्माण की प्रक्रिया होती है। यह विचार डिवी का है, लेकिन इसे अब सभी लोग स्वीकार करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि जनतंत्र में शिक्षा वह साधन है, जिससे व्यक्ति समाज के जीवन में सक्रिय भाग लेने में समर्थ होता है। समाज का निर्माण व्यक्ति करता है और व्यक्ति का निर्माण शिक्षा करती है। शिक्षा इसलिए जनतंत्र में जनतंत्र विचारक, सामाजिक कल्याण की भावना से युक्त, दूसरों का ख्याल करने वाला, समस्याओं पर विचार करके तुरन्त निर्णय देने वाला, सहिष्णु, सच्चरित एवं अच्छी आदतों वाला, रूढ़ियों का विरोध करने वाला, समाज में परिवर्तन करने वाला तथा समाज को प्रगतिशील बनाने वाला नागरिक तैयार करती है। तभी तो प्रत्येक नागरिक इतना समर्थ होता है कि वह अपनी जीविका कमा सके और अपने आश्रितों का पालन पोषण कर सके।

सम्पूर्ण मनुष्य की शिक्षाः– जनतंत्र और शिक्षा एक–दूसरे के लिए आवश्यक है। अतः दोनों में पर्याप्त सत्यता दिखाई देती है। ई0जे0 पावर महोदय ने अपनी पुस्तक 'एजुकेशन फार अमेरिकन डेमोक्रेसी' में लिखा है– "अपने अत्यन्त स्पष्ट और निश्चित रूप में जनतांत्रिक शिक्षा का अर्थ है कि वह सामाजिक एवं राजनैतिक जनतंत्र (या जनतंत्रवाद) जो उसके (शिक्षा के) लिए आधार स्वरूप है, जिन्होंने एक जलवायु या सामाजिक वायुमण्डल उत्पन्न कर दिया है, जिसमें एक समझौता है कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी योग्यता की बराबर मात्रा में सविधिक शिक्षा के लिए अवसर अपनी रूचि और प्रेरणा के साथ पाये। ऐसी विधि में शिक्षा प्रणाली का निर्माण किया जाए।"

इसके अतिरिक्त अमेरिकी जनतंत्र में जो शिक्षा प्रणाली है, उस पर ध्यान देने से विदित होता है कि वहाँ की शिक्षा का लक्ष्य है–

9. वैयक्तिक विकास और सामाजिक व्यवस्थापन के लिए सुविधा देना,
2. प्रत्येक छोटे बच्चे को साविधिक शिक्षा देना, जिससे उसे आत्म विकास की शिक्षा मिले।
3. सामान्य नागरिक के लिए आधार प्रदान करना।
4. उच्च शिक्षा के लिए तैयार करना
5. छात्रों को जीवन के लिए तैयार करना।

इन लक्ष्यों से स्पष्ट हो जाता है कि जनतांत्रिक शिक्षा 'सम्पूर्ण मनुष्य की शिक्षा है। इस प्रकार की शिक्षा प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यता और क्षमता के अनुसार एक ऐसे नागरिक के रूप में बढ़ने के लिए अवसर एवं सुविधाएं देती है, जिससे उसके सभी अंगों का पूर्ण रूप से विकास होता है। ऐसे ही नागरिक कुशल सामाजिक गुण धारण करते हैं।

जन–शिक्षाः– जैसा कि हम जानते हैं कि जनतंत्र, जनता द्वारा जनता का शासन है। अतः जनतंत्र में जन–शिक्षा को सर्वप्रथम स्थान प्रदान किया गया है। इसका तात्पर्य यह है कि शिक्षा का रूप ऐसा होता है, जो सारी जनता की आवश्यकताओं को पूरा करता है। जन–शिक्षा केवल बालकों तक ही सीमित नहीं होती है वरन यह सभी नागरिकों के लिए होती है। सभी के लिए विद्यालय खोले जाते हैं बड़े–बूढ़े अभिवावक तथा बालक आदि सभी बिना किसी भेदभाव के शिक्षा पाने के अधिकारी होते हैं। लड़के–लड़कियों में कोई

अन्तर नहीं किया जाता और सबको समान रूप से शिक्षा प्रदान की जाती है। उनकी सुविधानुसार दिन में, शाम को, रात्रि को या सुबह विद्यालय की व्यवस्था होती है। सामान्य रूप से सभी प्रकार की बुद्धि वालों की शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। मंद बुद्धि, तीव्र बुद्धि, अन्धे, लूले, लंगड़े तथा अशक्त सभी के लिए विद्यालय देश की सुविधा और माँग के अनुसार खोले जाते हैं। यही नहीं सभी प्रकार के विद्यालय भी खुलते हैं जैसे– सामान्य ज्ञान वाले, टेक्निकल, औद्योगिक, व्यवसायिक, कृषि आदि के विद्यालय जहाँ इन विषयों की उपयुक्त और पूरी शिक्षा दी जाती है। कुछ वर्गों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। कहीं प्राइमरी तक और कहीं सेकेन्ड्री तक शिक्षा निःशुल्क एवं अनिवार्य है। इसके साथ–साथ सारी सुविधाएं, लिखने–पढ़ने आदि की तथा इसके अलावा पाठ्य सामग्री भी मुफ्त दी जाती है।

बाल केन्दित शिक्षाः– जनतंत्र मे बालक की शिक्षा सबसे महत्वपूर्ण होती है, क्योंकि यही बालक ही जनतंत्र का आधार होते हैं। उनकी शिक्षा की व्यवस्था इस प्रकार की जाती है कि जिससे उनकी स्वाभाविक रूचियों और शक्तियों का सही विकास हो और किसी भी परिस्थिति में इनकी अवहेलना अथवा दमन को रोकने के प्रयास किये जाते हैं।

चूँकि ये बालक ही आगे चलकर देश के नेता होंगे, देश को आगे बढ़ाएंगे और भावी नागरिक कहलाएंगे, इसलिए बालकों के व्यक्तित्व के विकास के लिए सारी सुविधाएं और सभी प्रकार के अवसर जनतंत्र में प्रदान किये जाते हैं। उनका व्यक्तित्व अध्ययनशील होता है और व्यक्तिगत विशेषताओं के अनुसार व्यक्तिगत विधियों और साधनों का प्रयोग किया जाता है और उनके घर की दशाओं का पूरा–पूरा अध्ययन करके उनके विकास में आने वाली बाधाओं को दूर किया जाता है। उनकी रूचियों, मनोवृत्तियों, आवश्यकताओं ओर योग्यताओं के अनुसार उनकी सांस्कृतिक, सामाजिक एवं बौद्धिक उन्नति की जाती है और तद्विषयक सुविधाएं दी जाती हैं। नवीन शिक्षा साधनों, विधियों तथा परीक्षणों का प्रयोग किया जाता है। उनके स्वास्थ्य तथा शरीर की दशा की ओर पूरा ध्यान रखा जाता है। विद्यालय जीवन में समय–समय पर उनकी डाक्टरी जाँच होती है और रोगों तथा दोषों तथा के निदान जानकर उनका उन्मूलन तुरंत किया जाता है। मनोरंजन खेल–कूद, व्यायाम के लिए भी सुविधाएं और समान दिये जाते हैं। इस प्रकार जनतंत्र में शिक्षा बालक के लिए होती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

प्रश्न 4:– जन–शिक्षा से आप क्या समझते हैं?

.....

9.7 जनतंत्र और शिक्षा :–

उपरोक्त विवरण के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि जनतंत्र और शिक्षा का सम्बन्ध बहुत ही महत्वपूर्ण और गहरा है।

"जनतंत्र शासन की एक पद्धति ही नहीं है बल्कि यह सामाजिक जीवन और विचारों तथा अनुभवों के दिन प्रतिदिन की एक शैली है।"

डिवी के इन्हीं उपरोक्त विचारों ने शिक्षा में प्रजातांत्रिक सिद्धान्तों को जन्म दिया। जान डिवी ने लिखा है– "जनतांत्रिक समाज को अच्छे गुणों के साथ पाठशाला में प्रशिक्षित करा देना चाहिए, जिससे बालक अपने आप को इस समाज का एक अंग समझे और उसके विकास में सक्रिय सहयोग दें।" अब लोग इस बात को मानने लगे हैं कि शिक्षा जनतंत्र में ही पनप सकती है। यह भी सत्य है कि शिक्षा की सहायता के बिना प्रजातंत्र कदापि सफल नहीं हो सकता है।

प्रजातंत्र तभी सफल हो सकता है जबकि देश के सभी नागरिकों को अपने कर्तव्यों की पूरी जानकारी हासिल हो। यह कार्य शिक्षा ही पूरा कर सकती है। जनतंत्र के अंतर्गत मतदान को अत्यधिक महत्व दिया जाता है। जनता सोच समझकर मतदान करेगी तभी उसका कल्याण होगा। हेरिंगटन का यह कथन एकदम सत्य है कि जनतंत्रात्मक सरकार की सबसे बड़ी माँग शिक्षित जनता है। शिक्षा ही नागरिकों में उन मानवीय गुणों को विकसित कर सकती है जिसकी जनतंत्र को परम आवश्यकता है। जनतंत्र वहीं सफल हो सकता है कि जहाँ पर कि सामाजिकता सहृदयता, सहिष्णुता, धैर्य, जनहित आदि की भावना से भरे हुए नागरिक हैं। शिक्षा ही एक ऐसा साधन है जो नागरिकों में जनतंत्र के प्रति विश्वास और सद्भाव पैदा कर सकती है।

अतएव जनतंत्र की दृष्टि से यह आवश्यक है कि हमारे भावी नागरिक

अपनी संस्कृति कला आदि के ज्ञान से परिचित हों। संस्कृति का संरक्षण शिक्षा ही करती है। अतएव यह जानकारी शिक्षा के द्वारा ही प्राप्त हो सकती है।

9.8 जनतंत्र में शिक्षा का पाठ्यक्रमः–

जनतंत्रीय या प्रजातंत्रीय पाठ्यक्रम में उन विषयों, क्रियाओं तथा अनुभवों को स्थान दिया जाता है जो जनतंत्रीय आदर्शों एवं मूल्यों को स्थान प्राप्त करने में सहायक होते हैं। साथ ही छात्रों में स्वतंत्र रूप से स्वतंत्र रूप चिंतन करने तथा उदार मस्तिष्क से सोचने की क्षमता प्रदान करते हैं। जनतंत्रीय शिक्षा का पाठ्यक्रम निम्नलिखित सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर किया जाना चाहिएः–

- सामाजिक आवश्यकताओं का सिद्धांत
- व्यवहारिकता का सिद्धान्त
- लचीलेपन का सिद्धांत
- सामाजिक अनुभव का सिद्धान्त

जनतंत्रीय शिक्षा में पाठ्यक्रम की धारणा को संकुचित रूप से नहीं लिया गया है। इसका पाठ्यक्रम बहुमुखी, लचीला, विकासशील तथा रचनात्मक है। इसमें छात्रों की रूचियों, योग्यताओं, क्षमताओं तथा वैयक्तिक भेदों को ध्यान में रखकर विषयों तथा अनुभवों का चयन किया जाता है। साथ ही जनतंत्रीय विचारक शिक्षा के पाठ्यक्रम में उन विषयों को भी स्थान देते हैं जिनका सामाजिक महत्व अधिक है। वे अपने पाठ्यक्रम में कृषि, विज्ञान, भाषा, प्रकृति अध्ययन, हस्त–कौशल, कला, गणित, सामाजिक विषय, गृह विज्ञान, स्वास्थ्य शिक्षा आदि विषयों को स्थान प्रदान करते हैं।

जनतंत्रीय शिक्षा के पाठ्यक्रम के विषय में 'रूडयार्ड और हेनरी महोदय ने कहा है–''सबसे विस्तृत अर्थ में पाठ्यक्रम के अन्तर्गत सम्पूर्ण विद्यालय का वातावरण आता है जिसमें सभी कोर्स, क्रियाएं, पढ़ना और संघ शामिल हैं, जिसका सम्बन्ध बालक से होता है।''

(Curriculum in its broadest sense includes the complete school environment, involving all the courses, activities, readings and associations furnished to the pupils in the school.)

9.9 जनतंत्र और शिक्षा–विधिः–

जनतंत्र के अन्तर्गत प्रजातंत्रिक सिद्धांतों एवं आदर्शों के अनुरूप शिक्षण पद्धतियों का चुनाव किया जाता है। स्वतंत्रता, क्रियाशीलता तथा प्रगतिशीलता, जनतंत्र का मूल सिद्धांत है। इसलिए इस शासन पद्धति में कठोर परम्परावादी और निष्क्रिय शिक्षण विधियों या पद्धतियों में निम्नलिखित विशेषताएं होनी चाहिएः–

- छात्रों में करके सीखने की आदतों का निर्माण किया जाना चाहिए।
- छात्रों को स्वनुभव से सीखने की स्वतंत्रता दी जानी चाहिए।
- शिक्षा की प्रक्रिया सहयोग के आधार पर सम्पन्न होनी चाहिए।
- शिक्षण पद्धति में मानसिक शक्तियों के विकास हेतु निरीक्षण विधि का प्रयोग किया जाना चाहिए और व्यवहारिक ज्ञान, प्रयोग एवं कार्यशाला विधि के द्वारा किया जाना चाहिए।

जनतंत्रवादी शिक्षा में उन्हीं विधियों को अपनाने के पक्षपाती हैं जिनमें छात्रों को खुलकर अपने विचार व्यक्त करने तथा स्वयं कार्य करने की प्रेरणा प्राप्त हो। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि प्रजातंत्र शिक्षा में क्रियात्मक शिक्षण विधियों पर बल दिया जाता है। उनका मत है कि जिस शिक्षण विधि में छात्रों को अनुभव द्वारा ज्ञान प्राप्त तथा अपने विचार व्यक्त करने की स्वतंत्रता नहीं होती है, वह व्यर्थ है। शिक्षण–पद्धति ऐसी हो जिससे छात्रों में स्वानुशासन, सहयोग तथा सुव्यवस्था की भावना उत्पन्न हो सके। इस दृष्टि से जनतंत्रवादी निम्न शिक्षण विधियों पर बल देते हैंः–

9. योजना विधि
2. डाल्टन योजना विधि
3. सामाजीकृत अभिव्यक्ति पद्धति
4. ह्यूरिस्टिक अभिव्यक्ति पद्धति
5. प्रयोगशाला विधि
6. निरीक्षण विधि
7. समस्या विधि
8. वर्कशाप विधि
9. वाद–विवाद विधि

10. समन्वय विधि

19. सहयोग विधि

12. क्रिया–विधि

13. खेल–विधि

14. सह–सम्बन्ध विधि।

- **सहयोगी विधिः–** यह एक महत्वपूर्ण शिक्षण विधि है। इसमें अध्यापक और छात्र मिलकर काम करते हैं। अध्यापक छात्र का सहायक समझा जाता है। उस पर शासक रूप में नहीं होता है। इसलिए प्रोजेक्ट, डाल्टर, मान्टेसरी तथा किंडरगार्टेन विधियों से शिक्षा प्रदान की जाती है। बेसिक शिक्षा विधि भी इसी भावना से युक्त पाई जाती है। शिक्षण–प्रणाली में हस्तक्षेप को कोई स्थान नहीं दिया जाता, क्योंकि जनतंत्र का विश्वास स्वतंत्रता में है। कहा भी गया है कि जनतंत्र स्वतंत्रता का अनुदान है। इसलिए छात्र अपनी रूचि के अनुसार स्वतंत्रता पूर्वक काम करते हैं और शिक्षा ग्रहण करते हैं।
- **सह–सम्बन्ध विधिः–** यह भी जनतंत्रीय शिक्षण की एक महत्वपूर्ण विधि है। प्रोजेक्ट एवं बेसिक पद्धतियों में सह–सम्बन्ध के द्वारा शिक्षा देने पर जोर दिया जाता है। यह विधि सही अर्थ में ज्ञान की इकाई मानकर काम में लाई जाती है।
- **क्रिया–विधिः–** यह भी एक महत्वपूर्ण शिक्षण पद्धति है। इसका मानना है कि बालक निष्क्रिय श्रोता नहीं होता है, उसमें गतिशीलता भी होती है, स्फूर्ति और उत्साह होता है, इसलिए वह स्वयं करके सीखता है और स्वयं सिद्धांतों एवं सत्यों की खोज करता है। इसी के साथ–साथ खेल विधि का भी प्रयोग किया जाता है। वाद–विवाद भी एक क्रिया है, जिस प्रविधि को जनतंत्रवादी शिक्षा में प्रयोग करते हैं।
- **प्रयोगशाला व कर्मशाला विधिः–** यह विधि व्यवहारिक विषयों के अध्ययन में काम आती है। हस्तकौशल, विज्ञान आदि में इसका प्रचुर प्रयोग पाया जाता है।
- **निरीक्षण विधिः–** इसका प्रयोग भी जनतंत्रीय शिक्षा में किया जाता है। इससे बौद्धिक विकास अच्छी तरह से होता है। रटने की विधि को इस शिक्षा प्रणाली में बुरा समझा जाता है।

9.10 जनतंत्र में शिक्षकः–

शिक्षा के क्षेत्र में सबसे महत्वपूर्ण व्यक्ति शिक्षक है, जिस पर शिक्षा व्यवस्था आधारित होती है। उसकी विद्वता, व्यवहार आचरण और अन्य अच्छाई और बुराईयों का छात्र पर प्रत्यक्ष और अमिट प्रभाव पड़ता है, क्योंकि छात्र अध्यापक का अनुसरण करता है, छोटे बालकों के वे 'हीरो' एवं आदर्श होते हैं। अध्यापक के लिए यह भी आवश्यक है कि वह जनतंत्रात्मक भावना से प्रेरित हों और समस्त छात्रों के साथ समान व्यवहार करें। छात्रों में भेदभाव करने वाला शिक्षक अपराधी और वह कभी सफल नहीं हो सकता है। अतः उसे भेदभाव से ऊपर उठकर सब बालकों के व्यक्तित्व के विकास में सहायक बनना चाहिए।

जनतंत्रीय शिक्षा प्रणाली में शिक्षक को एक मित्र, मार्ग–दर्शक, समाज–सुधारक तथा नेता की भूमिका निभानी पड़ती है। उसका उत्तरदायित्व होता है कि वह अपने छात्रों तथा समाज को प्रगति के मार्ग पर अग्रसर करे। इस प्रकार जनतांत्रिक शिक्षा प्रणाली में महत्वपूर्ण एवं दायित्वपूर्ण भूमिका को भली–भांति निभाने के लिए शिक्षक को कुछ गुणों से युक्त होना चाहिए। सर्वप्रथम शिक्षक के लिए आवश्यक है कि वह योग्य नागरिक को अर्थात वह नागरिकता के नियम से परिचित हो तथा जनतंत्रीय आदर्शों, मूल्यों एवं सिद्धांतों के प्रति पूर्ण आस्था रखता हो। शिक्षक में समुचित शैक्षिक योग्यता होनी चाहिए ताकि वह अपने छात्रों को भली–भाँति समझ सके तथा उनका समुचित मार्गदर्शन कर सके। छात्रों को योग्य नागरिक बनाना भी शिक्षक का ही दायित्व समझा जाता है। शिक्षक का चरित्र भी महान तथा अनुकरणीय होना चाहिए। ऐसे शिक्षक को छात्रों द्वारा सम्मान दिया जाता है और उनका अनुकरण किया जाता है।

9.11 जनतंत्र और विद्यालयः–

व्यक्तिगत स्वतन्त्रता, विचार स्वतन्त्रता और कार्य स्वतंत्रता जनतंत्रात्मक पद्धति के प्रमुख स्तम्भ हैं। इन जनतंत्रात्मक आदर्शों को स्थापित करने का प्रमुख साधन विद्यालय है। इसलिए विद्यालय का उत्तरदायित्व और महत्व बहुत अधिक है। जनतंत्रात्मक आदर्शों को प्राप्त करने के लिए विद्यालयों की मुख्य रूप से निम्नलिखित विशेषताओं से युक्त होना चाहिएः–

- विद्यालयों को प्रत्येक प्रकार से साधन–सम्पन्न होना चाहिए, जिससे

समाज के सभी बालकों के लिए शिक्षा सुलभ हो सके। विद्यालयों के पास समुचित शिक्षण सामग्री, विद्यालय भवन, यन्त्र उपकरण तथा खेल के मैदान आदि की सुविधा होनी चाहिए।

- लोकतंत्रीय राज्य के विद्यालयों में सभी बालकों को उनकी व्यक्तिगत रूचि, योग्यता एवं आवश्यकता के अनुसार शिक्षा देने की व्यवस्था होनी चाहिए। इसके लिए विद्यालय तथा परिवारों में सम्पर्क होना चाहिए तथा बच्चों की पारिवारिक पृष्ठभूमि को भी ध्यान में रखना चाहिए। बालकों की योग्यता और रूचि को बात करने हेतु मनोवैज्ञानिक परीक्षण होने चाहिए तथा विद्यालयों में मनोवैज्ञानिक केन्द्र स्थापित होने चाहिए।
- इन विद्यालयों का सम्पूर्ण वातावरण जनतांत्रिक होना चाहिए। विद्यालय के समस्त सदस्यों में पारस्परिक प्रेम, सहयोग, सहानुभूति का व्यवहार होना चाहिए। इसके अलावा विद्यालय को समाज तथा राज्य से भी सहयोग प्राप्त होना चाहिए। प्रबन्ध समिति तथा विद्यालय कर्मचारियों में भी सहयोग होना चाहिए।
- विद्यालय लोकतंत्रीय जीवन के प्रशिक्षण के केन्द्र होते हैं। इसलिए विद्यलयों द्वारा पाठ्यक्रम के अलावा अन्य शिक्षा प्रद कार्यों का भी आयोजन किया जाना चाहिए। इसके लिए खेल–कूद, व्यायाम, साहित्यिक तथा सांस्कृतिक कार्य कलापों का भी आयोजन होना चाहिए। इससे बालकों में जनतंत्रात्मक संस्कारों का विकास होगा।
- लोकतांत्रिक विद्यालयों में बालकों के अधिकारों तथा कर्तव्यों का भी ध्यान रखना चाहिएं विद्यालय के बहुत से कार्य बच्चों को भी दायित्व सौंपना चाहिए, इससे उनमें कर्तव्य की भावना का विकास होता है।

9.12 जनतंत्र और अनुशासनः–

शिक्षा का अभिप्राय शासन के लिए कुशल तथा योग्य नागरिक उत्पन्न करना। अतः जनतंत्रात्मक शिक्षण में अनुशासन को भी विशेष महत्व दिया जाता है। जनतंत्रवादियों के अनुसार अनुशासन बाहर से थोपा नहीं जा सकता है, उसे डंडे के बल पर स्थापित नहीं किया जा सकता है। बल्कि जहाँ पूर्णतः जनतंत्रात्मक वातावरण होता है, वहाँ अनुशासन की भावना स्वयं आ जाती है। इसलिए वे आत्मानुशासन पर बल देते हैं। जनतंत्रवादियों का मत है कि

अनुशासन के लिए प्रचार की अधिक आवश्यकता हुई तो अल्प प्रयास मात्र से ही अधिक सफलता हो जाएगी।

यदि अध्यापक छात्रों से स्नेह और सहयोग का भाव रखता है और छात्रों के विचारों का समुचित आदर करता है तो छात्र स्वयं ही अनुशासित हो जाते हैं, उन पर अनुशासन लादने की आवश्यकता नहीं पड़ती है। अतः हम संक्षेप में कह सकते हैं कि जनतंत्र में अनुशासन के मुक्त्यात्मक सिद्धांत पर बल दिया जाता है। इसके अनुसार विद्यालय में अनुशासन की स्थापना के लिए स्वतंत्रता, उत्तरदायित्व ग्रहण करने तथा उसके निर्वाह करने की भावना पर बल दिया जाता है। साथ ही विद्यालय में विभिन्न क्रियाओं का आयोजन करने, उनमें छात्रों को स्वतंत्रता पूर्वक सक्रिय रूप से भाग लेने को प्रोत्साहित किया जाता है।

अतः स्पष्ट है कि जनतंत्रात्मक व्यवस्था अनुशासन के अभाव में कभी सफल नहीं हो सकती। इसमें स्वअनुशासन पर बल दिया जाता है।

9.13 जनतंत्र की सफलता के उपायः–

समाज तथा शिक्षा के क्षेत्र में जनतंत्र की भावना को सफल बनाने के लिए कुछ उपाय बताए गये हैं। इनको उपयोग में लाकर उसे प्राप्त किया जा सकता है। किल्पैट्रिक ने 6 सिद्धान्त या उपाय बताए हैं। इनके अलावा कुछ निम्न उपाय हैं:–

- व्यक्तिगत निर्णय की स्वतंत्रता प्रत्येक नागरिक को होनी चाहिए। इससे उत्तरदायित्व पूरा होगा।
- समाज में प्रत्येक व्यक्ति को समान अधिकार मिलना चाहिए। इससे स्वतंत्रता सीमित हो जाएगी। दूसरों की स्वतंत्रता का ख्याल रखना पड़ेगा।
- अधिकार के साथ सापेक्ष कर्तव्य भी होता है। इससे दूसरों का भला भी देखना होगा।
- संहयोग से काम करना चाहिए। इससे लोक कल्याणकारी कार्य होंगे।
- बुद्धि, तर्कवाद, विवाद एवं शांति की विधियों से काम लेना चाहिए। इनसे पाशविकता दूर होगी।
- चिंतन करना तथा अपने विश्वासों को दूसरे के सामने रखना चाहिए।

इससे समस्या का समाधान ठीक से होता है। "जनतंत्र की कला स्वतंत्रता के साथ परस्पर मिलकर चिंतन करने की कला है।"

- अनिवार्य शिक्षा चलानी चाहिए। अनपढ़ पौढ़ों को भी शिक्षा देनी चाहिए। उचित दृष्टिकोण बनेगा।
- विद्यार्थियों को अपनी रूचि के विषयों को चुनने और पढ़ने का अवसर देना चाहिए। इससे उन्हें सफलता मिलेगी और वे उपयोगी नागरिक होंगे।
- शिक्षा व्यवस्था में शिक्षकों का भी प्रतिनिधित्व होना चाहिए। शिक्षण कार्य में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिए। इससे स्वतंत्र विचार–विमर्श एवं निर्णय करने की छमता बढ़ेगी।
- छात्रों को स्वशासन एवं अन्य क्रियाओं के सम्पादन में जनतांत्रिक संगठन बनाने की प्रेरणा देनी चाहिए। इससे वे व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त करेंगे।
- समाज के संगठनात्मक एवं सुधारात्मक कार्यों में छात्रों को उत्तरदायित्व के साथ भाग लेने को प्रोत्साहित किया जाए।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

प्रश्न 5:– जनतंत्र में किस प्रकार के अनुशासन पर बल दिया जाता है?

.....

प्रश्न 6:– जनतंत्र की सफलता के किन्हीं दो उपायों का वर्णन कीजिए?

.....

9.14 सारांश:–

जनतंत्र का अर्थ है– 'जनता द्वारा जनता का शासन'। जनतंत्र का सबसे प्रमुख एवं अनिवार्य तत्व जनता होती है। जनता की योग्यता पर ही जनतंत्र का भविष्य निर्भर करता है और जनता की योग्यता उनकी शिक्षा पर निर्भर करती है। जनतंत्रात्मक शिक्षा प्रणाली का प्रमुख उद्देश्य योग्य नागरिकों का निर्माण करना है। इसी उद्देश्य की प्राप्ति हेतु शिक्षा का स्वरूप,

उसका पाठ्यक्रम एवं विधियों का निर्धारण किया जाता है। इस प्रकार की शिक्षा प्रणाली में अध्यापक की महती भूमिका होती है। वह एक पथ प्रदर्शक के रूप में बालक का मार्ग दर्शन करता है। विद्यालय में बालक के लिए ऐसे वातावरण का निर्माण किया जाता है जिससे वह अपना सर्वोत्तम विकास कर सके। जनतंत्र में आत्मानुशासन पर बल दिया जाता है। अतः अनतंत्र को सफल बनाने के लिए शिक्षा की महती भूमिका होती है।

9.15 अभ्यास प्रश्नः–

निम्न प्रश्नों के उत्तर लिखिएः–

9. राजनैतिक जनतंत्र से आप क्या समझते हैं ?

2. शिक्षा के किन्हीं चार आदर्शों को लिखिए ?

3. जनतंत्र में किन–किन शिक्षण विधियों पर बल दिया जाता है ?

4. शिक्षण की खेल–विधि पर टिप्पणी लिखिए ?

9.16 बोध प्रश्नों के उत्तरः–

9. जनतंत्र से तात्पर्य ऐसी शिक्षण प्रणाली से है जिसमें जनता द्वारा जनता का शासन होता है।

2. जनतंत्र का प्रयोग निम्न रूपों या अर्थों में किया जाता है–

(i) राजनैतिक अर्थ में

(ii) आर्थिक अर्थ में

(iii) सामाजिक अर्थ में

(iv) शैक्षिक अर्थ में

3. जनतंत्र में शिक्षा के दो प्रमुख अनिवार्य उद्देश्य निम्न हैं:–

(i) छात्रों में अच्छी आदतों का निर्माण करना।

(ii) छात्रों को नागरिकता का प्रशिक्षण देना।

4. जन–शिक्षा से तात्पर्य है समाज के सभी वर्गों की शिक्षा से है जिसमें समाज के सभी व्यक्ति चाहे वे बच्चे, बूढ़े या जवान हों सभी को शामिल किया जाता है।

5. जनतंत्र में आत्मानुशासन पर बल दिया जाता है।

6. जनतंत्र की सफलता के लिए निम्न उपायों पर अमल किया जा सकता है।

इकाई– 10 समुदाय और शिक्षा

इकाई की रूपरेखा

10.1 प्रस्तावना

10.2 उद्देश्य

10.3 समुदाय का तात्पर्य

10.4 समुदाय की परिभाषा

10.5 समुदाय की विशेषताएं

10.6 समुदाय और शिक्षा

10.7 बालक और समुदाय के शैक्षिक प्रभाव

10.8 भारत में सामुदायिक विकास

10.9 समुदाय के शैक्षिक कार्य या कर्तव्य

10.10 सारांश

10.11 अभ्यास प्रश्न

10.12 बोध प्रश्नों के उत्तर

10.13 कुछ उपयोगी पुस्तकें

10.1 प्रस्तावनाः–

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। सामाजिक प्राणी होने के कारण वह अपनी आवश्यकताओं की संतुष्टि हेतु समुदाय या समाज का निर्माण करता है। प्रस्तुत इकाई में हम शैक्षिक अभिकरण के रूप में समुदाय का अध्ययन करेंगे।

इस इकाई में आप समुदाय के सम्प्रत्य, उसकी विषेशताओं, समुदाय और शिक्षा के मध्य सम्बन्ध तथा बालक पर समुदाय के शैक्षिक प्रभावों के विषय में अध्ययन करेंगे। भारत में सामुदायिक विकास की स्थिति क्या है? और समुदाय के शैक्षिक कार्य क्या–क्या हैं? आदि प्रश्नों के भी इस इकाई में आपको समझने में मदद मिलेगी।

10.2 उद्देश्यः–

प्रस्तुत इकाई 'समुदाय और शिक्षा' के अध्ययन के पश्चात आप इस योग्य हो जाएंगे कि आपः–

- समुदय के प्रत्यय को जान सकेंगे।
- समुदाय को परिभाषित कर सकेगें।
- समुदाय और शिक्षा के मध्य सम्बंन्धों की व्याख्या कर सकेंगे।
- समुदाय के शैक्षिक कार्यों से परिचित हो सकेंगे।
- भारत में सामुदायिक विकास की समीक्षा कर सकेंगे।

10.3 समुदाय का तात्पर्यः–

समुदाय एक वृहत सामाजिक समूह होता है। इसमें परिवार, पास–पड़ौस, जातियाँ और अन्य अनेक सामाजिक समूह, संगठन और समस्याएं सभी सम्मिलित होते हैं। प्रत्येक समुदाय अपने आप में पूर्ण इकाई होता है और वह स्वयं इन सब समूहों, संगठनों एवं संस्थाओं का निर्माता होता है।

समुदाय अनौपचारिक शिक्षा का एक महत्वपूर्ण अभिकरण है। समुदाय की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए 'यीगर' महोदय ने लिखा है– " चूँकि मनुष्य स्वभाव से एक सामाजिक प्राणी है। उसने यह बात वर्षों के अनुभव से सीख ली है कि उसके व्यक्तित्व तथा समूह की क्रियाओं का सर्वोत्तम विकास सामुदायिक जीवन में ही हो सकता है।"

प्रायः देखा गया है कि समाज और समुदाय दोनों शब्दों का प्रयोग एक ही अर्थ में किया जाता है। वास्तव में समाज तथा समुदाय शब्द बहुत अर्थ–साम्य रखते हैं और कुछ विद्वान दोनों में सामान्य रूप से अन्तर नहीं समझते, लेकिन सूक्ष्मता से अध्ययन करने पर अन्तर स्पष्ट होता है। मैनेजर महोदय का विचार है कि, "वह समाज जो किसी निश्चित भौगोलिक क्षेत्र में रहता है, एक समुदाय कहलाता है।"

(A society that inhabits a definite geographical area is known as community.) जहाँ तक समुदाय के शाब्दिक अर्थ का प्रश्न है, इसे अंग्रेजी भाषा में Community कहते हैं– जो दो शब्दों से मिलकर बना है कम (Com) और (Munis)। 'कम' का अर्थ है 'एक साथ' और म्यूनिस का अर्थ

है 'सेवा करना'। इस प्रकार से कम्यूनिटी का अर्थ हुआ– 'एक साथ मिलकर सेवा करना'।'

समुदाय में व्यक्ति एक साथ मिलकर अपने अधिकारों का उपयोग करते हैं। समुदाय में व्यक्तियों की संख्या का अधिक महत्व नहीं है। दो या दो से अधिक कितने भी व्यक्ति समुदाय का निर्माण कर सकते हैं। इसके लिए भौगोलिक क्षेत्र होना तो चाहिए किन्तु यह छोटा या बड़ा हो सकता है। समुदाय में मुख्य बात आर्थिक, सांस्कृतिक एवं राजनीतिक लक्ष्यों की समानता है, न कि व्यक्तियों की संख्या या क्षेत्र की सीमा है।

10.4 समुदाय की परिभाषाः–

समुदाय के सम्प्रयत्यय को स्पष्ट करने के लिए विद्वानों ने समुदाय को अपने–अपने ढंग से परिभाषित करने का प्रयास किया है। कुक (Cook) महोदय ने समुदाय के अर्थ के सम्बन्ध में अपनी पुस्तक "एजूकेशन मैथड" में लिखा है कि–

"समुदाय व्यक्तियों का वह समूह है, जो पड़ोसी प्रदेश में रहते हैं, अतीत के अनुभवों से एक में बँधे होते हैं। बहुत सी आधारिक सेवा संस्थाओं पर अधिकार रखते हैं। समुदाय की एकता के प्रति सचेत रहते हैं और जीवन की आवर्तक आपदावों का मुकाबला करने में सामूहिक शक्ति से काम लेते हैं।"

(A Community is a population aggregated in habiting a continuity territory, integrated through past experiences possessing a number of basic service institution, conscious of its unity and able to act in corporate capacity in meeting reoccurring life crises.)

एक अन्य जगह पर समुदाय को स्पष्ट करते हुए उन्होंने फिर लिखा है– "एक भौगोलिक क्षेत्र के अन्तर्गत मानवीय सम्बन्धों का एक निश्चित रूप अर्थात व्यक्ति, संस्कृति भूमि का समन्वित रूप समुदाय है।"

"वास्तव में समुदाय समाज का एक ऐसा भाग कहा जा सकता है, जो एक निश्चित क्षेत्र में रहता है और ऐसे लोग आपस में एकता की भावना रखते हैं, कुछ सम्बन्ध भी उनमें होता है और प्रायः वे एक दूसरे से अन्तः सम्बन्ध स्थापित करते हैं"–

(By community they generally mean a group of people in a given area with a sense of connection and interrelation) ये अन्तः सम्बन्ध वैवाहिक जातीय अथवा व्यवसायिक हो सकते हैं। जो विभिन्न संस्थाओं के कारण मानते हैं। डीवी ने समुदाय को मनोवैज्ञानिक और समाजशास्त्रीय ढंग से बताया है। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से डीवी के अनुसार समुदाय एक मानवीय समूह है, जिसमें मानव की सामान्य रूचि होती है।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से समुदाय क्षेत्र में रहने वालों की जीवन–विधि का संगठित रूप होता है। इस प्रकार समुदाय में एक भौगोलिक क्षेत्र, जनसंख्या, सामान्य जीवन में भाग लेना आदि गुण होते हैं।

मैकाइवर ने समुदाय को परिभाषित करते हुए लिखा है–"जब किसी लघु या बृहत समूह के सदस्य इस प्रकार रहते हैं कि वे एक या दूसरे उद्देश्य में भाग न लेकर जीवन की समस्त भौतिक दशाओं में भाग लेते हैं तब हम ऐसे समूह को समुदाय कहते हैं।"

आगबर्न तथा निमकाफ के अनुसार– "किसी सीमित क्षेत्र के अन्तर्गत सामाजिक जीवन के सम्पूर्ण संगठन को समुदाय कहा जा सकता है।"

गिंसबर्ग ने लिखा है– "सामाजिक प्राणियों के ऐसे समूह को समुदाय समझा जाता है जो सामान्य जीवन व्यतीत करता हो और जिसमें सब प्रकार के असीम, विभिन्न एवं जटिल सम्बन्ध हों। ये सम्बन्ध या तो सामान्य जीवन के परिणाम स्वरूप होते हैं या फिर ये ही सामान्य जीवन का निर्माण करते हैं।"

डेविस ने समुदाय को परिभाषित करते हुए लिखा है–

"समुदाय एक ऐसा लघुतम् क्षेत्रीय समूह है जिसके अन्तर्गत सामाजिक जीवन के सभी पक्ष सम्मिलित हो सकते हैं।"

इस प्रकार से उपरोक्त वर्णन के आधार पर स्पष्ट हो जाता है कि समुदाय निश्चित भू–भाग उसमें रहने वाले लोगों, उनकी सामुदायिक भावना, आचार–विचार, रहन–सहन, एवं व्यवहार में समानताएं, स्थान विशेष का स्थायित्व, सहयोग एवं प्रयत्न से सम्बन्धित होता है तथा वहाँ की जनता के स्वयं के प्रयास एवं जीवकोपार्जन में विशिष्ट परिवर्तन ही सामुदायिक विकास कहा जा सकता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

प्रश्न 1:– समुदाय अंग्रेजी भाषा के किन दो शब्दों से मिलकर बना है?

.....

प्रश्न 2:– समुदाय की कोई एक परिभाषा लिखिए।

.....

प्रश्न 3:– समुदाय के सम्प्रत्यय को स्पष्ट कीजिए।

.....

10.5 समुदाय की विशेषताएं:–

समुदाय से सम्बन्धित उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट हो जाता है कि समुदाय में कुछ मूल तत्व निहित हैं जिन्हें हम उनकी विशेषताएं कह सकते हैं। जिनमें से कुछ प्रमुख विशेषताओं का वर्णन हम इस प्रकार से कर सकते हैं:–

- समुदाय स्थान विशेष या क्षेत्र विशेष से सम्बन्ध रखता है। सभी परिभाषाओं में एक क्षेत्र, प्रदेश या भौगोलिक खण्ड का जिक्र आया है। वास्तव में यह स्वाभाविक है कि जहाँ एक आदमी बसता है, वहाँ दूसरे भी आने लगते हैं और बस जाते हैं। मुहल्लों, बस्तियों और गाँवों का बसना इसी तरह हुआ। इससे उस क्षेत्र के रहने वाले अपना एक समुदाय कायम कर लेते हैं।
- समुदाय स्वयं एवं स्वाभाविक ढंग से बनते हैं। यह प्रकृति दत्त भावना है, जिसके फलस्वरूप व्यक्ति ने समुदाय बनाया। सामूहिकता, आत्म प्रदर्शन, दैन्य की मूलप्रवृत्तियों की प्रेरणा मिली और व्यक्ति एक स्थान पर एकत्र हुए और बना।
- एक स्थान पर रहने के कारण एकता की भावना आती है, जिससे समुदाय बनता है। इसमें कुछ आध्यात्मिक भावना भी दिखाई देती है, क्योंकि एक ईश्वर की संतान सभी हैं। पास–पड़ोस के नाते अज्ञात में धर्म के विश्वास के कारण भी एकता आती है।

- समुदाय का कभी–कभी नाम भी पड़ जाता है। इतिहास की कथाएं भूगोल की बातें और व्यवसाय के कृत्य ऐसे सामुदायिक नाम पड़े। सम्भवतः जाति एक समुदाय है, जो व्यवसाय के कृत्य पर बनती गई। स्थान के नाम पर आज भी गुजराती, आसामी, पंजाबी, महाराष्ट्री आदि समुदाय हैं। इतिहास में क्षत्रिय व राजपूत जाति लड़ाई के लिए प्रसिद्ध है। अस्तु लड़ाकू समुदाय इसी नाम से पुकारा जाता है।
- उपर्युक्त विशेषता के कारण समान जीवन का निर्माण होता है, जो पूरे समुदाय में पाया जाता है। सभी सदस्यों में 'हम' भावना (We Feeling) होती है। एक दूसरे के प्रति कुछ आत्मीयता रहती है।
- समुदाय का अपना एक धर्म भी हुआ करता है और इस प्रकार मुस्लिम समुदाय या हिन्दू समुदाय बने हैं।
- समुदाय की स्थापना भी व्यक्तियों के आधार पर हुई है। यदि कोई व्यक्ति न हो तो समुदाय नहीं बनेगा।
- आर्थिक निर्भरता भी सामुदायिक जीवन की एक विशेषता कही जा सकती है। आरम्भ में समुदाय आत्म निर्भर थे। इसकी परम्परा आज भी गाँवों में पाई जाती है और समुदाय में एक जाति व व्यवसाय के लोग रहते हैं, जो एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं। फिर भी समुदाय सम्पूर्ण रूप से आत्मनिर्भर पाया जाता है। परन्तु आधुनिक युग में यह बात समाप्त हो गई है और एक समुदाय दूसरे समुदाय पर निर्भर होता है।
- समुदाय को अपने आचार–व्यवहार की एक नियमावली भी होती है जिसका पालन उसके सदस्य करते हैं। इसका पालन न करने वालों को दण्ड दिया जाता है और उसे समाज से बहिष्कृत किया जाता है। यद्यपि रहता वह उसी स्थान पर है।

10.6 समुदाय और शिक्षाः–

समुदाय और शिक्षा आपस में घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं। शिक्षा समुदाय के विकास का प्रमुख आधार है और बालक की शिक्षा में समुदाय की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। "शिक्षा वास्तव में सामाजीकरण की प्रक्रिया है। इसलिए समुदाय और सामाजीकरण की प्रक्रिया का भी घनिष्ठ सम्बन्ध है।" हम इस प्रसंग में **जोजेफ के0 हार्ट** ने अपने विचार दिये हैं कि किस प्रकार

समुदाय व्यक्तियों को शिक्षित करता है–

- व्यक्ति गृह और परिवार के सम्बन्धों तथा उन सब लोगों के द्वारा जो परिवार में रहते हैं, शिक्षित होता है।
- पास–पड़ोस भी व्यक्तियों को शिक्षित करता है। पास–पड़ोस में गृह, उनके घरेलू रीति–रिवाज, झगड़े, मेल–मुलाकात, ,खेल–कूद या सामूहिक कार्य सभी की प्रतिक्रिया व्यक्तियों पर पड़ती है।
- समुदाय के खेल के मैदान, उनके खेल आदि सभी शिक्षा देते हैं। ये भावना आदर्श चरित्र आदि का विकास करते हैं।
- प्रकृति भी शिक्षा देती है, जब उसके पास जाया जाता है। पेड़–पौधे, पशु–पक्षी, फसले, मिट्टी, दिन–रात ऋतुएं, जलवायु, आकाश, अग्नि सभी शिक्षा के साधन हैं। इस प्रवृत्ति को दूर करके मानव–जाति ने शिक्षा की सबसे बड़ी क्षति सही है।
- धार्मिक संस्थाएं शिक्षा देती हैं। चर्च, संडे, स्कूल, धार्मिक उत्सव, धार्मिक विरोध भी, पवित्र संगीत, राग–रंग व्यक्तियों के जीवन को प्रभावित करते हैं। यहाँ तक कि धर्म में रूचि न रखने वाले लोग भी इनको अस्वीकार करके कुछ न कुछ सीखते हैं।
- कार्य भी शिक्षा देते हैं। परिवार, पास–पड़ोस तथा समुदाय के कार्य इसी तरह के होते हैं, जिनसे बच्चे सीखते हैं।
- सभी प्रकार की नागरिक दशाएं शिक्षा देती हैं। जैसे– पुलिस, चुनाव, राजनीतिक पार्टियाँ, इनके विरोध, राजनीतिक विवाद और अफवाहें आदि।
- सड़कों पर शिक्षा मिलती है। व्यक्ति अधिक भीड़ में इस पार से उस पार कैसे जाए सड़कों की दुकानें, उसकी चीखें, उन्हें देखने की प्रबल इच्छा, चाहे खरीदने की सामर्थ्य न हो, सड़क पर मुलाकात, दुर्घटनाएं आदि सभी जीवन के अनुभव देते हैं।
- यात्राओं से शिक्षा मिलती है। पास–पड़ोस के स्थानों, शहरों और दृश्यों को देखकर शिक्षा मिलती है।
- समाज की सुन्दरताएं और असुन्दरताएं भी शिक्षा देती हैं चाहे वह घर में हो, चाहे सड़क पर। सुन्दर को ग्रहण करने और असुन्दर को छोड़ने की प्रेरणा इसी प्रकार की होती है।
- समूहों की सदस्यता से शिक्षा मिलती है। व्यक्तियों को विभिन्न परिस्थितियों में व्यवहार करने का अनुभव नहीं मिलता है।

- आदशों का पालन करने तथा न करने, अधिकारियों एवं निरंकुश व्यक्तियों से व्यापार करने तथा आत्म नियंत्रण आदि के अनुभव में भी व्यक्ति सीखता है। ये अनुभव समाज में ही होते हैं।
- बीमारी दुर्घटना, निर्धनता, धन, पीड़ा, पराजय आदि के अनुभव भी शिक्षित करते हैं।
- दण्ड, पारितोषिक, लोभ, पाप, अपराध, आविष्कार, झूँठ, परियों की कथाओं, माता–पिता, भाई–बहन, अध्यापक, संस्थाओं एवं समुदाय के दबावों एवं अवदमन से व्यक्ति सीखता ही है।
- अपनी इन्छाएँ मित्रता, आकांक्षाओं श्रद्धा, सन्तोष एवं असन्तोष, दूर निवास होना या एकान्तवास आदि जीवन के पैटर्न (रूप) का निर्माण करते हैं।
- समाचार–पत्र, पत्र–पत्रिकाएँ, पुस्तक, पुस्तकालय विद्यालय आदि शिक्षा तो देते हैं।

इस प्रकार से उपरोक्त विवरण के आधार पर शिक्षा के लिए समुदाय की भूमिका स्पष्ट हो जाती है। व्यक्ति की शिक्षा का महत्वपूर्ण दायित्व समुदाय का है और विभिन्न प्रकार के साधनों के द्वारा समुदाय हमें विभिन्न प्रकार के अनुभव देता है और शिक्षित करता है।

10.7 बालक पर समुदाय के शैक्षिक प्रभावः–

बालक पर 'समुदाय' अनेक प्रकार के शैक्षिक प्रभाव डालता है। बालक पर समुदाय के शैक्षिक प्रभावों को हम निम्न शीर्षकों के माध्यम से स्पष्ट कर सकते हैं–

शारीरिक विकास पर प्रभावः–

समुदाय की स्वच्छता अथवा गंदगी का बालक के शारीरिक विकास पर प्रभाव पड़ता है। गाँव अथवा मुहल्ले की सफाई एवं समुदाय के सदस्यों का स्वास्थ्य सम्बन्धी ज्ञान बालक के स्वास्थ्य को प्रभावित करता है।

सामाजिक प्रभावः–

समुदाय के अनेक प्रकार के सामाजिक उत्सव होते हैं। मेलों के आयोजन, त्यौहार एवं उत्सवों तथा सम्मेलनों व कीर्तनों के आयोजन से बालक को व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त होता है और वह सामाजिक गुणों का

विकास करता है। सहयोग, सहानुभूति, अधिकार कर्तव्य आदि की जानकारी उसे समुदाय से प्राप्त होती है।

मानसिक प्रभावः-

बालक के मानसिक विकास में भी समुदाय योगदान करता है। पुस्तकालयों एवं वाचनालयों की कुछ समुदायों में विशेष व्यवस्था होती है।

राजनीतिक प्रभावः-

समुदाय में रहकर बालक राजनीतिक विचारों के सम्पर्क में आता है। समुदाय यदि लोकतांत्रिक विचारों का समर्थक है तो बालकों में लोकतंत्र के प्रति आस्था जाग्रत होती है। अन्यथा वे आम राजनीतिक विचारधारा के पोषक बन जाते हैं।

आर्थिक प्रभावः-

समुदाय में रहकर बालक व्यवसाय में रूचि लेने लगता है। कृषि वाणिज्य अथवा उद्योग में जाने का विचार बालक समाज में रहकर बना सकता है, दुर्भाग्यवश वर्तमान समय में भारतीय समुदाय में नौकरी के प्रति अधिक आकर्षक बालकों को भी नौकरी के लिए लालायित कर सकता है।

नैतिक प्रभावः-

प्रत्येक समुदाय में नैतिकता के कुछ निश्चित मानदण्ड होते हैं। छात्र समुदाय के इस मानदण्ड को धीरे–धीरे सीख लेता है। यदि समुदाय का वातावरण शुद्ध और सरल है तो छात्र का नैतिक विकास सही दिशा की ओर होगा। यदि समुदाय में दोहरा मानदण्ड है या अश्लीलता तो उसका प्रभाव छात्र पर बुरा पड़ेगा।

सांस्कृतिक प्रभावः-

समुदाय की संस्कृति की छाप बालक पर पड़ती है। समुदाय में बड़े लोग अपनी संस्कृति की रक्षा करते हैं और बालक अज्ञात रूप से उस संस्कृति को अपना लेता है।

साम्प्रदायिक कुप्रभावः-

कभी–कभी बालक पर समुदाय की परम्परा का बुरा प्रभाव पड़ता है। यदि समुदाय में संकुचित एवं संघीय साम्प्रदायिक दुष्टिकोण अपनाया जाता है तो बालक में साम्प्रदायिक संकीर्णता उत्पन्न हो सकती है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

प्रश्न 4:– समुदाय की किन्हीं दो विशेषताओं को बताइए?

.....

प्रश्न 2:– समुदाय के किन्हीं चार शैक्षिक प्रभावों को लिखिए।

.....

10.8 भारत में सामुदायिक विकास:–

भारत में सामुदायिक विकास प्राचीन समय से ही देखने को मिलता है। प्राचीन भारत में हमें अनेक समुदाय देखने को मिलते हैं, जो व्यवसाय और जातिगत आधार पर संगठित थे– जैसे– वैश्यों या वणिकों का समुदाय आदि।

भारत में सामुदायिक विकास की गति में तीव्रता स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आई। परतंत्र भारत में सम्पूर्ण भारतवासियों के मन एवं मस्तिष्क को गुलामी की बेड़ियों से जकड़ दिया गया था। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात भारत में सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक विकास हेतु अनेक योजनाएं क्रियान्वित किया गया। प्रथम पंचवर्षीय योजना के अन्तर्गत सामुहिक विकास के ऊपर विशेष बल दिया गया। सामुदायिक विकास के लिए सन् 1952 ई0 में सामुदायिक परियोजना और राष्ट्रीय सेवा नामक संस्था ने भारत सरकार को एक प्रतिवेदन प्रस्तुत किया। प्रतिवेदन में विशेषज्ञों द्वारा कहा गया था कि पिछले 10 वर्षों से समुदाय शब्द का सम्बन्ध धार्मिक तथा जातीय समूहों से रहा है। परन्तु कुछ ऐसे उदाहरण हैं जिन्हें हम एक विशेष समुदाय ही कह सकते हैं। जैसे– आर्थिक व्यवस्थाओं से सम्बन्धित समूह एक स्थान पर रहते हैं तथा जाति और धर्म की सीमाओं को पार करके एक समुचित संकल्पना का आभास देते हैं। समुदाय और सामुदायिक विकास एक ऐसी योजना है जो किसी विशेष क्षेत्र में रहने वाले सभी समूहों को प्रभावित करती है। प्रथम पंचवर्षीय योजना ने सम्पूर्ण भारत के लोगों के जीवन यापन को अच्छा बनाने के लिए अपनी व्याख्या दी है, कि भारत में लोगों का विकास तब सम्भव है जब विभिन्न

समुदायों का अध्ययन किया जाए तथा विकास हेतु संसाधनों की पूर्ति कराई जाए, तभी लोगों के जीवन में आमूल परिवर्तन सम्भव हो सकता है तथा गाँव की सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति में विकास हो सकता है।

सामुदायिक विकास ऐसी विधि है जिससे किसी विशेष क्षेत्र के विकास की क्रिया वहाँ की जनता के स्वयं के उपक्रम से आरम्भ होती है तथा सरकार प्राविधिक सलाह उपलब्ध कराके उसकी सहायता करती है। इसका अभिप्राय यह है कि जीवन की उपयोगी व्यवस्थाओं को प्रस्तुत करके सम्पूर्ण समुदाय के उत्तम जीविका की व्यवस्था की जा सके। जिसमें क्षेत्र विशेष की जनता का सक्रिया योगदान भी सम्मिलित है। विकास की सम्पूर्ण प्रक्रिया में कभी–कभी अनके बाधाएं उत्पन्न हो जाती है, जिनसे विकास के उपक्रम रूक जाते हैं तथा यहाँ की जनता से ऐसी प्रतिक्रियाएं मिलने लगती हैं कि समुदाय का विका कारणवश सम्भव नहीं हो पाता है। परिणामतः जनता के सहयोग एवं विचारों के आधार पर समुदाय का जीवन उत्तम बनाया जा सकता है।

नेहरू (1952) ने भारतवर्ष में समुदाय एवं सामुदायिक विकास के सम्बन्ध में कहा था कि समुदाय के लिए योजनाएं चलती हैं वे अत्यंत महत्वपूर्ण होती हैं। उन योजनाओं से केवल भौतिक उपलब्धि ही नहीं है वरन समुदाय का सामूहिक रूप से उत्थान होता है। भारत में पंचवर्षीय योजनाओं के तहत जो सामुदायिक केन्द्रों की स्थापना की जा रही है, वे उन्हीं उद्देश्यों के आधार पर होनी चाहिए। इस प्रकार सामुदायिक विकास में राज्य की भूमिका, योजनाओं की संरचना एवं संगठन महत्वपूर्ण हो जाती है। यह सम्पूर्ण राष्ट्रीय स्तर पर व्यवस्थित किया जाता है। इसके पीछे विकास की एक सुनिश्चित नीति नहीं होती है। साथ ही इसके अन्तर्गत प्राविधिक सेवा और नैतिक वस्तुओं को प्रदान करने का महत्वपूर्ण कार्यक्रम होता है।

विचार गोष्ठी सामुदायिक विकास का एक महत्वपूर्ण साधन है, जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव कार्यक्रमों पर दिखाई पड़ता है। नगर समीप तथा दूर स्थित विकास खण्डों में रहने वाले लोग समय–समय पर विभिन्न सामुदायिक एवं सामाजिक समस्याओं के निराकरण के लिए निर्धारित समय एवं स्थान पर पहुँचकर आपस में विचार विनिमय करते हैं तथा अपने सुझावों द्वारा एक दूसरे के विचारों को प्रभावित करते हैं। राजकीय स्तर पर यह प्रयास होना चाहिए कि सामुदायिक विकास विभिन्न क्षेत्रों की क्रियाओं से सम्बंधित विशिष्ट लोगों का चयन करके प्रत्येक गाँव सभा में भेजा जाए जिससे वे अपने विचारों से

लोगों को प्रभावित कर सकें।

सामान्य जनता के परिप्रेक्ष्य में सामुदायिक विकास एक शैक्षिक एवं संगठनात्मक प्रक्रिया मानी जाती है। शैक्षिक प्रक्रिया इसलिए मानी जानी है कि समुदाय के अन्तर्गत जनता के जो दृष्टिकोण और परम्पराएं विकास में बाधक हैं, वे उत्तम शैक्षिक निर्देशन से दूर हो जाती हैं। साथ ही ऐसे नवीन दृष्टिकोणों का निर्माण होता है कि समुदाय के अन्तर्गत उत्तम परिवर्तन सम्भव हो जाता है। ठीक उसी प्रकार सामुदायिक विकास संगठनात्मक प्रक्रिया इसलिए मानी जाती है कि किसी भी सामुदायिक विकास के क्षेत्र में जनता सामूहिक अभिरूचि रखती है तथा अपनी योग्यता और क्षमता का स्वयं विकास करके अपनी सेवा स्वयं कर सकने में समर्थ हो सके। फलतः सामुदायिक विकास सामाजिक एकता की ओर बढ़ने की प्रमुख प्रक्रिया हो जाती है।

सामुदायिक विकास तभी सम्भव माना जाता है जब समुदाय में रहने वाले लोगों ने अपने जीवन यापन सम्बंधी समस्त क्रियाओं में सम्भव विकास एवं परिवर्तन कर लिये हों। समुदाय में रहने वाले लोग कृषि संम्बंधी कार्यक्रम, के साथ समायोजन, स्वास्थ्य शिक्षा, राजनीतिक चेतना, विभिन्न सामाजिक रीतियाँ, सांस्कृतिक आर्थिक उत्थान, नौकरी एवं अवकाश के क्षण का सदुपयोग आदि में जब समुचित विकास करने लगते हैं तथा पुराने विचारों से दूर हटकर नवीन ज्ञान और चेतना से ओत–प्रोत होने लगते हैं तभी उनका विकास परिलक्षित होता है। वर्तमान समय में उपयुक्त तथ्य सामुदायिक विकास के महत्वपूर्ण पक्ष हैं। इन पक्षों में समुचित विकास हेतु शासकीय एवं अशासकीय प्रयास महत्वपूर्ण स्थान रखता है। केन्द्र एवं राज्य सरकारें अपनी–अपनी सीमाओं के अन्तर्गत समुचित विकास हेतु प्रयास कर रही हैं। परिणाम स्वरूप समुदाय में रहने वाले लोगों की जीवन शैली में महत्वपूर्ण परिलक्षित हो रहा है।

संसार के प्रत्येक देश में ज्यों–ज्यों वैज्ञानिक एवं प्राविधिक विकास हो रहा है उसके फलस्वरूप शैक्षिक गतिविधियों में भी परिवर्तन परिलक्षित हो रहा है। पहले शिक्षा औपचारिक ही थी परन्तु समयान्तर पाश्चात्य शिक्षा का स्वरूप औपचारिक हो गया। वर्तमान परिस्थितियों में लोगों की समस्याओं, उनके आचार–विचार तथा क्रियाकलापों से यह निश्चित हो गया है कि शिक्षा के औपचारिक तथा अनौपचारिक अभिकरणों के अतिरिक्त औपचारिकेतर

अभिकरण का भी प्रयोग किया जाए। औपचारिकेतर अभिकरण अन्य अभिकरणों की अपेक्षा जनमानस की शिक्षा के लिए महत्वपूर्ण साधन हो गया है जो उनकी समस्याओं और क्रियाकलापों में परिवर्तन कर उनके मार्ग प्रशस्त करता है।

10.9 समुदाय और शैक्षिक कार्य या कर्तव्यः–

शिक्षा के सम्बंध में समुदाय का कर्तव्य है कि वह बालकों, युवकों तथा प्रौढ़ों, स्त्रियों तथा पुरूषों, के लिए समाज के लिए उपयोगी शिक्षा की व्यवस्था करें। समुदाय उचित वातावरण प्रदान करे जिससे पूरी तौर पर शिक्षा मिल सके। समुदाय को शिक्षा के लिए सभी प्रकार की सुविधा प्रदान करनी चाहिए। समुदाय के सदस्य के सामने जो कठिनाइयाँ उपस्थित हों, उनको यथा सम्भव दूर करना चाहिए। ऐसी शिक्षा दी जाए जो समुदाय के व्यक्तियों के जीवन में काम आने वाली हो और उसे प्राप्त करके व्यक्ति अपनी और अपने समाज तथा समुदाय की उन्नति कर सके।

शिक्षा के सम्बन्ध में प्रायः दो मत दिखाई देते हैं– एक जनतांत्रिक एवं दूसरा साम्यवादी। जनतंत्र में व्यक्ति का विकास होता है। जिसके निजत्व का पूरा–पूरा ध्यान रखा जाता है। उसे इतनी स्वतंत्रता रहती है कि वह अपने रूचि और योग्यता के अनुसार अपनी पढ़ाई–लिखाई के विषयों को चुने तथा उसे अधिकार है कि उसे सभी सुविधा मिले। इस प्रकार जनतांत्रिक ढंग से समाज की उन्नति के लिए व्यक्ति की शिक्षा की व्यवस्था की जाती है। वह उन्नत शरीर, मन, बुद्धि और विचार तथा भावों वाला व्यक्ति बनता है। दूसरी ओर साम्यवादी व्यवस्था में व्यक्ति को सभी सुविधाएं मिलती हैं। उसे स्वतंत्रता भी है कि जिसके योग्य वह हो उसे पढ़े। उसे केवल इतना अवश्य विचार रखना पड़ता है कि वह साम्यवादी राष्ट्र के लिए होता है। प्रथम कर्तव्य राष्ट्र के प्रति है और राष्ट्र ही एक प्रकार से सर्वस्व है, इससे उसके निजत्व के विकास पर कुठाराघात भी होता है उसकी स्वतंत्रता सीमित कर दी जाती है। उत्तम व्यवस्था वही कहलाएगी जिसमें समाज के नियमों, रूढ़ियों, परम्पराओं और बंधनों का प्रभाव अलग रखा जाए। किसी प्रकार का अवरोध लगा कि भावना को ठेस लगी और परिणामस्वरूप व्यक्तित्व का समुचित विकास नहीं हो सकेगा। इस प्रकार के आघात और परिणाम से बचने के लिए समाज के मुखिया और नेताओं के प्रयत्नशील होना चाहिए, तभी समुदाय के व्यक्तियों की

उचित शिक्षा व्यवस्था होगी।

शिक्षा कार्य में समुदाय का महत्वपूर्ण हाथ होता है। कई दृष्टिकोणों से शिक्षा के लिए समुदाय का उत्तरदायित्व एवं कर्तव्य दिखाई देता है–

- समुदाय को शिक्षा के लिए आर्थिक सहायता देनी चाहिए, ताकि शिक्षा संस्थाएं सुचारू एवं सुदृढ़ ढंग से चलें, क्योंकि विना पर्याप्त धन के यह काम नहीं हो सकता। आर्थिक सहायता देने से समुदाय का नियंत्रण विद्यालयों पर होता है। इसलिए समाज के नेता समाज के अनुकूल उपयुक्त पाठ्यक्रम एवं संगठन की योजना बनाए और उन योजनाओं के क्रियान्वयन हेतु अपने उपयोगी सुझाव भी दें। हावर्थ का कथन है इस बात पर अधिक स्पष्ट रूप से प्रभाव डालता है। उनका कथन है कि "विद्यालय के स्वरूप सुधारने का साधन है, यह सुधार सामाजिक उन्नति की दिशा में हो यह इस साधन के प्रयोगकर्ता के ऊपन निर्भर करता है।"

(The school is an instrument for modifying the character of social whether this modification is in the direction of social improvement depends upon the ideas and ideals of those who handle the instrument.)

I.W. Howerth

इस कार्य में नागरिकों को विद्यालय के अधिकारियों के साथ सहयोग करना चाहिए।

- समुदाय का कर्तव्य है कि वह पाठ्य विशेष और अविधिक साधनों को भी पर्याप्त मात्रा में प्रदान करे। संग्रहालय, पुस्तकालय, कला–कक्ष, संगीत–नृत्य, ड्रामा केन्द्र, पत्र–पत्रिकाए, समाचार पत्र, आदि का उचित प्रबन्ध सहकारी क्रियाओं के आधार पर होना चाहिए। परिवार, समाज सेवा की संस्थाएं, नागरिक संस्थाएं इस ओर ध्यान दें जिससे यह अविधिक साधन भी क्रियाशील बने रहे। इसके अलावा शिक्षा अथवा विकास की प्रक्रिया में सहयोग देना समुदाय का कर्तव्य है।
- शरीर एवं स्वास्थ्य के विकास के लिए खेल–कूद, पार्क, सफाई, व्यायामशाला, चिकित्सा रागों की रोकथाम, खाद्य की शुद्धता आदि अन्यान्य बातों पर समुदाय ध्यान दें, व्यवस्था और सुविधाएं प्रदान करें।

- वौद्धिक विकास के लिए विद्यालय की स्थापना, आर्थिक सहायता, योग्य एवं प्रशिक्षित अध्यापकों की नियुक्ति, अच्छा वातावरण एवं स्थान, पुस्तकालय, वाचनालय, श्रव्य–दृश्य साधन, अच्छी पाठ्य पुस्तक आदि की व्यवस्था करें। समाज में सभी लोगों के लिए शिक्षा की व्यवस्था हो– शिशु, बालक, किशोर, युवा प्रौढ़ तथा स्त्री एवं पुरूष दोनों वर्गों के लिए सामान्य एवं अपंग, मन्द बुद्धि एवं तीव्र बुद्धि के लिए अलग–अलग व्यवस्था हो।
- आर्थिक दृष्टिकोण से औद्योगिक एवं व्यवसायिक शिक्षा की व्यवस्था करना समाज तथा समुदाय का कर्तव्य है, जिससे उसके सदस्य स्वतंत्र और आत्म निर्भर हो सकें।
- समाज के दोषों को दूर करना विशेषकर भारत में जहाँ छुआ–छूत का प्रश्न है, समाज के अन्य दोष बाल–विवाह, अनैतिकता, उत्सवों पर होने वाली अश्लीलता को दूर करके समारता की भावना सभी में लाएं।
- संस्कृतिक एवं कलात्मक विकास के लिए समाज में प्रचलित लोकगीत, लोक नृत्य, लोक संस्कृति, मेले और समारोहों का आयोजन होना चाहिए। संगीत एवं कला प्रतियोगिता, कलाकारों को पुरस्कार, प्राकृतिक स्थलों का विकास, प्रदर्शनी भ्रमणेच्छा आदि का विकास हो।
- नैतिक एवं धार्मिक शिक्षा विद्यालयों में ही दी जाए। ऐसी शिक्षा से सम्प्रदायिकता एवं संकीर्णता को दूर रखना चाहिए। समाज से अनैतिकता दूर करने के लिए, अनाचार और अत्याचार को रोकने के लिए पुलिस तथा कचेहरी का प्रयोग करना चाहिए। लेकिन अच्छा तो यह होगा कि समाज के अगुआ लोग स्वयं अच्छा मूल्य एवं आदर्श रखकर उदाहरण दें। अध्यापक एवं माता–पिता बालकों में उचित मनोवृत्तियाँ और धारणाएं अपने अच्छे चरित्र द्वारा स्थापित करें। समाज के लोगों का विचार प्रगतिशील हो, धर्म के सम्बन्ध में सेवा, लोक कल्याण, जनहित, परमार्थ सहिष्णुता आदि की भावना व्यावहारिक कृत्यों के द्वारा उत्पन्न की जाए। धार्मिक सम्मेलन, धार्मिक उपदेश और धार्मिक उत्सव गृह तथा विद्यालय आज के जनतांत्रिक समाज के लिए आवश्यक हैं।
- समाज में प्रत्येक माता–पिता के तथा विद्यालय को समुदाय के साथ

सहयोग करने के लिए समुदाय केन्द्रित विद्यालय बनाना चाहिए। ऐसे समुदाय केन्द्रित विद्यालय आज के जनतांत्रिक समाज के लिए आवश्यक हैं।

इस प्रकार उपरोक्त विवरण के आधार पर स्पष्ट हो जाता है कि विद्यालय की स्थापना, शिक्षा के उद्देश्यों का निर्धारण, शिक्षा पर नियन्त्रण, विद्यालयों पर नियंत्रण, शिक्षा के अनौपचारिक साधनों की व्यवस्था, सार्वभौमिक शिक्षा की व्यवस्था, नागरिकों व विद्यालयों के नेताओं से सहयोग के लिए पृष्ठभूमि तैयार करना, पाठ्यक्रम का निर्माण करना, व्यवसायिक एवं औद्योगिक शिक्षा की व्यवस्था, प्रौढ़ शिक्षा की व्यवस्था, विद्यालयों के लिए धन का प्रबन्ध और विद्यालयों में पढ़ाई के स्तर का निरीक्षण आदि समुदाय के प्रमुख शैक्षिक कार्य हैं।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

प्रश्न 6:– भारत में सामुदायिकता के विकास में तीव्रता कब से आई?

.....

प्रश्न 7:– समुदाय के किन्हीं चार कार्यों को लिखिए।

.....

10.12 सारांश:–

समुदाय समाज का एक ऐसा भाग कहा जा सकता है जो एक निश्चित क्षेत्र में रहता है और ऐसे लोग आपस में एकता की भावना रखते हैं तथा उनमें अन्तः सम्बन्ध पाया जाता है। समुदाय में कुछ उसके मूल तत्व होते हैं जिन्हें उसकी विशेषताएं कहा जाता है। वे विशेषताएं उसके स्वरूप का निर्धारण करती हैं।

समुदाय और शिक्षा घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। समुदाय शिक्षा का एक महत्वपूर्ण अभिकरण है। समुदाय बालक के शैक्षिक विकास को अनके रूप से प्रभावित करता है। शारीरिक, मानसिक, नैतिक, सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक आदि प्रकार से प्रभावित करता है। शुरू से ही भारतीयों

में सामुदायिकता की भावना रही है किन्तु स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात इसमें तीव्रता आई। इसके साथ ही साथ समुदाय के कुछ शैक्षिक कार्य एवं कर्तव्य है जिनका निर्वाह करना उसके लिए परम आवश्यक है।

10.13 बोध प्रश्नों के उत्तरः–

1. समुदाय को अंग्रेजी में कहा जाता है। जो शब्दों तथा से मिलकर बना है।

10. समुदाय को परिभाषित करते हुए **गिंसवर्ग** ने लिखा है, "सामाजिक प्राणियों के ऐसे समूह को समुदाय समझा जाता है जो सामान्य जीवन व्यतीत करता हो और जिसमें सब प्रकार के असीम, विभिन्न एवं जटिल सम्बन्ध हों। ये सम्बन्ध या तो सामान्य जीवन के परिणाम स्वरूप होते हैं या फिर ये ही सामान्य जीवन का निर्माण करते हैं।

3. समुदाय से तात्पर्य व्यक्तियों के उस समूह से होता है जो एक साथ निश्चित भू–भाग पर रहते हैं तथा आपस में किसी न किसी रूप से घनिष्ठ रूप से सम्बंधित हों।

4. समुदाय की कुछ प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं–

   i. इसका एक निश्चित भौगोलिक क्षेत्र होता है।

   ii. समुदाय पारस्परिक विश्वास पर आधारित होता है।

5. समुदाय के चार प्रमुख प्रभाव निम्न है–

   i. शारीरिक विकास पर प्रभाव।

   ii. सामाजिक प्रभाव।

   iii. मानसिक प्रभाव।

   iv. सांस्कृतिक प्रभाव।

6. भारत में सामुदायिकता के विकास में तीव्रता आजादी के पश्चात आई।

7. समुदाय के चार प्रमुख कार्य इस प्रकार हैं–

   i. विद्यालय की स्थापना।

   ii. शिक्षा पर नियंत्रण।

   iii. सार्वभौमिक शिक्षा की व्यवस्था।

   iv. पाठ्यक्रम का निर्माण करना।

इकाई– 11 सामाजिक परिवर्तन एवं गतिशीलता

इकाई की रूपरेखा

11.1 प्रस्तावना

11.2 उद्देश्य

11.3 सामाजिक परिवर्तन

11.4 परिभाषा

11.5 सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएं

11.6 सामाजिक परिवर्तन के सिद्धान्त

11.7 सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया

11.8 सामाजिक परिवर्तन और शिक्षा

11.8.1 सामाजिक परितर्वन में शिक्षा की भूमिका

11.8.2 सामाजिक परिर्वन की भूमिका

11.8.3 निष्कर्ष

11.9 सामाजिक गतिशीलता

11.10 सामाजिक गतिशीलता के प्रकार

11.10.1 उपरिमुखी और अधोमुखी सामाजिक गतिशीलता

11.10.2 समतल और शीर्षात्मक सामाजिक गतिशीलता

11.11 सामाजिक गतिशीलता को प्रभावित करने वाले कारक

11.12 सामाजिक गतिशीलता और शिक्षा

11.13 अभ्यास प्रश्न

11.14 बोध प्रश्नों के उत्तर

11.15 कुछ उपयोगी पुस्तकें

11.1 प्रस्तावना:–

प्रस्तुत इकाई 'सामाजिक परिवर्तन' और गतिशीलता' में सामाजिक परिवर्तन और गतिशीलता की विभिन्न संदर्भों में व्याख्या द्वारा इसके सम्प्रत्यय

और पड़ने वाले प्रभावों की चर्चा की गई है। इसमें परिवर्तन को निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया मानते हुए सामाजिक परिवर्तन में शिक्षा के महत्व या भूमिका को प्रतिपादित किया गया।

इस इकाई में सामाजिक गतिशीलता के सम्प्रत्यय को स्पष्ट करते हुए उसके प्रकारों तथा सामाजिक गतिशीलता को प्रभावित करने वाले कारकों के सम्बन्ध में चर्चा की गयी है और सामाजिक गतिशीलता और शिक्षा के मध्य सम्बन्धों को तलाशने का प्रयास किया गया है। एक छात्र के लिए सामाजिक परिवर्तन और गतिशीलता तथा शिक्षा से इसके सम्बन्ध को जानना अति आवश्यक है। इसी को ध्यान में रखकर इन विषयों को इस इकाई में स्थान प्रदान किया गया है।

11.2 उद्देश्यः–

इस इकाई के अध्ययन से आप इस योग्य हो जायेगे कि आपः–

- सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक गतिशीलता के सम्प्रत्यय को समझ सकेंगे।
- सामाजिक परिवर्तन के प्रक्रिया की व्याख्या कर सकेगें।
- सामाजिक गतिशीलता को प्रभावित करने वाले कारकों के विषय में जान सकेंगे।
- सामाजिक परिवर्तन में शिक्षा की भूमिका की समीक्षा कर सकेंगे।
- सामाजिक गतिशीलता और शिक्षा के मध्य सम्बन्धों की व्याख्या कर सकेंगे।

11.3 सामाजिक परिवर्तनः–

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। उसने अपने स्वभाव एवं प्रकृति के कारण सुरक्षा एवं अनकोनेक भौतिक और मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए समाज की रचना की। प्रत्येक समाज ने धीरे–धीरे अपनी संस्कृति, रीति–रिवाज, परम्पराएं तथा विशिष्टताएं विकसित कर ली हैं। इन विशिष्टताओं के कारण एक समाज दूसरे समाज से अलग हो गया, किन्तु विभिन्न समाजों की संस्कृति, रीति–रिवाज तथा सांस्कृतिक विशेषताओं के साथ ही साथ समाज में परिवर्तन होते रहे हैं। परिवर्तन प्रकृति का नियम है और चूँकि समाज उसी प्रकृति का अंग है, इसी कारण सामाजिक परिवर्तन भी

प्राकृतिक या स्वाभाविक है। किसी भी ऐसे समाज की कल्पना नहीं की जा सकती जो कि पूर्णतया स्थिर हो या जिसमें परिवर्तन होता ही न हो।

पूरे समाज को नही, समाज की केवल एक इकाई व्यक्ति को देखा जाए तो स्पष्ट होगा व्यक्ति का जीवन भी एक स्तर से दूसरे स्तर को परिवर्तित होता रहता है। पहले बचपन, फिर युववस्था, फिर वृद्धावस्था और अंत में मृत्यु। किसी भी समाज के रीति–रिवाज, रहन–सहन, परम्पराओं नीतियों तथा आचार–विचार में जो परिवर्तन होते हैं, उन्हीं को हम सामाजिक परिवर्तन कहते हैं। प्रत्येक समाज अपने स्वभाव से ही परिवर्तनशील है, यह बात दूसरी है कि किन्हीं समाजों में परिवर्तन की गति मन्द होती है, तो किन्हीं दूसरे समाजों में यह गति काफी तीव्र होती है।

सामाजिक परिवर्तन से अभिप्राय जीवन के किसी भी पक्ष में किसी भी प्रकार का परिवर्तन होना है। सामाजिक परिर्वतन में दो शब्द हैं:– 1. सामाजिक 2. परिवर्तन। 'सामाजिक' शब्द से आशय है– समाज से सम्बन्धित। मैकाइवर ने समाज को सामाजिक सम्बन्धों का जाल बताया है। 'परिवर्तन' शब्द से आशय है– 'भिन्नता का होना' प्रत्येक वस्तु का एक 'पूर्ण रूप' होता है। कुछ समय पश्चात उसमें भिन्नता आ जाती है। 'परिवर्तन' शब्द के अर्थ को स्पष्ट करते हुए 'फिक्टर' ने लिखा है कि ''संक्षेपतः पहले के अवस्था में अन्तर को परिवर्तन कहते हैं''। इसी अर्थ के संदर्भ में कहा जा सकता है कि समाज में पहले जो अवस्था या दशा थी, यदि उसमें कोई अन्तर या हेर–फेर हो जाता है तो उसे सामाजिक परिवर्तन कहेंगे। अतः सामाजिक परिवर्तन समाज में सम्बंधित होता है। कुछ समाजशास्त्रियों के अनुसार– सामाजिक परिवर्तन ढॉचे में होने वाला परिवर्तन है। परन्तु इसके विपरीत कुछ अन्य समाजशास्त्री सामाजिक सम्बन्धों में अन्तर को सामाजिक परिवर्तन कहते हैं। किन्तु वास्तव में समाज सामाजिक संगठन, ढाँचे तथा सामाजिक सम्बन्धों का मिश्रित रूप होता है। अतः समाज में परिवर्तन इन सभी भागों में होने वाला परितर्वन है।

11.4 परिभाषाः–

सामाजिक परिवर्तन के सम्प्रत्यय को स्पष्ट करने के लिए विद्वानों ने सामाजिक परिवर्तन को अपनी–अपनी तरह से परिभाषित करने का प्रयास किया है। गिलिन और गिलिन के शब्दों में–

"सामाजिक परिवर्तन को हम जीवन की स्वीकृत विधियों में होने वाले परिवर्तनों के रूप में परिभाषित कर सकते हैं।"

(We may define social change as variation from the accepted modes of life.)

'जेनसन' महोदय ने कार्य विधियों के साथ–साथ विचारों में होने वाले परिवर्तनों को भी सामाजिक परिवर्तन की सीमा में रखा है। उनके शब्दों में–

"सामाजिक परिवर्तन को व्यक्तियों की क्रियाओं ओर विचारों में होने वाले परिवर्तनों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है"।

(Social change may be defined as modification in the ways of doing and thinking of people)

मैकाइवर और पेज ने सामाजिक परिवर्तन को सामाजिक सम्बन्धों में होने वाले परिवर्तन के रूप में परिभाषित किया है। उनका स्पष्टीकरण है–

"समाजशास्त्री के रूप में हमारा प्रत्यक्ष सम्बन्ध केवल सामाजिक सम्बन्धों से होता है। इस दृष्टि से हम केवल सामाजिक सम्बन्धों में होने वाले परिवर्तन को ही सामाजिक परिर्तन मानेंगे।"

(..... our direct concern as sociologist is with social relationship . It is the change in these which alone we shall regard as social change.)

'डेविस' के शब्दों में "सामाजिक परिवर्तन से हम केवल उन्हीं परिवर्तनों को समझते हैं जो सामाजिक संगठन अर्थात समाज के ढाँचे और प्रकार्यों में ध ारित होते हैं।"

'मेरिल' तथा एल्ड्रेस के अनुसार– "सामाजिक परिवर्तन का अर्थ है कि समाज की वही संख्या में उन क्रियाओं में संलग्न है जो उन पूर्वगामी क्रियाओं से भिन्न हैं जिनमें वे या उनके निकट पूर्वज व्यरन्त हैं।"

इस प्रकार उपरोक्त परिभाषाओं से स्पष्ट है कि सामाजिक परिवर्तन समाज की एक अनिवार्यता है अर्थात प्रत्येक समाज में परिवर्तन अवश्य होते हैं। इन परिवर्तनों को स्वयं समाज भी नहीं रोक सकता है। इसलिए विद्वानों ने इन परिवर्तनों को समाज का एक अनिवार्य अंग माना है।

सामाजिक परिवर्तन समाज की सम्पूर्ण संरचना से सम्बंधित हो सकते हैं अथवा उच्च स्तरीय संस्कृति से। ये परिवर्तन मंद गति से हो सकते हैं

अथवा तीव्र गति से। परिवर्तन की अलग–अलग समाजों तथा एक ही समाज में अलग–अलग पर पृथक–पृथक हो सकती है। परिवर्तन पुरातन सामाजिक परम्पराओं से विचलित है, जिसमें समाज अपनी निकटभू की परम्पराओं से हटकर नवीन परम्पराएँ, आचार–विचार तथा धारणाएँ विकसित तथा स्वीकार करता है। परिवर्तन के यह आवश्यक नहीं कि समाज सभी परम्पराओं में परिवर्तन कर दे। कुछ भूतकालीन परम्पराएं भी चल सकती हैं। कभी–कभी समाज अपने स्वरूप का अमूल–चूल परिवर्तन भी कर देते हैं, किन्तु ऐसा बहुत कठिन व कम ही होता है।

सामाजिक परिवर्तन को परिभाषित करते हुए कह सकते हैं कि,"सामाजिक परिवर्तन का अर्थ है किसी समाज की अपनी संरचना, उसके अपने व्यवहार प्रतिमान और उसकी अपनी कार्य विधियों में परिवर्तन।"

11.5 सामाजिक परिवर्तन की विशेषताएं :–

जैसा कि स्पष्ट है कि समाज में होने वाला किसी भी प्रकार का परिवर्तन ही सामाजिक परिवर्तन है। उपरोक्त विवरण के पश्चात हमारे समक्ष सामाजिक परिवर्तन की निम्न विशेषताएं परिलक्षित होती हैं–

- **सामाजिक परिवर्तन अनिवार्य है:–** प्रत्येक समाज परिवर्तनशली होता है। यदि समाज अपने में परिवर्तन न लाए तो कभी भी प्रगति व उन्नति नहीं कर सकता है। परिवर्तन से ही परिमार्जन होता है।
- **सामाजिक परिवर्तन से ही संस्कृति परिवर्तित होती है:–** अनके समाज शास्त्रियों ने इस तथ्य को स्वीकार किया कि सामाजिक परिवर्तन तथा सांस्कृतिक परिवर्तन एक ही प्रकार के परिवर्तन के दो अलग–अलग नाम हैं।
- **यह सर्वव्यापी है:–** सामाजिक परिवर्तन विश्व के किसी एक समाज में ही घटित हो, ऐसा नहीं है, अपितु यह एक ही समय में विश्व के सभी समाजों में अनवरत चलता ही रहता है।
- **परिवर्तनों का पूर्वानुमान सम्भव नहीं है:–** यह सत्य है कि प्रत्येक समाज में सतत एवं सदैव परिवर्तन होते रहते हैं, किन्तु इन परिवर्तनों की पूर्व भविष्यवाणी नहीं की जा सकती है और न ही उसके सम्बन्ध में पूर्वानुमान ही लगाए जा सकते हैं।
- **सामाजिक परिवर्तन एक जटिल प्रक्रिया है:–** प्रत्येक समाज में

नित नये–नये परिवर्तन होते रहते हैं, किन्तु ये परिवर्तन किस कारण से होते हैं, इसका स्रोत क्या है, ये किस प्रकार घटित होते हैं तथा किसी एक विशिष्ट परिवर्तन का अंतिम स्थल क्या होगा, हम नहीं जानते हैं।

- **परिवर्तन की गति में अन्तर होता है:–** जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, प्रत्येक समाज में होने वाले परिवर्तनों की गति पृथक–पृथक होती है। कुछ समाजों में परिवर्तन की गति बड़ी तेज होती है जबकि कुछ समाजों में यह अत्यन्त ही मन्द होती है।
- **सामाजिक परिवर्तनों का स्वभाव गुणात्मक होता है:–** सामाजिक परिवर्तन अपने स्वभाव में गुणात्मक होते हैं अर्थात सामाजिक परिवर्तनों की एक स्थिति समाज के दूसरे पहलुओं को प्रभावित करती है और दूसरी स्थिति तीसरे पहलुओं को।
- **सामाजिक परिवर्तन सामाजिक उद्विकास है:–** प्रसिद्ध समाजशास्त्री स्पेन्स का मत है कि प्रत्येक सामाजिक परिवर्तन जो समाज को उन्नति व परिमार्जन की ओर अग्रसर कर सामाजिक संस्कृति को शुद्ध एवं उपयोगी रूप प्रदान करता है, उद्विकास होता है।
- **सामाजिक परिवर्तन सामुदायिक परिवर्तन से सम्बद्ध होता है:–** वास्तव में सामाजिक परिवर्तन का सम्बन्ध किसी व्यक्ति विशेष के जीवन में होने वाले परिवर्तनों से नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण समुदाय के जीवन में होने वाले परिवर्तनों से है। सामाजिक परिवर्तन इसी अर्थ में सामाजिक है।
- **सामाजिक परिवर्तन की गति समय–कारक से प्रभावित होती है:–** इसका अर्थ यह है कि किसी भी समाज में प्रत्येक समय, काल या युग में परिवर्तन की गति समान नहीं होती। इसका कारण भी स्पष्ट ही है और वह यह है कि सामाजिक परिवर्तन लाने वाले कारकों का प्रभाव सदा एक सा नहीं बना रहता। समय के साथ–साथ इन कारकों के प्रभावों में भी परिवर्तन हो सकता है और होता भी है। इसलिए समय के साथ–साथ सामाजिक परिवर्तन की गति में भी परिवर्तन होता रहता हैं।
- **सामाजिक परिवर्तन की धारणा तुलनात्मक है:–** हम यह जानते

हैं कि अलग–अलग समाज की अपनी–अपनी परिस्थितियाँ, आधार तथा उपलब्धियाँ होती हैं और इसलिए सभी समाजों को सभी रूप में समान नहीं माना जा सकता। यही कारण है कि सामाजिक परिवर्तन की प्रकृति भी सभी समाजों में एक जैसी नहीं होती। दूसरे शब्दों में, सभी समाज अलग–अलग होते हैं, क्योंकि प्रत्येक समाज की अपनी विशेषताएं, परिस्थितियाँ एवं प्रतिक्रियाएं अलग–अलग होती है। यह पृथकता एक ही समय में देखी जा सकती है, या फिर अलग–अलग समय, काल या युग के संदर्भ में भी इन भिन्नताओं को दर्शाया जा सकता है और इसलिए इन समाजों में घटित होन वाले सामाजिक परिवर्तनों का तुलनात्मक अध्ययन भी किया जा सकता है। अतः स्पष्ट है कि सामाजिक परिवर्तन की धारणा तुलनात्मक है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

प्रश्न 1:– सामाजिक परितर्वन से आप क्या समझते हैं?

.....

प्रश्न 2:– सामाजिक परिवर्तन की किन्हीं चार विशेषताओं को लिखिए।

.....

11.6 सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रियाः–

परिवर्तन एक निरंतन चलने वाली प्रक्रिया है। संसार की समस्त वस्तुएं, विचार, सभ्यता, संस्कृति, सिद्धान्त परिवर्तनशील है। जो स्थिति दस वर्ष पूर्व थी वह आज नहीं है और जो स्थिति आज है वह दस वर्ष उपरांन्त नहीं होगी। उसमें परिवर्तन आएगा। परिवर्तन का जीवन है। केवल दो ही वस्तुएं ऐसी हैं जिन्हें हम परिवर्तनशील नहीं कह सकते। ये दोना 'वस्तु' (matter) और 'शक्ति' (energy) हैं।

समाज के संगठन में होने वाला कोई भी परितर्वन सामाजिक परिवर्तन कहलाता है। अब हमारे समक्ष यह प्रश्न उठता है कि क्या यह सामाजिक परिवर्तन एकाएक ही जाता है। इसके उत्तर में हम कहेंगे 'नहीं' समाज में कोई

भी परिवर्तन एकाएक या अचानक नहीं होता है वरन वह एक प्रक्रिया का परिणाम होता है। विद्वानों ने सामाजिक परिर्तन की प्रक्रिया को इस प्रकार से प्रस्तुत की है–

व्यक्तियों के अनुभवों में परिवर्तन

↓

व्यक्तियों की अभिवृत्तियों में परिवर्तन

व्यक्तियों के विचारों में परिवर्तन

सामाजिक अन्तःक्रिया में परिवर्तन

सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन

सामाजिक संरचना में परिवर्तन

सामाजिक परिवर्तन

सामाजिक परिवर्तन की उपरोक्त प्रक्रिया के अनुसार सर्वप्रथम व्यक्तियों के अनुभवों में परिवर्तन होता है। इसके पश्चात उनकी अभिवृत्तियों में बदलाव आता है। इसके परिणाम स्वरूप व्यक्तियों के विचारों में परिवर्तन हो जाता है। विचारों में परिवर्तन के परिणाम स्वरूप सामाजिक अन्तःक्रिया में परिवर्तन हो जाता है। अंतःक्रिया में परिवर्तन के पश्चात सामाजिक सम्बन्धों में बदलाव हो जाता है। सामाजिक सम्बन्धों के बदल जाने से सामाजिक संरचना परिवर्तित हो जाती है। और इस प्रकार सामाजिक संरचना में परिवर्तन हो जाना ही सामाजिक परिवर्तन कहलाता है। यही सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया है।

11.7 सामाजिक परिवर्तन और शिक्षा:– शिक्षा और सामाजिक परिवर्तन में गहरा सम्बन्ध है। कोई भी समाज अपनी आवश्यकताओं और आकांक्षाओं की पूर्ति शिक्षा द्वारा ही करता है। सामाजिक दृष्टि से शिक्षा के समस्त कार्यों को

दो वर्गों में अभिव्यक्त किया जा सकता है– एक सामाजिक नियन्त्रण और दूसरा सामाजिक परिवर्तन। सामाजिक नियंत्रण का अर्थ है समाज की संरचना, उसके व्यवहार प्रतिमानों और कार्य विधि की सुरक्षा और सामाजिक परिवर्तन का अर्थ है समाज की संरचना उसके व्यवहार प्रतिमानों और कार्यविधियों में परिवर्तन।

शिक्षा के सम्बन्ध में दूसरी बात यह है कि यह एक गतिशील प्रक्रिया है। यह समाज में होने वाले परिवर्तनों को स्वीकार करती हुई आगे बढ़ती है और बदलते हुए समाज की आवश्यकताओं की पूर्ति में मनुष्य की सहायता करती है। इसे दूसरे शब्दों में इस प्रकार कहा जा सकता है कि सामाजिक परिवर्तन शिक्षा के स्वरूप, उसके उद्देश्य और पाठ्चर्या आदि सभी को बदलते हैं। इस प्रकार शिक्षा सामाजिक परिवर्तन करती है और सामाजिक परिवर्तन शिक्षा को प्रभावित करते हैं और यह चक्र सदैव चलता रहता है।

11.7.1 सामाजिक परिवर्तन में शिक्षा की भूमिकाः–

शिक्षा परिवर्तन का एक शक्तिशाली माध्यम है एवं साधन है। शिक्षा विविध उपायों तथा प्रभावों से सामाजिक परिवर्तन लाती है तथा सामाजिक परिवर्तन की गति को तीव्र करती है। सामाजिक परिवर्तन के लिए उत्तरदायी घटकों के विकास का मूल कारण शिक्षा ही होती है। अगर हम मनुष्य की विकास–प्रक्रिया के सम्बन्ध में विचार करें तो यह बात स्पष्ट हो जाएगी।

मनुष्य विकास कैसे करता है? पहले तो वह अपनी जाति की सामाजिक चेतना में भाग लेता है और उसकी भाषा रहन–सहन और खान–पान के तरीकों, रीति–रिवाज और मान्यताओं, विश्वासों, आदर्शों और मूल्यों से परिचित होता है। इन सबके ज्ञान के लिए सभी सभ्य समाज औपचारिक शिक्षा की व्यवस्था करते हैं। इस शिक्षा से मनुष्य का मानसिक विकास होता है वह अपने तथा समाज के और इस पूरे संसार के बारे में सदैव सोचता रहता है। समाज में रहकर वह अनेक अनुभूतियाँ करता है और यदि संवेदनशील होता है तो समाज की आवश्यकताओं और समस्याओं की अनुभूति भी करता है। इन आवश्कताओं की पूर्ति और समस्याओं के हल के लिए वह विचार करता है और उनके हल खोजता है और इसके समाज को प्रभावित करता है। शिक्षा के अभाव में यह सब कार्य सम्भव नहीं है।

संसार के इतिहास पर दृष्टिपात करने पर इस सत्य का समर्थन होता है कि हमारे देश में प्राचीन काल की शिक्षा धर्म प्रधान थी, उनकी पाठ्यचर्या में धर्म और नैतिकता मुख्य विषय थे और इनकी शिक्षा पर ही सबसे अधिक बल दिया जाता था। परिणामतः समाज में भी धर्म का बोल–बाला था, और लोगों का भौतिक अर्थात सामाजिक जीवन भी उससे प्रभावित था। आत्मा परमात्मा के अस्तित्व को अस्वीकार कर चार्वाकों ने जो शिक्षाएं दी उससे खाओ–पिओ और मस्त रहो का विचार सामने आया और लोग इस भौतिक सुख को ही सुख समझने लगे और तब समाज का रूप पहले से भिन्न हो गया। बौद्ध धर्म की शिक्षाओं का अशोक महान पर क्या प्रभाव पड़ा? इससे हम सभी लोग परिचित हैं। खून–खराबे द्वारा अपने प्रभुत्व का विस्तार करने वाला समाज सहअस्तित्व के सिद्धान्त में विश्वास करने लगा था। इसकी बात तो छोड़िये, इस युग पर दृष्टिपात करने से भी इस सत्य का समर्थन होता है। अंग्रेज भारत में आये, उन्होंने अंग्रेजी पढ़े–लिखे बावू तैयार करने शुरू किये। उनके द्वारा जिस शिक्षा का विधान हुआ, उसने हमारे दृष्टिकोण में भारी परिवर्तन किया, परिणामतः हमारे समाज में भी परिवर्तन हुआ। इस शिक्षा ने धार्मिक अंधविस्वासों, जातीय संकीर्णता और ज्ञान के क्षेत्र की कूपमंडूकता को समाप्त किया और देश में जागृति की लहर दौड़ गई और अनेक सामाजिक बुराइयों, जैसे– सती प्रथा, बाल–विवाह, अनमेल विवाह, मृत भोज आदि का अन्त हो गया। स्वतत्रता प्राप्ति के बाद हमने वर्गहीन एवं धर्म निरपेक्ष समाज के निर्माण का वीड़ा उठाया है और यह कार्य हम शिक्षा के द्वारा ही कर सकते हैं और कर रहे हैं।

अपने देश की भाँति अन्य देशों का इतिहास भी इस बात का साक्षी है कि शिक्षा द्वारा सामाजिक परिवर्तन हुए हैं और हो रहे हैं। रूस में 1917 के बाद सामाजिक परिवर्तन करने के लिए शिक्षा का सहारा लिया गया था और द्वितीय विश्वयुद्ध में वे अपनी संस्कृति की रक्षा के लिए लड़े थे। फ्रांस का तानाशाह नेपोलियन विद्यालयों को सामाजिक परिवर्तन का मुख्य अभिकरण मानता था। उसने अपने विचारों का प्रसार शिक्षा के द्वारा ही किया था। और उसी की सहायता से अपने समाज का स्वरूप बदला था। जर्मनी में हिटलर ने नाजीवाद का प्रचार शिक्षा के द्वारा ही किया था। इसी कारण द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद जर्मनी ने स्कूलों के 30 प्रतिशत अध्यापक बदल दिये गये

थे।

11.7.2 सामाजिक परिवर्तन की भूमिकाः–

एक ओर यदि यह बात सही है कि शिक्षा सामाजिक परिवर्तन करती है तो दूसरी ओर यह बात भी वही है कि सामाजिक परिवर्तन शिक्षा को प्रभावित करते हैं। समाजशास्त्री 'ओटावे' इन दोनों बातों में दूसरी बात के अधिक समर्थक हैं। उनके अपने शब्दों में– कभी–कभी यह कहा जाता है कि शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का एक कारण है। इसका विपरीत अधिक सत्य है। शैक्षिक परिवर्तन अन्य सामाजिक परिवर्तन करने के बजाए उनका अनुगमन करता है। यह बात भी स्वयं सिद्ध है, पहली बात तो यह है कि प्रत्येक समाज अपनी शिक्षा का निर्माण स्वयं करता है। अतः उसका स्वरूप भी वैसा ही होता है जेसा समाज होता है। अब यदि समाज में कुछ परिवर्तन आते हैं तो वह समाज अपनी शिक्षा को उसी के अनुरूप बदलने का प्रयत्न करता है। अतः स्पष्ट है कि सामाजिक परिवर्तन शिक्षा को प्रभावित करते हैं।

विश्व का इतिहास इस बात का साक्षी है। हमारे प्राचीन भारत में धर्म प्रधान समाज था। इसलिए इस समय की शिक्षा भी धर्म प्रधान थी और धर्म उस समय पाठ्यचर्या का मुख्य विषय था। मध्यकाल रूप में समाज के स्वरूप में विशेष परिवर्तन नहीं हुआ, इसलिए शिक्षा भी उसी रूप में चलती रही। आधुनिक युग में हमारे समाज का स्वरूप एकदम बदला है। इस सामाजिक परिवर्तन के कारण शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यचर्या और शिक्षण विधियाँ आदि सभी में परिवर्तन हुआ। अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा, जन शिक्षा, स्त्री शिक्षा, कृषि शिक्षा, तकनीकी शिक्षा और पौढ़ शिक्षा पर अब विशेष बल दिया जा रहा है। पत्राचार, शिक्षण मशीनों, रेडियो, टेलीविजन और कम्प्यूटर द्वारा शिक्षा का प्रचार इस युग की एकदम नई देन है। दूसरे देशों की भी यही कहानी है। युरोप में वैज्ञानिक आविष्कारों और तकनीकी विकास ने वहाँ की सभ्यता और संस्कृति को बहुत अधिक प्रभावित किया है। सम्पूर्ण यूरोप का झुकाव भौतिकवाद की ओर हो गया है। परिणामतः उन देशों की शिक्षा उद्योग प्रधान हो गई है। आज वहाँ शिक्षा में विज्ञान एवं अन्य औद्योगिक विषयों को मुख्य स्थान दिया जाता है और उदार शिक्षा की तरफ अपेक्षाकृत कम ध्यान दिया जाता है। आवागमन के साधनों ने संसार को सीमा में बाँध दिया है, अब वह बहुत छोटा हो गया है। आज देश के सामाजिक परिवर्तनों का दूसरे देश पर बहुत शीघ्र प्रभाव पड़ता है। यही कारण है कि

हमारा भारतीय समाज भी भौतिकवादी होता जा रहा है और हमारी शिक्षा में विज्ञान और उद्योग की शिक्षा पर अधिक बल दिया जाने लगा है।

11.7.3 निष्कर्ष:–

निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि शिक्षा सामाजिक परिवर्तन करती है और सामाजिक परिवर्तन शिक्षा को प्रभावित करते हैं और ये दोनों बात आपस में उतनी ही सत्य हैं जितनी यह कि मुर्गा–मुर्गी से अण्डा पैदा होता है और अण्डे से मुर्गी–मुर्गा पैदा होते हैं। शिक्षा द्वारा सामाजिक परिवर्तन और सामाजिक परिवर्तन द्वारा शिक्षा में परिवर्तन का चक्र सदैव चलता रहता है। जिस समाज में यह चक्र जितना तीव्र गति से चलता है वह समाज उतना ही अधिक प्रगतिशील रहता है। सामाजिक परिवर्तन के संदर्भ में शिक्षा का अर्थ विद्यालयी शिक्षा और जन–संचार के साधनों, धार्मिक संस्थाओं एवं अन्य सामाजिक संगठनों द्वारा दी जाने वाली शिक्षा से होता है। इनमें विद्यालयों और जनसंचार के माध्यमों से दी जाने वाली शिक्षा पर आज हमारे राज्य का अधिकार है। अतः हम सामाजिक परिवर्तन में इन दोनों की भूमिका और भारत के आधुनीकीकरण में इनकी आपेक्षित भूमिका का वर्णन करना आवश्यक समझते हैं।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

प्रश्न 3:– सामाजिक परिवर्तन का एक शक्तिशाली साधन क्या है?

.....

प्रश्न 4:– शिक्षा किस प्रकार से सामाजिक परिवर्तन लाती है? अपने विचारों को अधिकतम 50 शब्दों में समझाइए।

.....

11.8 सामाजिक गतिशीलता:–

प्रत्येक समाज का अपना एक स्वरूप एवं गठन होता है और उसमें भिन्न–भिन्न व्यक्तियों एवं समूहों के भिन्न–भिन्न सामाजिक स्तर होते हैं। समाज

किसी भी प्रकार का क्यों न हो परन्तु उसके व्यक्तियों एवं समूहों के सामाजिक स्तरों में परिवर्तन होता रहता है, यह दूसरी बात है कि कुछ समाजों में इस परिवर्तन के लिए अधिक अवसर होते हैं और कुछ समाजों में कम। व्यक्ति अथवा समूहों के सामाजिक स्तर में होने वाले परिवर्तन को ही समाज शास्त्रीय भाषा में सामाजिक गतिशीलता कहा जाता है।

अर्थात सामाजिक गतिशीलता से तात्पर्य है– एक सामाजिक समूह से दूसरे सामाजिक समूह की ओर व्यक्तियों की गतिशीलता। अर्थात किसी व्यक्ति या समूह के सामाजिक पद या स्थान में परिवर्तन। सामाजिक व्यवस्था में उच्च अथवा निम्न पद होते हैं। व्यक्ति अवसरों की समानता का उपभोग कर जब योग्यताओं व क्षमताओं का विकास कर उच्च सामाजिक स्थिति प्राप्त करता है तो यह परिवर्तन सामाजिक गतिशीलता कहलाता है। प्रत्येक समाज अपने नागरिकों की गतिशीलता के समन्वित अवसर उपलब्ध करवाता है। जो व्यक्ति उन अवसरों का वास्तव में लाभ उठाकर अपनी सामाजिक स्थिति उच्च या निम्न बनाता है, इसे ही सामाजिक गतिशीलता के नाम से पुकारा जाता है। इसे दूसरे शब्दों में इस प्रकार से कह सकते हैं कि सामाजिक गतिशीलता का अभिप्राय है सामाजिक रूप से व्यक्ति या समूह द्वारा अपनी स्थिति में परिवर्तन करना।

'सोरोकिन' ने इसे परिभाषित करते हुए कहा है, "सामाजिक गतिशीलता का अर्थ है सामाजिक समूहों तथा स्तरों में किसी व्यक्ति का एक सामाजिक स्थिति से दूसरी सामाजिक स्थिति में पहुँच जाना।"

(By social mobility is meant any transition of an individual from one social position to another in conciliation of social group and strata.)

मिलर और बुक के अनुसार, "व्यक्तियों अथवा समूह का एक सामाजिक ढ़ाचे से दूसरे ढाँचे में संचालन होना ही सामाजिक गतिशीलता है।"

(Social mobility is a movement of individuals or groups from one social class stratum to another)

11.9 सामाजिक गतिशीलता के प्रकार:–

सामाजिक गतिशीलता को विद्वानों ने निम्न प्रकारों में विभक्त किया है–

सामाजिक गतिशीलता

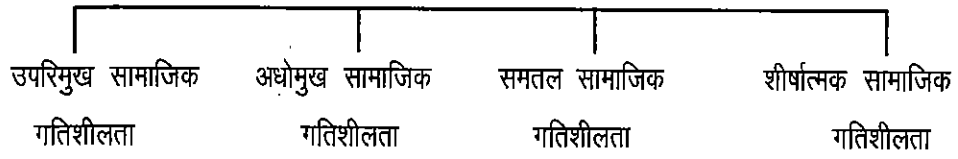

11.9.1 उपरिमुखी और अधोमुखी सामाजिक गतिशीलताः–

जब हम व्यक्ति अथवा समूह के सामाजिक स्तर में परिवर्तन की बात करते हैं तो यह परिवर्तन किसी भी दिशा में हो सकता है– व्यक्ति अथवा समूह निम्न सामाजिक स्तर से उच्च सामाजिक स्तर पर भी पहुँच सकता है और सामाजिक स्तर से निम्न सामाजिक स्तर पर भी आ सकता है। किसी व्यक्ति या समूह के निम्न सामाजिक स्तर से उच्च सामाजिक स्तर पर पहुँचने की प्रक्रिया को उपरिमुखी सामाजिक गतिशीलता कहते हैं और उसके उच्च सामाजिक स्तर से निम्न स्तर पर पहुँचने की प्रक्रिया अधोमुखी सामाजिक गतिशीलता कहते हैं।

11.9.2 समतल तथा शीर्षात्मक सामाजिक गतिशीलताः–

समतल सामाजिक गतिशीलता में भौगोलिक गति होती है अर्थात जब एक ही धरातल पर स्थिति या स्थान परिवर्तन किया जाता है वह समतल स्थिति वाले वर्गों या समूहों में होता है, तो वह परिवर्तन समतल सामाजिक गतिशीलता के क्षेत्र में आता है। इस गतिशीलता में स्थान में परिवर्तन होता है, पद में परिवर्तन नहीं होता है। उदाहरण के रूप में, जब किसी छोटे गाँव के स्कूल के अध्यापक का तबादला बड़े शहरों में होता है तो उससे स्थिति में बदलाव आता है। दूसरे शब्दों में, भौगोलिक स्थिति से परिवर्तन आने पर भी जब पद तथा आर्थिक, सामाजिक स्थिति पूर्ववत रहती है तो इसे समतल सामाजिक गतिशीलता कहते हैं।

शीर्षात्मक गतिशीलता में व्यक्ति एक सामाजिक पद या स्थिति से दूसरे सामाजिक पद या स्थिति पर जाता है। इसमें स्थिति या पद का परिवर्तन होता है। इसमें एक व्यक्ति या समूह की ऐसी गत्यात्यामकता शाामिल होती है जिसमें उसकी आर्थिक या सामाजिक स्थिति में उच्चता या भिन्नता आती ही है। शीर्षात्मक सामाजिक गतिशीलता में परिवर्तन उच्च स्थिति में भी हो सकता है तथा निम्न स्थिति में भी हो सकता है। अतः उच्च

से निम्न तथा निम्न से उच्च सामाजिक पद या स्थिति में आने या जाने की शीर्षात्मक गतिशीलता कहते हैं।

11.10 सामाजिक गतिशीलता को प्रभावित करने वाले कारकः—

सामाजिक गतिशीलता को प्रभावित करने वाले कारकों का वर्णन हम निम्न प्रकार से कर सकते हैंः—

- **जनसंख्या संरचनाः—** सामाजिक गतिशीलता को जनसंख्या का आकार व वितरण काफी हद तक प्रभावित करता है। यह स्वाभाविक वर्ग स्थिति में परिवर्तन का महत्वपूर्ण पहलू है। भौतिकवाद की बढ़ती प्रवृत्ति तथा उच्च जीवन यापन की लालसा ग्रामीणों को शहरों व उद्योगों की ओर आकर्षित कर रही है। अतः ग्रामीण शहरों की ओर भागते नजर आ रहे हैं। इसका परिणाम यह होता है कि ये लोग शहरों व औद्योगिक प्रष्ठिानों में छोटा—बड़ा, ऊँचा—नीचा जैसा भी काम मिल जाता है उसे स्वीकार कर लेते हैं। फलस्वरूप उन स्थानों पर पहले से कार्यरत लोगों की सामाजिक स्थिति उच्च हो जाती है। इस प्रकार ग्रामीणों के स्थानान्तरण के फलस्वरूप सामाजिक गतिशीलता काफी हद तक प्रभावित हुई है।

- **सामाजिक वर्ग स्थितिः—** सामान्यतः देखने में आता है कि उद्योग प्रधान राष्ट्रों के परिवारों के आकार तथा वहाँ प्रचलित वर्ग स्थिति में असमानता अधिक पाई जाती है। कारण यह है कि प्रत्येक देश व समाज में जहाँ निम्न वर्ग व जातियों के लोग रहते हैं, वे शिक्षा के अभाव में वास्तविक मूल्यों से अनभिग्य रहते हैं। ऐसे लोगों के परिवार में संख्या अनुपातन शिक्षित लोगों व उच्च वर्ग वालों से कहीं अधिक पाया जाता है। इस विकास क्रम के फलस्वरूप मध्यम व उच्च वर्ग के परिवार सीमित रहते हैं और जब सामाजिक वर्ग स्थिति में पद बढ़ते हैं तो इसका लाभ सदैव निम्न वर्ग के लोगों को प्राप्त होता है। इस प्रकार सामाजिक वर्ग स्थिति में परिवर्तन से सामाजिक गतिशीलता को बल मिलता है।

- **पद की स्थिति में बदलावः—** आज सर्वत्र ज्ञान में विस्फोट नजर आता है। आधुनिक ज्ञान व तकनीकी क्षेत्रों में क्रान्तिकारी परिवर्तन होते हैं जिससे समाज व राष्ट्र का कायाकल्प हो गया है, जिसमें

सामाजिक कतिशीलता को प्रभावित किया है। आज के आधुनिक युग में पदों की महत्ता के स्रोत ने पराकाष्ठा की हद को बढ़ाया है। आज प्रत्येक देश के समाज में अन्य सामाजिक स्थिति व पदों की अपेक्षा वैज्ञानिक स्थान को उच्च माना जाता है।

- **अवसर संरचनाः–** भारतीय समाज की एक प्रमुख विशेषता वर्ग व्यवस्था रही है। समाज के प्रमुख चार वर्गों में प्रत्येक वर्ग का अधिकार क्षेत्र अलग–अलग था। प्रत्येक वर्ग निश्चित धर्म का पालन करता हुआ अपने परिवीक्षण में जीवन यापन करता था। दूसरे वर्ग के क्षेत्रों में प्रवेश निषिद्ध था। परन्तु कालान्तर में जातीय प्रथा की कट्टरता समाप्त भी हो गई। वर्तमान में वंशानुगत सामाजिक पद लुप्त प्राय हैं। इनका स्थान व्यक्ति की योग्यता व क्षमताओं ने ले लिया है। इस आधार पर निर्धन परिवार तथा निम्न जाति का व्यक्ति भी उच्च से उच्च सामाजिक पदों को पाने का हकदार बन गया है। आज भारत में हरिजन राष्ट्रपति बन सकता है, कलक्टर बन सकता है, डाक्ट, इन्जीनियर बन सकता है, परन्तु इन पदों की स्थिति का अवसर व्यक्ति अपनी योग्ता व क्षमता का उचित प्रदर्शन करके ही प्राप्त कर सकता है।

- **आर्थिक सम्पन्नताः–** आर्थिक दृष्टि से समाज में तीन वर्ग– धनिक, मध्यम तथा निम्न पाये जाते हैं। उपर्युक्त तीनों वर्गों के सामाजिक स्तर में भिन्नता पाई जाती है। आधुनिक सामाजिक व्यवस्था में धन का महत्व बढ़ने के कारण धनिकों को समाज में उच्च दृष्टि से देखा जाता है। फलस्वरूप उपर्युक्त मापदण्ड को जीवन का उद्देश्य मानते हुए प्रत्येक वर्ग के लोग अधिकाधिक अर्थ–प्राप्ति करने के लिए प्रयत्नशील हैं। अर्थ–प्राप्ति के लिए देश में जबरदस्त प्रतियोगिता काल चल रहा है। आज प्रत्येक व्यक्ति इस प्रतियोगिता की दोड़ लगाकर उच्च सामाजिक स्थिति पाना चाहता है। इस प्रकार आर्थिक उन्नति सामाजिक गतिशीलता को बढ़ावा दे रही है।

- **व्यावसायिक प्रतिष्ठाः–** समाज में आज अनेक प्रकार के व्यवसायों का ताना–बाना बुना हुआ है। प्रत्येक व्यवसाय हलांकि अपना अलग महत्व रखता है फिर भी प्रत्येक व्यवसाय की प्रतिष्ठा अलग–अलग

प्रकार की होती है। फलतः आज व्यक्ति उन व्यवसायों की ओर आकर्षित होता है जिनको सामाजिक दृष्टि से उच्च माना जाता है। अध्ययन व्यवसाय जिसे प्राचीन समय में सबसे अधिक उच्च कार्य माना जाता था, आज इस व्यवसाय की गरिमा में अन्तर आ गया है। आज का शिक्षक येन–केन प्रकारेन अध्ययन व्यवसाय से मुक्ति पाकर प्रशासनिक व्यवसायों की ओर आकर्षित हुआ नजर आता है। इस कारण ही आज व्यवसायिक उन्नति नजर जा रही है।

- **शिक्षाः–** व्यक्ति के व्यक्तित्व के निर्माण में शिक्षा सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। शिक्षा के द्वारा ही व्यक्ति अपनी रूचियों, योग्यताओं व क्षमताओं को विकसित करता है। योग्य शिक्षा व्यक्ति की अन्तर्निहित शक्तियों को विकसित करने का अवसर प्रदान करती हैं। शिक्षा रूपी अस्त्र का सहारा लेकर आज व्यक्ति सामाजिक स्थिति उच्च बनाने के लिए प्रयतनशील नजर आ रहा है। इस प्रकार की प्रयत्नशीलता सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि करती है।

- **शासन व्यवस्थाः–** प्रत्येक देश की शासन व्यवस्था उस देश की सामाजिक गतिशीलता को आवश्यक रूप से प्रभावित करती है। भारत में प्रजातांत्रिक शासन प्रणाली को अपनाया गया है। प्रजातंत्र का मूल आधार व्यक्ति की स्वतंत्रता तथा व्यक्ति के व्यक्तित्व का आदर करना एवं व्यक्ति को विकास के समुचित अवसर प्रदान करना होता है। अतः प्रजातंत्रात्मक शासन व्यवस्था में सामाजिक गतिशीलता के अवसर अधिक उपलब्ध होते हैं।

- **महत्वाकांक्षाः–** मनुष्य की आकांक्षाएं असीमित होती हैं। आकांक्षा मानव स्वभाव का महत्वपूर्ण पहलू है। कुछ मनुष्य तो स्वभाव से ही महात्वाकांक्षी होते हैं। वे प्रतिदिन उच्च से उच्चतम् स्थिति प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील बने रहते हैं। जो महत्वाकांक्षी व्यक्ति होते हैं साथ में बुद्धि व चातुर्य गुण होता है, वे समाज में उच्च पदों को प्राप्त कर लेते हैं। अतः स्पष्ट है कि महत्वाकांक्षा सामाजिक गतिशीलता को प्रभावित करने वाला प्रमुख कारक है।

11.11 सामाजिक गतिशीलता और शिक्षाः–

शिक्षा सामाजिक गतिशीलता का आधारभूत साधन एवं घटक है। किसी समाज में सामाजिक गतिशीलता की मात्रा इस बात पर निर्भर करती है कि उस समाज में सार्वभौमिक अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा को किस स्तर तक सुलभ कराया गया है। उच्च शिक्षा के पाठ्यक्रम में कितनी विविधता है, वैज्ञानिक एवं तकनीकी शिक्षा की कैसी व्यवस्था है, व्यवसायिक शिक्षा पर कितना बल दिया गया है, शिक्षा समाज की माँगों की पूर्ति किस सीमा तक करती है और शिक्षा के अवसर किस सीमा तक सुलभ हैं आदि यहाँ इस सब का संक्षेप में वर्णन प्रस्तुत है:–

- **सार्वभौमिक निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा की सीमाः**– यह तथ्य सर्वविदित है कि किस समाज में सार्वभौमिक, अनिवार्य और निःशुल्क शिक्षा की व्यवस्था जितनी दीर्घकालीन और प्रभावी होती है उस समाज में उतनी ही अधिक सामाजिक गतिशीलता होती है। शिक्षा से मनुष्य में जागरूकता आती है, वह समाज में अपने स्तर को उठाने के लिए प्रयत्नशील होता है और वह अपनी योग्यता और क्षमता के अनुसार आगे बढ़ता है।

- **उच्च शिक्षा की व्यवस्थाः**– सामाजिक गतिशीलता के बढ़ाने के लिए समाज में उच्च शिक्षा की व्यवस्था आवश्यक होती है। उच्च शिक्षा प्राप्त व्यक्ति को समाज में ऊँचे–ऊँचे पद प्राप्त होते हैं। जब तक निम्न सामाजिक स्तर के बच्चों को उच्च शिक्षा प्राप्त करने के अवसर प्राप्त नहीं होते तब तक वे उच्च पदों पर कैसे पहुँच सकते हैं। उच्च शिक्षा के अभाव में उच्च सामाजिक स्तर के बच्चों का निम्न सामाजिक स्तर पर आना भी निश्चित होता है।

- **पाठ्यक्रम की विविधताः**– उचित शिक्षा का अर्थ है बच्चों को अपनी योग्यता एवं क्षमता के अनुसार विकास करने का अवसर प्रदान करना है। इसके लिए सामान्य शिक्षा की समाप्ति पर शिक्षा के पाठ्यक्रम में विविधता होनी चाहिए। जिस समय की शिक्षा में जितने अधिक प्रकार के पाठ्यक्रम होते हैं, उस समाज में व्यक्ति को अपनी योग्यता और क्षमता के अनुसार विकास करने के उतने ही अधिक अवसर होते हैं

और वह एक सामाजिक स्तर से दूसरे सामाजिक स्तर को प्राप्त करता है।

- **व्यावसायिक शिक्षा की व्यवस्थाः–** केवल साहित्यिक एवं सैद्धान्तिक शिक्षा से सामाजिक गतिशीलता नहीं बढ़ाई जा सकतीं इसके लिए व्यवसायिक शिक्षा की आवश्यकता होती है। जिस समाज में जितने अधिक व्यवसायों की शिक्षा दी जाती है उस समाज में सामाजिक गतिशीलता उतनी ही अधिक होती है।

- **वैज्ञानिक एवं तकनीकी शिक्षाः–** उद्योग प्रधान समाजों में सामाजिक गतिशीलता सर्वाधिक होती है। उद्योग को स्थपित एवं विकसित करने के लिए जहाँ कच्चे माल की आवश्यकता होती है वहाँ प्रशिक्षित कर्मकारों, इंजीनियरों तथा तकनीशियनों, की भी आवश्यकता होती है। दूसरी चीज की पूर्ति शिक्षा करती है। जिस समाज में विज्ञान और तकनीकी शिक्षा की जितनी अच्छी व्यवस्था होती है उस समाज में उतने ही अच्छे कर्मकार इंजीनियर और तकनीशियन तैयार होते हैं और वे अपनी योग्यतानुसार विकास करते हैं और योग्यता के अभाव में पीछे रह जाते हैं। इस प्रकार उनके सामाजिक स्तर में परिवर्तन होता है।

- **समाज की माँगों की पूर्तिः–** शिक्षा और सामाजिक गतिशीलता के संदर्भ में यह बात भी आवश्यक है कि शिक्षा समाज की माँगों की पूर्ति किस सीमा तक करती है। यदि समाज में माँग हो इंजीनियरों की और शिक्षा के द्वारा तैयार किये जाएं डाक्टर, वकील और शिक्षक तो बेकारी बढ़ने के अतिरिक्त और कोई चीज हाथ नहीं लगेगी। उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद भी यदि मनुष्य के आर्थिक स्तर में सुधार नहीं होता तो सामाजिक गतिशीलता नहीं देखी जाती।

- **शैक्षिक अवसरों की समानताः–** सामाजिक गतिशीलता को बढ़ाने के लिए सबसे बड़ी आवश्यकता है शैक्षिक अवसरों की समानता। जब तक समाज में सभी बच्चों की जाति, धर्म, स्थान आदि किसी भी आधार पर भेद किऐ बिना, उसकी योग्यतानुसार विकास करने के अवसर प्रदान नहीं किये जाते तब तक सामाजिक गतिशीलता को सर्वव्यापक नहीं बनाया जा सकता।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।
(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

प्रश्न 5:– सामाजिक गतिशीलता से आप क्या समझते हैं?

.....

प्रश्न 6:– सामाजिक गतिशीलता को प्रभावित करने वाले किन्हीं चार कारकों को बताइए।

.....

11.12 सारांश:–

सामाजिक परिवर्तन वह स्थिति है जिसमें समाज के संगठन में किसी भी प्रकार का परिवर्तन शामिल है। सामाजिक परिवर्तन एक निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है जो कि कई स्तरों से होकर गुजरती है विद्वानों ने इसके लिए कई सिद्धान्तों पर भी विचार किया है। सामाजिक परिवर्तन और शिक्षा में काफी गहरा सम्बन्ध है। शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का महत्वपूर्ण साधन है और सामाजिक परिवर्तन द्वारा शिक्षा का स्वरूप निर्धारित होता है। इस प्रकार से दोनों एक दूसरे को प्रभावित करते हैं।

व्यक्तियों अथवा समूह का एक सामाजिक ढाँचे से दूसरे ढाँचे में संचलन होना ही सामाजिक गतिशीलता है। जनसंख्या, अर्थव्यवस्था आदि ऐसे तत्व हैं जो सामाजिक गतिशीलता को प्रभावित करते हैं। शिक्षा और सामाजिक गतिशीलता भी आपस में घनिष्ठ रूप से संम्बन्धित है। शिक्षा सामाजिक गतिशीलता का प्रमुख आधार है।

11.13 अभ्यास कार्य:–

निम्न प्रश्नों के उत्तर अधिकतम 50 शब्दों में लिखो:–

1. क्या सामाजिक परिवर्तन अनिवार्य है? अपने विचार लिखिए।
2. शिक्षा सामाजिक परिवर्तन कैसे लाती है? कोई एक उदाहरण बताइए।
3. सामाजिक गतिशीलता को परिभाषित कीजिए।
4. समाज सामाजिक सम्बंधों जाल है, यह किसने कहा था?

11.14 बोध प्रश्नों के उत्तरः–

1. सामाजिक संगठन में आया किसी भी प्रकार का कोई भी परिवर्तन सामाजिक परिवर्तन कहलाता हैं।

2. सामाजिक परिवर्तन की प्रमुख विशेषताएं इस प्रकार हैं–

   i. सामाजिक परिवर्तन अनिवार्य है।

   ii. यह सर्वव्यापी है।

   iii. यह एक जटिल प्रक्रिया है।

   iv. सामाजिक परिवर्तन की गति में अंतर होता है।

3. शिक्षा सामाजिक परिवर्तन का एक शक्तिशाली साधन है।

4. शिक्षा समाज में नये मूल्यों एवं आदर्शों की स्थापना द्वारा सामाजिक परिवर्तन लाती है।

5. व्यक्तियों अथवा समूह का एक सामाजिक ढाँचे से दूसरे ढाँचे में संचालन होना ही सामाजिक गतिशीलता है।

6. सामाजिक गतिशीलता को प्रभावित करने वाले कारक निम्न हैं–

   i. जनसंख्या

   ii. अर्थ व्यवस्था

   iii. शासन व्यवस्था

   iv. महात्वाकांक्षा

इकाई –12 समाजवाद और शिक्षा

संरचना

12.0 प्रस्तावना
12.1 उद्देश्य
12.2 समाजवाद का अभिप्राय
12.2.1 समाजवाद की परिभाषाएं
12.2.2 समाजवाद के तत्व
12.3 समाजवाद के मूल सिद्धान्त
12.4 समाजवाद और शिक्षा
12.5 शिक्षा के उद्देश्य
12.6 समाजवाद और पाठ्यक्रम
12.7 समाजवाद और शिक्षण विधियाँ
12.8 सारांश
12.9 अभ्यास प्रश्न
12.10 बोध प्रश्नों के उत्तर
12.11 संदर्भित ग्रंथ सूची

12.0 प्रस्तावना:–

समाजवाद ऐसी विचारधारा है जो सभी साधनों को समाज के नियंत्रण या राज्य के नियंत्रण में होने की बात को स्वीकार करता है। तथा अंत में वर्ग विहीन समाज की स्थापना करना चाहता है। प्रस्तुत इकाई में समाजवाद के अभिप्राय, समाजवाद और शिक्षा के मध्य सम्बन्धों, समाजवादी शिक्षा के उद्देश्यों, पाठ्यक्रम विधियों आदि की चर्चा की गई है।

12.1 उद्देश्य:–

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप इस योग्य हो जायेंगे कि:–

- समाजवाद के प्रत्यय की व्याख्या कर सकेंगे।
- विद्यार्थी समाजवादी पाठ्यक्रम की व्याख्या कर सकेंगे।
- विद्यार्थी समाजवादी शिक्षा के उद्देश्यों और उसकी शिक्षण विधियों की व्याख्या कर सकेंगे।

12.2 समाजवाद का अभिप्रायः–

समाजवाद शब्द आधुनिक सामाजिक विज्ञानों में प्रयुक्त सर्वाधिक भ्रांतिपूर्ण अवधारणा है लेकिन फिर भी वह वर्तमान युग का दर्शन है। यह लोकप्रिय एवं आकर्षक होने के साथ उतना ही भ्रामक भी है। इसके आकर्षक होने का एक बड़ा उदाहरण यह दिया जा सकता है कि हिटलर जैस फासिस्ट और समाजवाद के कट्टर शत्रु ने भी अपने दल का नाम 'राष्ट्रीय समाजवादी दल' रखा था। इस प्रकार समाजवाद के विरोध में आचरण करने वाले अनके व्यक्तियों ने इस शब्द का अपने पक्ष में उपयोग किया है, अन्य कई व्यक्तियों ने इस शब्द को इतना तोड़ मरोड़ दिया है कि वह अपने वास्तविक अर्थ से बहुत दूर चला गया है। इसको इतना लचीला भी बना दिया गया है कि किसी ने यहाँ तक कह दिया है कि हम सब समाजवादी हैं क्योंकि हम समाज में रहते हैं। इन्हीं सारी परेशानियों को दृष्टिगत रखते हुए प्रो0 सी. आई. एस. जोड ने तो यहाँ तक कह दिया है कि–

"समाजवाद उस टोप की भाँति है जिसकी शक्ल ही विकृत हो गई है, क्योंकि हर कोई व्यक्ति इसे पहनता है।"

इस शब्द की जटिलता को शाडवेल महोदय ने इन शब्दों में व्यक्त किया है–

"मनुष्य के मस्तिष्क को यदि किसी प्रश्न ने सबसे अधिक संक्रमित किया है तो वह है अनेक रूपी जटिल तथा अस्पष्ट समाजवाद। चूँकि समाजवाद एक बहुमुखी दैत्य है, जब हम इसके एक सिर को काटने का प्रयत्न करते हैं तभी इसका दूसरा सिर निकल आ जाता है।"

क्लीमेंशो ने मनुष्य की आयु के साथ उसकी भावनाओं को जोड़कर इसे और भी हास्यास्पद बना दिया है। उनका कथन है कि– "यदि 21 वर्ष की आयु में तुम समाजवादी नहीं हो तो तुम हृदय हीन हो, और 41 वर्ष की आयु में तुम समाजवादी हो तो तुम्हारे पास मस्तिष्क नहीं है।"

कुछ लोग समाजवाद की प्रेरणा का स्रोत प्लोटो की पुस्तक 'रिपब्लिक' को मानते हैं, अन्य लोग इसका उद्गम फ्रांस की राज्य क्रांति में ढूँढते हैं। लेकिन वर्तमान समय में समाजवाद की अवधारणा को समझने के लिए प्लेटो तक का जाना न केवल अनावश्यक ही है बल्कि यह हानिप्रद भी हो सकती है। वैसे सर टामस मूर का नाम भी इस दृष्टि से लिया जाता है। लेकिन

वर्तमान समय में 'समाजवाद' शब्द जिस अर्थ में प्रयुक्त किया जाता है उसकी सम्बद्धता औद्योगिक क्रांति के उपरांत स्थापित समाज व्यवस्था के संदर्भ में ही समझी जा सकती है।

आधुनिक समय में समाजवाद की उत्पत्ति पूँजीवाद की प्रतिक्रिया के रूप में हुई। समाजवादी आन्दोलन का उद्देश्य समाज में पूँजीवाद से उत्पन्न बुराइयों को समाप्त करना था। सर्वप्रथम समाजवाद शब्द का प्रयोग सन् 1803 में इटली में किया गया, लेकिन इसका संदर्भ आधुनिक नहीं था। सन् 1827 ई0 में 'कोआपरेटिव मैगजीन' में इंग्लैण्ड के विचारक राबर्ट ओवन के अनुयायियों को सम्बोधित करने के लिए इसका प्रयोग किया गया था। सन् 1833 में फ्रांस की एक पत्रिका 'ले ग्लोव' में सेंट साइमन के सिद्धांत को स्पष्ट करने के लिए भी इस शब्द का प्रयोग किया गया था। चार्ल्स फोरियर, राबर्ट ओवन, लुई ब्लां आदि विचारकों को समाजवादी कहा जाता है लेकिन वैज्ञानिक एवं आधुनिक समाजवाद का प्रारम्भ कार्ल मार्क्स से ही माना जाता है।

मार्क्स के समय में पूरे यूरोप में पूँजीवादी व्यवस्था पनप रही थी और पूँजीपतियों द्वारा श्रमिकों का शोषण हो रहा था। इस सबके कारण समाज दो वर्गों में विभाजित हो गया था– एक शोषक तथा दूसरा शोषित। कार्ल मार्क्स ने मानव के इतिहास का अध्ययन एवं विश्लेषण करके यह निष्कर्ष निकाला कि संसार में जो भी वर्ग संघर्ष है, वह सब आर्थिक विषमता के कारण है। उन्होंने स्पष्ट किया कि इस स्थिति से निकलने का केवल एक ही मार्ग है– पूँजीवादी व्यवस्था का अंत। उनके अनुसार पूँजीवादी व्यवस्था तभी समाप्त हो सकती है जब उत्पादन के समस्त स्रोतों और आय के समस्त साधनों पर निजी स्वामित्व समाज में होने वाली आय का वितरण श्रम और कार्य के आधार पर होगा और शारीरिक श्रम और बौद्धिक कार्यों के पारिश्रमिक में न्यूनतम अंतर होगा और इस प्रकार समाज से शोषक और शोषित वर्ग–भेद समाप्त हो जाएगा। मार्क्स ने इसे समाजवाद की संज्ञा प्रदान की है इस प्रकार मार्क्स की दृष्टि से–

"समाजवाद का अर्थ है उत्पादन के समस्त स्रोतों एवं आय के समस्त साधनों पर निजी स्वामित्व के स्थान पर सामाजिक स्वामित्व होना और समाज के शोषक एवं शोषित के वर्ग भेद की समाप्ति।"

मार्क्स ने कल्पना की थी कि जब उत्पादन के समस्त स्रोतों और आय

के समस्त साधनों पर समाज का अधिकार हो जाएगा तो सबको अपनी योग्यतानुसार कार्य करना पड़ेगा और सबको उनके कार्य के अनुसार पारिश्रमिक मिलेगा। उन्होंने कल्पना की थी कि धीरे–धीरे एक ऐसी स्थिति आएगी जब सब श्रमिक हो जाएंगे और उस स्थिति में प्रत्येक को अपनी योग्यतानुसार कार्य करना होगा और प्रत्येक को उसकी आवश्यकतानुसार पारिश्रमिक दिया जाएगा और तब वर्गभेद समाप्त हो जाएगा, वर्ग संघर्ष समाप्त हो जाएगा और राज्य लुप्त हो जाएगा। इस स्थिति को मार्क्स ने 'साम्यवाद' की संज्ञा दी है। पर उनकी यह दूसरी संकल्पना आज तक साकार नहीं हुई है और न कभी आगे हो सकती है। रूस, चीन, रूमानियॉ और हालैण्ड आदि देशों में मार्क्स द्वारा प्रतिपादित समाजवाद तो स्थापित हो गया, परन्तु वहाँ आज तक साम्यवाद स्थापित नहीं हो सका है, यह बात दीगर है कि वह अपने को साम्यवादी कहते हैं।

समाजवाद का स्वरूप देशकाल की परिस्थितियों के अनुसार बदलता रहा है। वर्तमान समय में समाजवाद की अनेक धाराएं प्रचलित हैं जैसे मार्क्स का साम्यवाद, जनतांत्रिक समाजवाद, श्रमिक संघवाद, राजकीय समाजवाद आदि। समाजवादी व्यवस्था कैसी हो ? इसको लेकर सभी समाजवादी विचारधाराओं में कोई मौलिक मतभेद नहीं है। मतभेद केवल उद्देश्यों की प्राप्ति के साधनों एवं कुछ सिद्धांतों को लेकर है। किन्तु समाजवाद के जो मौलिक तत्व उभरकर सामने आए वे मार्क्स के विचारों का ही परिणाम थे।

12.2.1 समाजवाद की परिभाषाएंः–

समाजवाद के अर्थ एवं अभिप्राय को और अधिक स्पष्ट करने के लिए विभिन्न समाजवादी विचारकों द्वारा प्रतिपादित परिभाषाओं को प्रस्तुत किया जा सकता है–

इन साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका के अनुसारः– "समाजवाद वह सिद्धांत है जिसका उद्देश्य केन्द्रीय जनतांत्रिक शासन द्वारा एक अच्छी वितरण व्यवस्था और उसके अधीनन अच्छी वितरण की व्यवस्था करना है।"

ह्यूगन के अनुसारः– "समाजवाद का उद्देश्य उत्पादन तथा वितरण के साधनों की लोकतंत्रात्मक व्यवस्था तथा सामूहिक तथा स्वामित्व द्वारा शासन का उन्मूलन करना है।"

सेलसे के अनुसारः– समाजवाद जनतंत्रात्मक व्यवस्था है। लेनिन और

स्टालिन शासक थे जिन्होंने व्यावहारिक स्तर पर मार्क्स के दर्शन में आवश्यक परिवर्तन किये। इसी प्रकार माओत्से तुंग ने मार्क्सवादी– लेनिन–स्टालिनवाद को चीन के संदर्भ में संशोधित किया।

इस विवेचना का यह आशय नहीं है कि समाजवाद एक पूर्णतः लचीला, अस्पष्ट एवं भ्रांतिपूर्ण विचार है। यह एक स्पष्ट विचार है जो भलीभांति समझा जा सकता है। चाहे देश काल और परिस्थितियों में कितना भी अंतर क्यों न हो, इसके मौलिक तत्वों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। इस विचार को समझने वालों के मस्तिष्क में भ्रांति हो सकती है या उनके निहित स्वार्थ हो सकते हैं, लेकिन यह स्वरूप बिल्कुल स्पष्ट है। देश, काल और परिस्थितियों के कारण समाजवाद को विभिन्न नामों से पुकारा जा सकता है। इसकी क्रियान्विति हेतु समाजवाद विरोधी शक्तियों के साथ अल्पकालीन समझौते भी किये जा सकते हैं। लेकिन इसके मौलिक सिद्धांत सर्वमान्य हैं और इसलिए इसके स्वरूप को वैज्ञानिक भी कहा जा सकता है। यह वह विचारधारा है जिसका उद्देश्य समाज में एक ऐसी व्यवस्था उत्पन्न करना है जो कि एक ही समय व्यक्ति को अधिकतम् न्याय तथा स्वतंत्रता प्रदान कर सके।

ह्यूबर्ट ब्लाड ने बताया है कि "समाजवाद का अर्थ उत्पादन तथा विनिमय के साधनों के सामान्य स्वामित्व से तथा इस प्रकार की व्यवस्था करने से है कि सबको समान लाभ हो।"

स्माइल के शब्दों में– "यह मजदूरों का ऐसा संगठन है जो कि पूँजीपतियों की सम्पत्ति को समाज की सम्पत्ति में परिवर्तित करने के उद्देश्य से राजनैतिक अधिकार प्राप्त करना चाहता है।"

प्रो0 पीगू के अनुसारः– "उत्पादन के साधनों पर व्यक्तिगत अधिकार को ही पूँजीवाद और सार्वजनिक अधिकार को समाजवाद कहते हैं।"

गाँधी जी के अनुसारः– "समाज ऐसा होना चाहिए जिसमें न दरिद्रता हो, न अन्याय हो, न अत्याचार हो और न अपराध हो।"

प्रो0 सी.ई.एम.जोड के अनुसारः– "समाजवाद व्यक्ति की सबसे अधिक स्वतंत्रता का सिद्धांत प्रस्तुत करता है। वह एक ऐसी सामाजिक व्यवस्था का आदर्श प्रस्तुत करता है जिसमें व्यक्ति भौतिक चिंताओं से मुक्त होकर अपनी इच्छानुसार अपना जीवन यापन कर सके और स्वतंत्रता पूर्वक अपने व्यक्तित्व का विकास कर सके।"

12.2.2 समाजवाद के तत्वः–

उपरोक्त परिभाषाओं को दृष्टिगत रखते हुए समाजवाद क्या है, इसे स्पष्ट किया जा सकता है। समाजवाद के सिद्धांत पर आधारित वह समाज होगा–

- जहाँ उत्पादन एवं वितरण के साधनों पर समाज का स्वामित्व हो और जहाँ राज्य समाज के प्रतिनिधित्व के रूप में साधनों पर नियंत्रण रखे, तत्पश्चात राज्य केवल व्यवस्था के रूप में बना रहे।
- जहाँ राज्य की सामाजिक अर्थव्यवस्था प्राप्त भौतिक एवं मानवीय साधनों की पूर्ण उपयोगिता पर आधारित हो ताकि मानव–कल्याण हेतु अधिकाधिक उत्पादन किया जा सके।
- जहाँ आर्थिक प्रगति का अर्थ केवल प्रचुर भौतिक साधनों और समृद्धि हेतु किया जा सके।
- जहाँ मान्यता हो कि राजनीतिक स्वतंत्रता का आर्थिक स्वतंत्रता के बिना अस्तित्व भी नहीं है, क्योंकि यह उसकी आधारशिला है। सच है कि आधुनिक विश्व में समाजवाद से रहित कोई भी वास्तविक जनतंत्र नहीं है।
- जहाँ व्यक्ति और समाज के मध्य समवाय सम्बंध स्थापित हो। यह सम्बन्ध इस बात को निर्धारित करता है कि मनुष्य अलग–अलग नहीं है जो स्वतंत्र रूप से अपने लिए अर्जन करता हो। समाज ने उसे वे सारे उपकरण प्रदान किये हैं जिनकी सहायता एवं अन्य व्यक्तियों के उपयोग से वह उत्पादन कार्य में प्रवृत्त होता है। इस प्रकार जब समाज ही मूल्य का निर्माता है तो वह क्यों नहीं इस पर नियंत्रण करते हुए सामूहिक रूप से इनका उपभोग करे।
- जहाँ मनुष्य को भौतिक चिंताओं से मुक्ति प्राप्त हो गई हो। समाजवाद का उद्देश्य मनुष्य को न तो भौतिक प्राणी बनाना है और न ही उसे भौतिक जगत तक ही सीमित रखना है। यह उसे उन भौतिक कठिनाईयों से स्वतंत्र कर देना चाहता है जो उसे वास्तविक स्वतंत्रता का उपभोग करने एवं अपने व्यक्तित्व के विकास करने से वंचित रखती है।
- जहाँ यह मान्यता हो कि मनुष्य का विकास केवल समाज में ही

सम्भव है। मनुष्य की स्वतंत्रता को केवल समाज ही साकार बना सकता है।

- जहाँ शोषक और शोषित जैसे दो वर्ग नहीं होते। इस समाज में व्यक्तिगत सम्पत्ति के लिए मनुष्य के श्रम का शोषण नहीं होगा। इस प्रकार वर्गविहीन समाज होगा।
- जहाँ एक मनुष्य और दूसरे मनुष्य में वास्तविक समानता हो। इसकी यह मान्यता है कि राजनीतिक सामाजिक एवं व्यक्तिगत सम्बन्धों में समानता लाने के लिए आर्थिक सम्बंधों में समानता का धरातल तैयार करना आवश्यक है। आर्थिक सम्बंधों में समानता का अर्थ यही है कि अधिकतम और न्यूनतम आय में कोई विशेष अन्तर न हों
- जहाँ राजनीतिक और आर्थिक सत्ता विकेन्द्रित हो। समाजवाद मनुष्य को दास नहीं बनाना चाहता बल्कि उसे दासता से मुक्त करना चाहता है। समाजवाद सिद्धांत में नहीं वरन व्यवहार में भी सत्ता पत्र केन्द्रीकरण नहीं चाहता है, क्योंकि इसमें व्यक्ति व्यवस्था के आधीन हो जाता है। केन्द्रित व्यवस्था मनुष्य की स्वतंत्रता का अपहरण करती है और इससे उसका विकास भी अवरूद्ध हो जाता है। समाजवाद सभी श्रृंखलाओं, जटिलताओं एवं बंधनों को तोड़कर मनुष्य के सर्वागीण विकास के रास्ते खोल देता है।
- जहाँ जाति–पॉति, ऊँच–नीच, वर्ग, लिंग जन्म–स्थान, आयु एवं परम्परा पर निर्मित कोई भेदभाव न हों, ये सब एक सामंतवादी, बुर्जुआ समाज की सडाँधें हैं ये सब स्वतंत्रता और समानता के शत्रु हैं। राजनीतिक जनतंत्र एवं समाजवाद तथा जाति प्रथा में कोई मेल नहीं हो सकता है।
- जहाँ श्रम की पूजा होती है। समाज का नेतृत्व श्रमिकों में निहित हो तथा शारीरिक और मानसिक श्रम में किसी प्रकार का भेदभाव न किया जाए। पूँजीवादी व्यवस्था में श्रम चंद लोगों के लिए पूँजी निर्माण में उपयोग किया जाता है जबकि समाजवादी व्यवस्था में यह सार्वजनिक हित में प्रयुक्त होता है।

जहाँ समाजवाद जैसी दुरूह अवधारणा के प्रमुख तत्वों को गिनाने का प्रयास किया गया है। ये तत्व करीब–करीब सर्वमान्य है और सिद्धांत रूप में

शायद ही समाजवाद की किसी भी धारा से इसका विरोध हो। मार्क्सवाद, श्रेणी समाजवाद, श्रमिक संघवाद, फेवियन समाजवाद, जनतांत्रिक समाजवाद, समष्टिवाद अथवा राजकीय समाजवाद आदि सभी समाजवाद की ही धाराएँ हैं जो उपर्युक्त तत्वों से लगभग सहमत हैं। देश, काल, परिस्थितियों के कारण इन विभिन्न धाराओं का जन्म हुआ है। लेकिन ये सभी समाजवाद रूपी वृक्ष की शाखाएं एवं उपशाखाएं हैं। सभी धाराएं एक शोषण विहीन एवं वर्गविहीन समाज की स्थापना पर जोर देती है लेकिन मौलिक तत्वों के विवेचन में वे करीब–करीब एक मत हैं।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

प्रश्न 1:– समाजवाद से आप क्या समझते हैं?

.....

प्रश्न 2:– साम्यवादी विचारधारा का प्रवर्तक किसे माना जाता है ?

.....

12.3 समाजवाद के मूल सिद्धांतः–

समाजवाद के कुछ ऐसे मूल सिद्धांत है जिनपर समाजवाद आधारित है, समाजवाद के इन मूल सिद्धांतो का हम उल्लेख इस प्रकार कर सकते हैं:–

- **वर्ग संघर्षः**– वर्ग संघर्ष समाजवादी विचारधारा का प्रमुख मौलिक सिद्धांत हैं। समाजवाद के अनुसार समाज में प्रायः दो वर्गों का अस्तित्व पाया जाता है– सम्पन्न और विपन्न। सम्पन्न वर्ग, दूसरे वर्ग का किसी न किसी रूप में शोषण करता हैं मार्क्स के अनुसार जाति–पांति, वर्ण, समुदाय, अमीर–गरीब, शहरी–देहाती, शिक्षित–देहाती, शिक्षित–शिक्षित, धार्मिक–अधार्मिक, शिष्ट–अशिष्ट इत्यादि मूल रूप में दो शाश्वत वर्ग की परिणिति है। जिसमें एक वर्ग दूसरे का किसी न किसी रूप में शोषण करता है। इसे दूसरे शब्दों में शोषक तथा शोषित वर्ग के रूप में भी व्यक्त किया जा सकता है। प्राचीन काल से शाश्वत रूप में व्याप्त इन दो वर्गों के मध्य संघर्ष रहा है और इसे

कम किया जाना चाहिए। प्रत्येक देश में आर्थिक और राजनैतिक शक्ति पाने के लिए संघर्ष हुए हैं। समाजवाद, समाजवाद की स्थापना के लिए पूँजीवादी तथा सर्वहारा वर्ग के बीच संघर्ष की समाप्ति की मॉग करता है।

- **द्वान्द्वात्मक भौतिकवादः–** मार्क्स के अनुसार संसार का विकास उत्पादन शक्ति के माध्यम से हुआ। उत्पादक शक्ति एक भौतिक शक्ति है, अतः जगत का मूल आधार भौतिक है। भौतिक शक्ति हमेशा संघर्षशील होती है और द्वन्द्वात्मक प्रणाली में आगे बढ़ती है। वस्तुओं के दो पक्ष होते हैं– 1. सकारात्मक 2. नकारात्मकं इनमें सदैव संघर्ष चलता रहता है। पूँजीवादी एवं सर्वहारा वर्ग में सदैव संघर्ष चलता रहता है। इस समय हमारी शिक्षा भी द्वन्द्वात्मक संघर्ष से गुजर रही है। इस संघर्ष के फलस्वरूप जो नई व्यवस्था उभरेगी वह "संवाद" होगी।
- **इतिहास की भौतिकवादी व्यवस्थाः–** मार्क्स ने विश्व का गहन अध्ययन किया तथा निगमन प्रस्तुत किया कि सांसारिक समाज के विकास का आधार अपनी प्रकृति में आर्थिक है। हमारा समाज व्यक्तियों से बना है। व्यक्ति के जीवन का उद्देश्य भौतिक प्रगति करना है।
- **अतिरिक्त श्रम मूल्य सिद्धान्तः–** मार्क्स के अनुसार पूँजीवादियों के हाथ में शोषण का सबसे बड़ा साधन अतिरिक्त मूल्य होता है जिसे वे हड़प जाते हैं। पूँजीपति और श्रमिक वर्ग के बीच संघर्ष का मूल कारण यह है कि श्रमिक जितना मूल्य अपने श्रम से उत्पन्न करता है उससे बहुत कम मजदूरी उसे मिलती है।

12.4 समाजवाद और शिक्षाः–

जैसा कि हम जानते हैं कि समाजवाद का मौलिक स्वरूप मार्क्स के पश्चात ही सामने आया। मार्क्स ने समाजवादी शिक्षा के सम्बन्ध में किसी विशेष ग्रन्थ आदि का प्रणयन नहीं किया, किन्तु सामाजिक व्यवस्था और परिवर्तन की तात्कालिक आवश्यकता के प्रसंग में उसने एतन्निमित्त यत्र–तत्र शिक्षा के प्रयत्नों पर विचार आलोक बिखेरा है। इन्हीं विचारों के सार–संकलन को हम समाजवादी शिक्षा के रूप में स्पष्ट कर सकते हैं। मार्क्स के विचार वास्तविक धरातल से जुड़े हुए थे। उसने मानव को अपनी छिपी हुई शक्तियों

को जानने तथा वास्तविकता को पहचानने पर बल दिया। मार्क्स का विचार मानव को प्रथमतः भोजन, कपड़ा और मकान सुलभ करना है। राजनीति, कला, धर्म आदि का अनुवरण बाद का विषय है। इसीलिए उसने जन शिक्षा की आवश्यकता का रेखांकन किया।

मार्क्स ने सार्वभौमिक, एक समान निःशुल्क प्राथमिक शिक्षा की आवश्यकता पर बल दिया। उसके अनुसार बाल मजदूरों के लिए पढ़ाई की ब्यवस्था अनिवार्य होनी चाहिए। औद्योगिक इकाईयों को अपने श्रमिकों तथा उनके पाल्यों की शिक्षण व्यवस्था करनी चाहिए। मार्क्स का मानना था कि सर्वहारा वर्ग के उत्थान के निमित्त शिक्षा की अधिकारिक व्यवस्था में राज्य पूरी तरह सहयोग करे। सार्वभौमिक शिक्षा के सम्प्रत्यय को समाजवाद में महत्वपूर्ण स्थान गया दिया है।

समाजवादी शिक्षा में शिक्षा को उत्पादन का साधन स्वीकार किया गया है तथा इस प्रकार के सभी साधनों पर राज्य के नियंत्रण को आवश्यक माना गया है। मार्क्स के अनुसार शिक्षा कभी भी निजी प्रयास के अन्तर्गत नहीं जानी चाहिए, क्योंकि इसका अमृत चखने का अधिकार जन सामान्य को है।

कार्ल मार्क्स ने शिक्षा में बौद्धिक शारीरिक तथा उत्पादन में प्रशिक्षण जैसे तत्वों को आवश्यक स्थान दिया। ऐसे प्रशिक्षण में सभी लोगों को अवसर मिलना चाहिए। प्रारम्भ से ही विद्यार्थी कार्य जगत से जुड़े, इससे श्रम की महत्ता स्थापित होगी। बालकों की शिक्षा में धीरे–धीरे दो–चार तथा छः घण्टे किसी दुकान, उद्योग अथवा घर पर ही किसी न किसी उत्पादक कार्य में लगाना आवश्यक होना चाहिए। ध्यान देने योग्य है कि मार्क्स ने बौद्धिक ज्ञान, क्रिया तथा श्रम में समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया। उनकी दृष्टि में ऐसे समन्वय से वर्ग भेद दूर करने में अनुपम सफलता प्राप्त होगी।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि समाजवादी शिक्षा को उत्पादन का एक साधन मानते हैं तथा सभी के लिए आवश्यक मानकर जनशिक्षा का समर्थन करते हैं। इसके साथ ही साथ समाजवादी शिक्षा में ज्ञान, क्रिया और श्रम का समन्वय करके, बालक का सर्वांगीण विकास करने का प्रयास किया गया है।

12.5 शिक्षा के उद्देश्यः–

द्वन्द्वात्मक भौतिक समाजवादी दर्शन के अनुसार विद्यालय सामाजिक

व्यवस्था के बनाए रखने के लिए स्थापित किये जाते हैं तथा उनका आधार भी वे ही भौतिक मूल्य होते हैं जो तात्कालीक समाज में व्याप्त होते हैं। मार्क्स के अनुसार प्रत्येक युग की शिक्षा प्रणाली वर्ग संघर्ष के सिद्धांत पर आधारित रही है। पूँजीवादी तथा साम्राज्यवादी युग में दोहरी शिक्षा प्रणाली चलती रही जिसमें बौद्धिक शिक्षा की व्यवस्था की गई। औद्योगिक क्रांति के फलस्वरूप मार्क्स के अनुसार शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य होने चाहिए–

- छात्रों में श्रम की गरिमामय भावना को दृढ़ करना।
- छात्रों में इस साम्यवादी भावना को पुष्ट करना कि साम्यवादी संघर्ष सम्पूर्ण विश्व के श्रमिकों के लिए है तथा उत्पादन एवं वितरण को सुनियोजित बनाने के लिए है।
- छात्रों में भौतिकवादी दृष्टिकोण को विकसित करना।
- छात्रों में सुदृढ़ व्यक्तिगत चरित्र का विकास करना।

मार्क्स के अनुसार समाजवाद का लक्ष्य है वर्गविहीन समाज की स्थापना। वर्गयुक्त समाज में मनुष्य का कोई मूल्य नहीं रहता है। वह कल्पना लोक का प्राणी बना दिया जाता है। मानव–प्रकृति में मूल तत्व उसकी सामाजिकता और उसकी वुद्धि या धर्म या विवेक नहीं है। उसका सार तत्व है उसकी सामाजिकता और उसकी यह शक्ति कि वह अपने श्रम से चारों ओर के वातावरण में परिवर्तन कर सकता है। शिक्षा का उद्देश्य यह है कि वह बालक को इस योग्य बना दे कि वह अपने स्वरूप को ठीक से पहचान सके। वह अपने हाथ और मस्तिष्क का प्रयोग करके अपनी इच्छा के अनुरूप अपने पर्यावरण की रचना कर सकता है। वह श्रम कर सकता है, श्रम करने योग्य है। यह उसकी बहुत बड़ी विशेषता है और इसी विशेषता को जानना बालक का उद्देश्य है। जानना ही पर्याप्त नहीं है। वह श्रम करे, श्रम करना सीखे, श्रम का मूल्य समझे और श्रम के आधार पर रचनात्मकता को विकसित करे, यह शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए।

श्रम के ही आधार पर समाज को वर्गों में विभाजित कर दिया गया है। यदि वर्गहीन समाज की स्थापना करनी है तो श्रम की पुनः प्रतिष्ठा करके सभी के लिए श्रम को अनिवार्य करना होगा। शिक्षा द्वारा इस अनिवार्यता को सम्भव बनाया जाना चाहिए।

शिक्षा का उद्देश्य मनुष्य की गरिमा की स्थापना है। मजदूर को

उत्पादन का एक तत्व मान लेना और उसे खरीदी और बेची जाने वाली वस्तु मान लेना बुर्जुआ समाज की नीति है। वह वस्तु नहीं है, समाज का गतिशील तत्व हैं शिक्षा का उद्देश्य यह है कि वह बालक में यह चेतनाभर दे कि वह समाज के परिवर्तन का एक कारक है। बालकों में सामाजिक चेतना भरना, श्रम की अनिवार्यता लाना और श्रम को रचनात्मक बनाना शिक्षा का उद्देश्य है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

प्रश्न 1:– मार्क्स द्वारा बताए गयें किन्हीं दो प्रमुख शिक्षा के उद्देश्यों को बताइए।

.....

.....

12.6 समाजवाद और पाठ्यक्रमः–

समाजवादी पाठ्यक्रम में श्रमगरिमा तथा "द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दर्शन" को सबसे अधिक महत्व दिया जाता है। सभी स्तरों तथा सभी प्रकार की शिक्षा के पाठ्यक्रम में इस दर्शन को अनिवार्यतः पढ़ाया जाता है तथा "समाजोपयोगी उत्पादक श्रम" तथा उसकी समस्याओं को शिक्षा का केन्द्र बनाया जाता है। इस पाठ्यक्रम को क्रियान्वित करने के लिए तद्नुरूप शिक्षक तैयार करने हैं अतः शिक्षक प्रशिक्षण समाजवादी या साम्यवादी शिक्षा प्रणाली का महत्वपूर्ण अंग है। क्योंकि समाजवादी नीति के प्रचार व प्रसार का सशक्त माध्यम अध्यापक है। शिक्षक प्रशिक्षण की अवधि लम्बी रखी जाती हैं। इस प्रकार के पाठ्यक्रम की प्रमुख विशेषताएं निम्न हैं:–

- धर्म बुर्जुआ वर्ग द्वारा जन समुदाय को दी जाने वाली अफीम है जिससे सामान्य जनता सोई पड़ी रहे तथा उनके विरूद्ध विद्रोह न करे। अतः शिक्षा के पाठ्यक्रम से धर्म का पूर्ण रूप से बहिष्कार होना चाहिए।
- अध्यापकों का अधिकार अक्षुण्य है।
- देश की आर्थिक समृद्धि तकनीकी विकास तथा अंधविश्वास के निवारण के लिए विज्ञान की शिक्षा महत्वपूर्ण है।

- इतिहास का अध्ययन साम्यवादी या समाजवादी विचारधारा को समझने में सहायक है।

पाठ्यचर्या के संगठन के लिए यह आवश्यक है कि इसका गठन ऐसा हो कि यह अपने उद्देश्य की ओर निरंतर बढ़ता रहे। किन्तु पाठ्यचर्या के निर्माण के समय इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि यह पाठ्यचर्या ऐसी समुचित होनी चाहिए कि जिसमें एक रूपता हो और पठन के साथ–साथ धीरे–धीरे बढ़ते हुए कुछ घण्टों में विद्यार्थी का दुकानों उद्योगों तथा घरेलू उत्पादक कार्यों से तादाम्य कराया जाए। विद्यार्थियों को अनिवार्य रूप से प्रति सप्ताह कार्यानुभव अर्जित करना आवश्यक होना चाहिए जिसे वे मजदूरी खेती, विद्यालयों में अंशकालीन शिक्षण इत्यादि से अर्जित करते हैं। शैक्षिक संरचना समान हो। न्यूनतम सामान्य शिक्षा का पाठ्यक्रम एक जैसा हो जिस पर राज्य का पूर्ण नियंत्रण रहे। उच्च शिक्षा राज्य की आवश्कतानुसार आयोजित होनी चाहिए जिसमें राज्य योग्यतानुसार विधान तथा अवसर प्रदान करेगा। पाठ्यक्रम में भाषा, गणित और विज्ञान मुख्य रूप से शामिल किये जाएं।

कार्ल मार्क्स द्वारा प्रकल्पित पाठ्यक्रम में निम्न तीन उपागमों को महत्वपूर्ण दिया गया है:–

(क) बौद्धिक उपागम

(ख) शारीरिक उपागम

(ग) उद्योगगत अनुभवोपागम

बौद्धिक तथा शारीरिक पक्षों को स्थान प्रदान करने के साथ मार्क्स ने उद्योगों में कार्यानुभव को स्थानान्तरित किया। उसकी दृष्टि में विज्ञान तथा तकनीकी के माध्यम से जन सामान्य की प्रगति का मार्ग प्रशस्त होता है। धर्म, दर्शन और संस्कृति के पाठ्यक्रम को परिवर्तित कर दिया जाना चाहिए क्योंकि यह परम्परावादी रूढ़िगत बातों पर बल देता है। धार्मिक शिक्षा का विरोध किया गया क्योंकि धर्म जन–समुदाय के लिए अफीम का कार्य करता है। इसके प्रयोग से सामान्य जनता सोई पड़ी रहती है और बुर्जुआ के विरूद्ध आवाज नहीं उठाती। इस कारण शिक्षा क्रम से धर्म को दूर रखा गया। इतिहास को भी साम्यवादी दृष्टि से पाठ्यक्रम में रखा गया।

कार्ल मार्क्स ने सर्वहारा के अन्तर्गत शरीरिक के साथ–साथ मानसिक श्रम करने वालों को भी सम्मिलित किया। उसकी दृष्टि में आधुनिक समय में

अधिकांश व्यक्ति या तो सर्वहारा बन चुके है अथवा इस मार्ग पर प्रवृत्त है। श्रम पर विचार करते हुए उसने कहा कि केवल उद्योग–धन्धों, कल–कारखानों में ही श्रम–मूल्यों का शोषण नहीं है। इस शोषण का क्षेत्र राजनीतिक, साहित्यिक अभिनय धार्मिक आदि विषयों तक व्याप्त हो रहा है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि सक्रिय पाठ्यक्रम के माध्यम से जन मानस मे शोषकों के विरूद्ध चैतन्यता पैदा की जाए।

12.7 समाजवाद और शिक्षण विधियाँः–

कार्ल मार्क्स द्वारा संकल्पित शैक्षिक व्यवस्था में सिद्धांत तथा प्रयोग में व्याप्त अन्तर को कम किये जाने पर बल दिया गया है। कक्षा शिक्षण में उपस्थिति अनिवार्य होती है। प्राथमिक से माध्यमिक और उच्च स्तर तक व्याख्यान तथा परिचर्चा विधियों का यथा परिस्थिति प्रयोग यथार्थवादी दृष्टिकोण के परिप्रेक्ष्य में स्वीकार्य है। चूँकि श्रम की महत्ता को विशेष स्थान प्राप्त है, इसलिए शिक्षण विधि में श्रम को विशेष स्थान दिया जाता है। क्रिया–प्रधान तथा श्रम–प्रधान शिक्षण विभिन्न विद्यालयों में व्याप्त है। कार्य अनुभव तथा आवलोकन को स्थान प्रदान करने हेतु शिक्षण में पर्यटन तथा शैक्षिक भ्रमण को स्वीकार किया गया है किन्तु सभी प्रयासों का मूल स्वर समाजवाद या साम्यवाद के प्रति निष्ठा है। कठोर परिश्रम की आदत डाली जाती है और विद्यार्थियों को मशीन की तरह कार्य करने हेतु प्रेरित किया जाता है। समाजवाद की अध्ययन विधियों में प्रयोगशाला, कार्यशाला और पुनर्बोध कक्षाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। विद्यार्थी की रचनात्मक क्षमता के विकास हेतु श्रुत की अपेक्षा कृत अनुभव पर विशेष ध्यान दिया जाता है।

बोध प्रश्न

टिप्पणी– (i) नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

(ii) अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से करिये।

प्रश्न 5:– समाजवादी पाठ्यक्रम की प्रमुख विशेषताएं क्या थीं?

.....

प्रश्न 6:– समाजवादी शिक्षण पद्धति में मुख्यतया किन–किन शिक्षण विधियों को स्थान दिया गया ?

.....

12.8 सारांशः–

"इस प्रकार हम देखते हैं कि समाजवाद समाज को महत्व देने वाला वाद है, एक ऐसी चिन्तन धारा है जो व्यक्ति की अपेक्षा समाज को अधिक महत्व देती है और यह मानती है कि व्यक्ति को समाज (राज्य) के लिए अपने को न्यौछावर कर देना चाहिए।"

समाजवाद ऐसी शिक्षा व्यवस्था पर बल देता है जिससे कि समाज के अधिकांश लोगों अर्थात सर्वहारा वर्ग का कल्याण हो सके। समाजवाद, वर्ग संघर्ष, द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद, अतिरिक्त मूल्य का सिद्धांत एवं इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या है। शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य छात्रों में श्रम की गरिमामय भावना का विकास करना, उनमें साम्यवादी या समाजवादी भावना का विकास करना, उनमें भौतिकवादी दृष्टिकोण का विकास करना तथा छात्रों में सुदृढ़ व्यक्तिगत चरित्र का विकास करना है। समाजवाद का प्रमुख लक्ष्य वर्गविहीन राज्य की स्थापना करना रहा है। क्योंकि वर्ग युक्त समाज में मनुष्य का कोई मूल्य नहीं रहता है। अपने उद्देश्यों के आधार पर ही समाजवादी शिक्षा के पाठ्यक्रम के निर्माण पर बल दिया गया है। इसमें समाजोपयोगी श्रम तथा उसकी समस्याओं को केन्द्र में रखा गया है। पाठ्यक्रम में भाषा, गणित और विज्ञान को प्रमुख स्थान देते हुए धर्म को पाठ्यक्रम से बहिष्कृत करने का प्रयास किया है। समाजवादी शिक्षा की शिक्षण विधियों में प्रयोगशाला, कार्यशाला और पुनर्बोध कक्षाओं को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है।

12.9 अभ्यास प्रश्नः–

1. समाजवाद की कोई एक परिभाषा बताइये?
2. इतिहास की भौतिकवादी व्याख्या से आप क्या समझते हैं?
3. द्वन्द्वात्मक भौतिकवादी दर्शन क्या है ?
4. मार्क्स द्वारा प्रकल्पित पाठ्यक्रम के तीन उपागम कौन–कौन से हैं ?

12.10 बोध प्रश्नों के उत्तरः–

1. समाजवाद वह विचारधारा है जो व्यक्ति की अपेक्षा समाज को अधिक महत्व देती है और मानती है कि व्यक्ति को समाज के लिए न्यौछावर कर देना चाहिए।

2. समाजवादी विचारधारा का प्रवर्तक मुख्यतया मार्क्स को माना जाता है।

3. मार्क्स द्वारा बताए गये शिक्षा के दो प्रमुख उद्देश्य हैं–

i. छात्रों में श्रम की गरिमामय भावना को दृढ़ करना।

ii. छात्रों में भौतिकवादी दृष्टिकोण को विकसित करना।

4. वर्ग संघर्ष से तात्पर्य है समाज के विभिन्न वर्गों के मध्य संघर्ष हैं समाजवाद मानता है कि समाज में हमेशा बुर्जुआ और सर्वहारा वर्ग (श्रमिक वर्ग) में संघर्ष होता रहा है।

5. समाजवादी पाठ्यक्रम की प्रमुख विशेषताएं यह है कि यह श्रमगरिमा और द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद में विश्वास करता है। इसमें समाजोपयोगी श्रम और और उसकी समस्याओं को शिक्षा का केन्द्र बनाया जाता है।

6. समाजवादी शिक्षण पद्धति में मुख्यतया प्रयोगशाला कार्यशाला और पुनर्वोध कक्षाओं को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है।

12.11 संदर्भित गंथ सूची:–

1. Philosophical Foundation of Education by N.P. Singh
2. An Intrafusion to Major Philosophies of Education by Ram Shakal Pandey.
3. Sociological perspectives on Education by Dr. Devendra.
4. Shiksha Ke Mool Siddhant by Ram Shakal Pandey.
5. Foundation of Education by Shoryu Prshad Chowbey/Dr. Akhilesh Chawbey.
6. Shiksha ke Shiddhant aur Shaikshik Niyojan by Dr. Pal, Gupta and Shrivastava.
7. Philosophical and Sociological Principles of Education by Raman Bihari Lal.
8. Shiksha ke Darshanik aur Samajshashtriya Pristhabhoomi by Dr. Ram Shakal Panday.

खण्ड

4

वैश्वीकरण और शिक्षा

इकाई-13 5
राज्य और शिक्षा

इकाई-14 19
राष्ट्रीयता के लिए शिक्षा

इकाई-15 36
अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध के लिए शिक्षा

इकाई-16 53
भावात्मक एकता के लिए शिक्षा

UGED-03 - शिक्षा के सिद्धान्त

खण्ड- 1 शिक्षा के सिद्धान्त

इकाई-1 शिक्षा की अवधारणा

इकाई-2 शिक्षा के सामाजिक एवं वैयक्तिक उद्देश्य

इकाई-3 शिक्षा के अन्य उद्देश्य

इकाई-4 शिक्षा के अभिकरण या साधन

खण्ड- 2 पाठ्यक्रम के अन्तर्गत विभिन्न सोपान

इकाई-5 पाठ्यक्रम का अर्थ, प्रकार एवं सिद्धान्त

इकाई-6 पाठ्यक्रम विकास की प्रक्रिया

इकाई-7 पाठ्यक्रम - विभिन्न विषयों का महत्व

इकाई-8 सहपाठ्यक्रमीय क्रियाकलाप

खण्ड- 3 जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में शिक्षा के मूल्य

इकाई-9 जनतन्त्र और शिक्षा

इकाई-10 समुदाय और शिक्षा

इकाई-11 समाजिक परिवर्तन और गतिशीलता

काई-12 समाजवाद और शिक्षा

ब्रण्ड- 4 वैश्वीकरण और शिक्षा

काई-13 राज्य और शिक्षा

काई-14 राष्ट्रीयता के लिए शिक्षा

काई-15 अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध के लिए शिक्षा

काई-16 भावात्मक एकता के लिए शिक्षा

खण्ड-4 परिचय- वैश्वीकरण और शिक्षा

हम समस्त प्राकृतिक तथा मनुष्यकृत संस्थाओं में सबसे श्रेष्ठ संख्या 'राज्य' तथा मानव को पशु श्रेणी ऊपर उठाकर उसे सर्वोत्तम जीवन बनाने वाली संस्था 'शिक्षा' के आपसी सम्बन्धों के विषय में अध्ययन करेंगे। उनका यह अध्ययन प्राचीन परिप्रेक्ष्य से लेकर आधुनिक संदर्भ में भी देखा जाएगा।

इकाई-13 राज्य का सम्प्रत्यय, राज्य के प्रकार राजतंत्रात्मक राज्य और शिक्षा, जनतंत्रात्मक राज्य और मार्क्सवादी राज्य और शिक्षा, राज्य और शिक्षा के सम्बन्ध की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, वैदिक काल में राज्य और शिक्षा, बौद्ध काल में राज्य और शिक्षा मस्लिम काल में राज्य और शिक्षा, आधुनिक काल में राज्य और शिक्षा, शिक्षा पर नियंत्रण, राज्य के नियंत्रण, निष्कर्ष, शैक्षिक अभिकरण के रूप में राज्य में नियंत्रण का भी वर्णन किया गया।

इकाई-14 राष्ट्रीयता से तात्पर्य, राष्ट्रीयता की आवश्यकता, भारतीय राष्ट्र, राष्ट्र के प्रति प्रेम, साहित्य और राष्ट्रीय एकता, भारत में राष्ट्रीयता के मार्ग में बाधाएं, प्रादेशिकता या क्षत्रियता की भावना, साम्प्रदायिकता, जातिवाद, भाषावाद, भारतीय संस्कृति के प्रति उदालीनता, आर्थिक असमानता, सरकार की दोषपूर्ण नीति अज्ञानता और अशिक्षा राष्ट्रीयता, सरकार की दोषपूर्ण नीति अज्ञानता और अशिक्षा राष्ट्रीयता के मार्ग की बाधाओं को दूर करने के उपाय, शैक्षिक कार्यक्रम, भावात्मक एकता समिति के सुझाव, राष्ट्रीय एकता सम्मेलन के सुझाव, राष्ट्रीय एकता सम्मेलन के सुझाव, राष्ट्रीय एकता के लिए विभिन्न स्तरों पर शैक्षिक कार्यक्रम शिक्षा और सामाजिक तथा राष्ट्रीय एकता का वर्णन किया गया।

इकाई-15 संकुचित राष्ट्रीयता, व्यापक राष्ट्रीयता, अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध का अर्थ, अंतर्राष्ट्रीय अवबोध की शिक्षा की आवश्यकता, राष्ट्रीयता के मार्ग की बाधाओं को दूर करने के उपाय अंतर्राष्ट्रीय अवबोध की शिक्षा के सिद्धान्त, अंतर्राष्ट्रीय अवबोध के लिए शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम तथा अंतर्राष्ट्रीय अवबोध संक्षिप्त वर्णन किया गया।

इकाई-16 भावात्मक एकता का परिभाषा राष्ट्रीय एकता और भावात्मक एकता, भावात्मक एकता की आवश्यकता भावात्मक एकता का स्तर अन्तर सांस्कृतिक भावना, भावात्मक एकता और शैक्षिक कार्यक्रम, भावात्मक एकता समिति द्वारा निर्धारित कार्यक्रम कुछ अन्य प्रमुख शैक्षिक कार्यक्रम शिक्षा पर नियंत्रण, राज्य के नियंत्रण से मुक्त शिक्षा, शिक्षा पर राज्य का नियंत्रण का वर्णन किया गया।

इकाई– 13 राज्य और शिक्षा

इकाई की रूपरेखा

13.0 प्रस्तावना

13.1 उद्देश्य

13.2 राज्य का सम्प्रत्यय

13.3 राज्य के प्रकार

- 13.3.1 राजतंत्रात्मक राज्य और शिक्षा
- 13.3.2 जनतंत्रात्मक राज्य और शिक्षा
- 13.3.3 मार्क्सवादी राज्य और शिक्षा

13.4 राज्य और शिक्षा के सम्बन्ध की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

- 13.4.1 वैदिक काल में राज्य और शिक्षा
- 13.4.2 बौद्ध काल में राज्य और शिक्षा
- 13.4.3 मुस्लिम काल में राज्य और शिक्षा
- 13.4.4 आधुनिक काल में राज्य और शिक्षा

13.5 शिक्षा पर नियन्त्रण

- 13.5.1 राज्य के नियन्त्रण से मुक्त शिक्षा
- 13.5.2 शिक्षा पर राज्य का नियन्त्रण
- 13.5.3 निष्कर्ष

3.6 शैक्षिक अभिकरण के रूप में राज्य में नियन्त्रण

3.7 सारांश

3.8 अभ्यास प्रश्न

3.9 बोध प्रश्नों के उत्तर

3.0 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई में हम समस्त प्राकृतिक तथा मनुष्यकृत संस्थाओं में सबसे श्रेष्ठ स्था 'राज्य' तथा मानव को पशु श्रेणी से ऊपर उठाकर उसे सर्वोत्तम जीव बनाने

वाली संस्था 'शिक्षा' के आपसी सम्बन्धों के विषय में अध्ययन करेंगे। उनका यह अध्ययन प्राचीन परिप्रेक्ष्य से लेकर आधुनिक संदर्भ में भी देखा जाएगा। इस इकाई में आप राज्य के नियंत्रण से मुक्त शिक्षा तथा शिक्षा पर राज्य का नियंत्रण के प्रभावों को जान सकेंगें। इस इकाई में शैक्षिक अभिकरण के रूप में राज्य के कार्यों का वर्णन किया गया है।

एक अध्यापक के रूप में राज्य और शिक्षा के सम्बन्धों के विषय में आपको जानकारी होना अति आवश्यक है। इसी को ध्यान में रखते हुए इस इकाई में राज्य और शिक्षा के सम्बन्धों की विवेचना विभिन्न संदर्भों में प्रस्तुत की गई है।

13.1 उद्देश्य:-

राज्य और शिक्षा के सम्बन्धों से सम्बंधित इस इकाई के अध्ययन से आप इस योग्य हो जाएंगे कि:-

- राज्य और शिक्षा के मध्य के सम्बन्धों को जान सकेंगे।
- शिक्षा पर राज्य के प्रभावों की व्याख्या कर सकेंगे।
- शैक्षिक अभिकरण के रूप में राज्य के कार्यों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- शिक्षा में राज्य की भूमिका की आप समीक्षा कर सकेंगे।

13.2 राज्य का सम्प्रत्यय:-

समस्त प्राकृतिक तथा मनुष्यकृत संस्थाओं में राज्य ही सबसे अधिक शक्तिशाली संस्था है। अन्य समस्त संस्थाएं इसके अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत होती हैं। 'राज्य' कम या अधिक मनुष्यों का एक ऐसा समुदाय है जो किसी निश्चित भू-भाग पर रहता है तथा जिनकी अपनी एक सुसंगठित सरकार होती है और जो आंतरिक या वाह्य क्षेत्र में सर्वोच्च तथा स्वतन्त्र होता है। राज्य एक अत्यन्त महत्वपूर्ण संस्था है। मानव का सभी प्रकार का विकास, चाहे वह सामाजिक हो या आर्थिक राजनीतिक हो या धार्मिक, या फिर उसका शैक्षिक विकास हो, सभी राज्य में ही सम्भव है। राज्य प्रत्येक को सुरक्षा की गारंटी देता है। राज्य व्यक्ति के व्यक्तित्व के पूर्ण विकास की आधार शिला प्रदान करता है।

'गार्नर' का कहना है "राज्य व्यक्तियों के उस अल्पसंख्यक या बहुसंख्यक समुदाय या संगठन को कहते हैं जो एक निश्चित भू-प्रदेश में निवास करता हो, जिसकी एक संगठित सरकार हो, जो वाह्य नियंत्रण से पूर्ण तथा अथवा प्राय: स्वतन्त्र हो तथा जिसकी आज्ञा का पालन अधिकांश जनता स्वाभाविक रूप से करती हो।"

इसी प्रकार के विचार 'फिलीमोर' महोदय ने भी व्यक्त किये हैं "राज्य मनुष्यों का वह समुदाय है जो स्थाई रूप से एक निश्चित भू-भाग में निवास करता हो, जो सामान्य कानून, रीति-रिवाज तथा परम्परा से एक राजनीतिक संगठन में बंधा हो और जो एक संगठित शासन द्वारा उसे प्रदेश के समस्त व्यक्तियों एवं वस्तुओं पर स्वतन्त्रता अथवा प्रभुत्व द्वारा नियन्त्रण करता हो और जो युद्ध करने एवं शांति की स्थापना करने तथा विश्व के राष्ट्रों के साथ सब प्रकार के अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध स्थापित करने की क्षमता रखता है।''

इस तरह से हम राज्य को निम्न चार तत्वों के रूप में परिभाषित कर सकते हैं:-

i. जनसंख्या

ii. निश्चित भू-भाग

iii. सम्प्रभुता

iv. सरकार

यहाँ यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि राज्य का सम्प्रत्य राष्ट्र से अलग है, जिन्हें भी प्राय: एक समझ लिया जाता हैं। राज्य के अनिवार्य तत्व- सम्प्रभुता और सरकार का होना राष्ट्र के लिए अनिवार्य नहीं है।

बोध प्रश्न:-

टिप्पणी-

i. नीचे की जगह आपके उत्तरों के लिए है।

ii. अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से करें।

प्रश्न १- राज्य के प्रमुख तत्व कौन-कौन से हैं?

उत्तर .....

.....

3.3 राज्य के प्रकार और शिक्षा से उनका सम्बन्ध:-

राज्य क्या है? यह बात स्पष्ट हो जाने के पश्चात अब हमारे समक्ष यह प्रश्न ठता है कि राज्य कितने प्रकार के होते हैं? यदि हम राज्य के प्राचीन समय और अब क विकास पर नजर डालें तो हम पाएंगे कि राज्य के स्वरूप और उनकी प्रणाली में मय और परिस्थितियों के अनुसार समय-समय पर परिवर्तन होता आया है जिसके हमें

राज्य के अनेक रूप देखने को मिलते हैं जिनमें प्रमुख रूप हैं- राजतंत्र, जनतंत्र और मार्क्सवादी राज्य

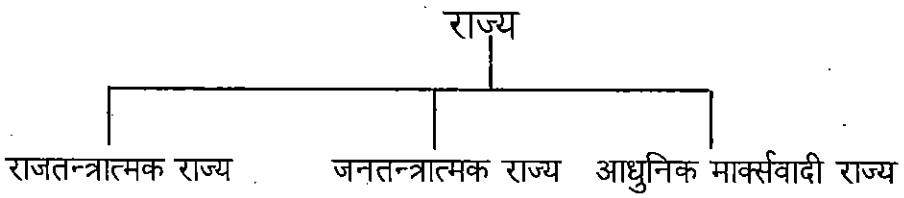

(चित्र १३.१ राज्यों के प्रकार)

अरस्तु ने सत्ता के आधार पर राज्य को तीन वर्गों में विभाजित किया:-

१. **एकतन्त्र**- जिसमें सत्ता एक व्यक्ति में निहित थी।

२. **अल्पतन्त्र**- जिसमें सत्ता कुछ व्यक्तियों में निहित होती थी।

३. **वैधानिक जनतन्त्र**- जिसमें सत्ता जनता में निहित होती थी।

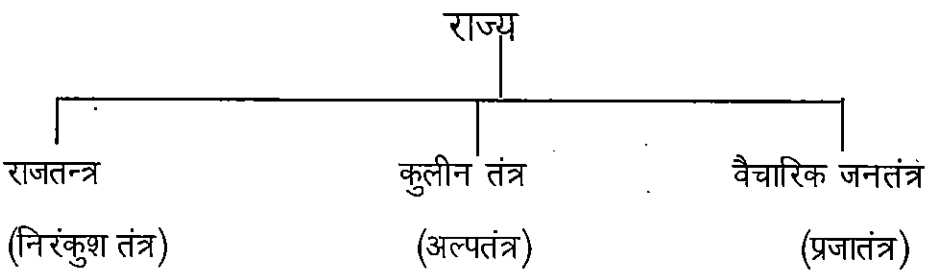

(चित्र १३.२ अरस्तु का राज्य का वर्गीकरण)

13.3.1 राजतंत्रात्मक राज्य और शिक्षा:-

राज्यतंत्रात्मक राज्य में शासन की सम्पूर्ण शक्तियाँ एक ही व्यक्ति के हाथों में केन्द्रित हैं और ये शक्तियाँ उस व्यक्ति को वंशानुगत रूप से प्राप्त होती हैं। राजतन्त्रात्क राज्य में शिक्षा का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व राजा पर ही होता है। वही अपने राज्य में शिक्षा के विकास और उसके प्रसार के लिए पूर्णतया जिम्मेदार होता है। अत: राजतंत्रात्मक राज्य में राजा को भी पूर्ण रूप से शिक्षित होना चाहिए। अन्यथा उससे शैक्षिक नीतियों के निर्माण और निर्धारण में त्रुटियाँ होने की सम्भावना बनी रहेगी। एक पूर्ण रूप से शिक्षित शासक ही उचित शैक्षिक नीतियों का निर्धारण कर सकता है। शिक्षा द्वारा ही उसे अपने कर्तव्यों और जिम्मेदारियों का बोध होता है। एक अशिक्षित शासक लुई १६वाँ

की तरह अपने कर्तव्यों से पूर्णरूप से विमुख रहता है जिससे उसका और उसके राज्य दोनों का विकास अवरूद्ध हो जाता है।

13.3.2. जनतंत्रात्मक राज्य और शिक्षाः–

राजतंत्र की खामियों के परिणाम स्वरूप जनतंत्रात्मक राज्यों का विकास हुआ। जनतंत्रात्मक राज्यों से तात्पर्य ऐसे राज्यों से है जहाँ जनता स्वयं अपना शासन करती है। अर्थात जनता द्वारा चुने गये प्रतिनिधियों को कुछ निश्चित समय के लिए शासन सत्ता सौंप दी जाती हैं।

जनतंत्रात्मक राज्य में शिक्षा को अत्याधिक महत्व दिया जाता है तथा इसकी अनिवार्यता पर प्रमुख रूप से बल दिया जाता है। चूँकि जनतंत्र में जनता द्वारा चुनें गये प्रतिनिधि ही शासन करते हैं। अत: जनता को शिक्षित, विवेकी और स्वतंत्र विचारों का होना अति आवश्यक है अन्यथा वह दबाव में आकर या अन्य किसी पूर्वाग्रह से ग्रसित होकर गलत व्यक्ति का भी चुनाव कर सकता है। उदाहरणार्थ:- एक व्यक्ति चुनाव में जातिगत पूर्वाग्रह से ग्रसित होकर, एक योग्य प्रत्याशी को अपना वोट (मत) न देकर अपनी ही जाति या किसी विशेष जाति के व्यक्ति को वोट देता है।

अत: हम कह सकते हैं कि जनतंत्र की सफलता का सबसे अनिवार्य तत्व है 'शिक्षा'। यही व्यक्ति में विवेक और स्वतंत्र चिंतन का विकास करती है।

13.3.3. मार्क्सवादी राज्य और शिक्षाः–

मार्क्सवादी या समाजवादी राज्यों से ताप्पर्य उन राज्यों से है जहाँ शासन श्रमिक या सर्वहारा वर्ग के आधीन होता है। मार्क्सवादी राज्य में शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। शिक्षा के द्वारा सर्वहारा समाज को अपने अधिकारों का बोध हो सकता है जिनकी प्राप्ति के लिए वे संघर्ष कर सकते हैं।

बोध प्रश्नः-

टिप्पणी–

i. नीचे की जगह आपके उत्तरों के लिए है।

ii. अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से करें।

प्रश्न २- अरस्तु ने राज्य को मुख्य रूप से कितने वर्गों में बाँटा हैं?

उत्तर .....

.....

प्रश्न ३- जनतंत्रात्मक राज्य में शिक्षा के महत्व पर प्रकाश डालिए ?

उत्तर .....

.....

.....

13.4 राज्य और शिक्षा के सम्बन्ध की ऐतिहासिक पृष्ठभूमिः-

जब से राज्य जैसी संस्था अस्तित्व में आयी तभी से शिक्षा उससे शिक्षा घनिष्ठ रूप से जुड़ी रही है। कभी तो यह राज्य के पूर्ण अधिकार में रही और कभी निजी हाथों में किसी वर्ग विशेष के अधिकार क्षेत्र में रही।

13.4.1. वैदिक काल में राज्य और शिक्षाः-

यद्यपि वैदिक काल में शिक्षा राज्य का प्रमुख विषय रहा, किन्तु इस काल में सारी शिक्षा व्यवस्था एवं उनका नियंत्रण एक विशेष ब्राह्मण वर्ग तक ही सीमित था। अध्ययन अध्यापन से सम्बन्धित सारी जिम्मेदारियाँ इसी वर्ग पर थीं। और वह वर्ग अपनी इस जिम्मेदारी को भली भाँति निभाता था। वैदिक कालीन शिक्षा 'गुरू कुल' परम्परा पर आधारित थी। जिसमें विद्यार्थी गुरू के पास रहकर शिक्षा ग्रहण करता था। जब तक वह शिक्षा ग्रहण करता था, उसकी समस्त जिम्मेदारियाँ उसके गुरू पर होती थी। इस काल में अध्यापन को एक पुनीत कर्तव्य माना जाता था।

अब प्रश्न यह उठता है कि क्या इस काल में शिक्षा पर राज्य की कोई जिम्मेदारी नहीं थी ? इन प्रश्नों के उत्तर में हम यह कह सकते हैं कि इस काल में राज्य एक संरक्षक की भूमिका अदा करता था। वह आश्रमों को उसकी आर्थिक जरूरतों को ध्यान में रखते हुए उन्हें दान देता था तथा आश्रमों को सभी प्रकार की सुरक्षा की गारंटी देता था।

इस प्रकार राज्य द्वारा शिक्षा को पूर्ण रूप से प्रोत्साहन प्राप्त था। और वह इसके विकास का पूरा ध्यान रखता था।

13.4.2. बौद्ध काल में राज्य और शिक्षाः-

बौद्ध काल तक आते-आते शिक्षा के आश्रम बड़े-बड़े अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के शिक्षा केन्द्रों में परितवर्तित हो चुके थे। जिन्हें हम आधुनिक भाषा में विश्वविद्यालय कह सकते हैं। ये प्रमुख केन्द्र थे- बल्लभी , विक्रमशिला, नालन्दा आदि। इस काल में

आश्रमों का स्थान बौद्ध संघों और मठों ने ले लिया। संघो और मठों में आचार्य अपने शिष्यों की देखरेख अपने स्वयं के ही पुत्र के समान किया करते थे। वैदिक काल की भांति आचार्य ही अपने शिष्य की दिनचर्या निश्चित करते थे, उनके वस्त्र, भोजन, आवास आदि की व्यवस्था किया करते थे तथा पूरे मनोयोग से शिक्षा प्रदान करते थे। गुरू का दायित्व था कि वह शिष्य के शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास का पूरा-पूरा ध्यान रखें।

मठों के अपने निश्चित नियम व सिद्धांत होते थे जिनके अनुसार सारी शिक्षा व्यवस्था का संचालन किया जाता था। वैदिक काल की ही भांति इस काल में भी राज्य संरक्षक की भूमिका निभाता था। तत्कालीन मौर्य और गुप्त शासकों ने मठों के संचालन हेतु पर्याप्त सहायता प्रदान की। इन शासकों ने शिक्षा के प्रति अपने दायित्वों को समझ अनेक मठों एवं विहारों का निर्माण करवाया।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि राज्य ने शिक्षा के क्षेत्र में अपने कर्तव्यों का पालन करते हुए शिक्षा के विकास में अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई।

3.4.3. मुस्लिम काल में राज्य और शिक्षाः–

जैसा कि हम जानते हैं कि इस काल के अधिकांश शासक विदेशी थे और उनका मुख्य उद्देश्य साम्राज्य विस्तार था। अतः उन्होंनें शिक्षा पर बहुत ज्यादा ध्यान नहीं दिया। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि उन्होंने शिक्षा की पूर्णतया उपेक्षा की। उन्होंने शिक्षा के केन्द्रों जैसे- मकतब, मदरसो, आदि की स्थापना और उनके संरक्षण पर ध्यान दिया। विद्वानों को उन्होंने राजाश्रय प्रदान किया।

3.4.3. आधुनिक काल में राज्य और शिक्षाः–

ब्रिटिश शासन की स्थापना के पश्चात राज्य की ओर से शिक्षा के विकास पर विशेष रूप से ध्यान दिया गया। १८५४ का 'बुड का घोषणा पत्र' भारत में शिक्षा का 'मैग्नाकार्टा' माना जाता है। मैकाले का 'विवरण पत्र' शिक्षा के क्षेत्र में मील का पत्थर साबित हुआ। अंगेजी सरकार ने शिक्षा के प्रसार और विकास हेतु अनके आयोगों की नियुक्ति की जैसे- हण्टर कमीशन, सैडलर आयोग आदि। आजादी के पश्चात् भी शिक्षा के विकास हेतु राधाकृष्णन आयोग, मुदालियर आयोग, कोठारी आयोग, राष्ट्रीय शिक्षा नीति १९८६ तथा संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति १९९२ द्वारा शिक्षा के विकास हेतु काफी प्रयास हुआ है।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि शिक्षा और राज्य का आपस में घनिष्ठ सम्बन्ध है। राज्य ने शिक्षा के विकास हेतु काफी योगदान किया और शिक्षा के माध्यम से ही राज्य

के विकास को गति प्राप्त हुई है।

बोध प्रश्नः-

टिप्पणी-

i. नीचे की जगह आपके उत्तरों के लिए है।

ii. अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से करें।

प्रश्न ४- भारत में शिक्षा का मैग्नाकार्टा किसे कहा गया है?

उत्तर .....

.....

प्रश्न ५- बौद्ध काल में शिक्षा के प्रमुख केन्द्रों के नाम बताइए।

उत्तर .....

.....

13.5 शिक्षा पर नियन्त्रणः-

हमारे समक्ष एक समस्या आती है शिक्षा पर नियन्त्रण की। हमारी शिक्षा व्यवस्था कैसी हो? शिक्षा का संचालन कैसे हो? शिक्षा के संदर्भ में कौन-कौन सी नीतियाँ लागू की जाए ? आदि प्रश्न शिक्षा के नियंत्रण से सम्बन्धित हैं।

शिक्षा पर नियन्त्रण का प्रश्न बहुत ही विवादास्पद विषय है। इस सम्बन्ध में अनेक बात है। कुछ लोगों का मानना है कि शिक्षा पर राज्य का नियंत्रण होना चाहिए, कुछ का मानना है सामाजिक संस्थाओं का और कुछ का मानना है कि शिक्षा पर व्यक्तिगत अधिकार होना चाहिए। अर्थात राज्य के अधिकार से मुक्त शिक्षा।

13.5.1 राज्य के नियंत्रण से मुक्त शिक्षाः-

इस विचारधारा के विद्वानों का मानना है कि शिक्षा को राज्य के नियंत्रण से मुक्त होना चाहिए। इस विचारधारा के समर्थक प्रथम तर्क यह देते हैं कि राज्य का शिक्षा पर नियंत्रण व्यक्ति के स्वतंत्र चिंतन में बाधक होता है। इसमें व्यक्ति केवल राज्य द्वारा इंगित शिक्षा में ही ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करता है। इस तरह के नियंत्रण में व्यक्ति को स्वतंत्र वैज्ञानिक खोज करने एवं आविष्कार का समुचित अवसर प्राप्त नहीं हो पाता है।

इस मत के समर्थक दूसरा तर्क यह भी देते हैं कि राज्य के नियन्त्रण में व्यक्तित्व का पूर्ण विकास सम्भव नहीं हो सकता। क्योंकि इसमें व्यक्तिगत रूचि और साधनों पर ध्यान नहीं दिया जाता। व्यक्ति को राज्य द्वारा निर्देशित नियमों के आधार पर ही चलना पड़ता है। राज्य नियन्त्रण शिक्षा-शिक्षार्थियों और वैज्ञानिकों की स्वतन्त्रता को अवरूद्ध कर उन्हें एक कठपुतली की तरह राज्य के दिशा निर्देशों पर चलने के लिए विवश कर देती है।

अतः इस विचारधारा के समर्थक शिक्षा को राज्य के नियंत्रण से मुक्त रखना चाहते हैं। और इसमें व्यक्तिगत स्वतंत्रता का समर्थन करते हैं।

3.5.2 शिक्षा पर राज्य का नियन्त्रणः–

इसके समर्थको का मानना है कि शिक्षा पर राज्य का नियन्त्रण होना चाहिए क्योंकि यदि शिक्षा को व्यक्तिगत नियंत्रण में छोड़ दिया जाए तो ये शिक्षण संस्थाएं न होकर व्यावसायिक संस्थाएं बन जाएंगी। कम वेतन की वजह से इन संस्थाओं को योग्य शिक्षक उपलब्ध नहीं हो पाएंगे और इस प्रकार से शिक्षा का स्तर पूर्ण रूप से गिर जायेगा। ऐसी संस्थाएं छात्रों के हितों की उपेक्षा करती हैं क्योंकि वे अपने स्वयं के हितों को प्राथमिकता देती है।

अतः शिक्षा पर राज्य का नियन्त्रण आवश्यक है क्योंकि राज्य ही छात्रों और विद्वानों तथा शिक्षा के महत्व को समझ सकता है औद देश और समाज की आवश्यकताओं के अनुरूप उन्हें सही दिशा प्रदान कर सकता है।

3.5.3 निष्कर्षः–

यदि हम उपरोक्त विचार धाराओं पर स्पष्ट निगाह दौड़ाएं तो हम पाएंगे कि उपरोक्त दोनों विचारधाराओं में कुछ न कुछ गुण और दोष दोनों हैं।

जहाँ तक वर्तमान का प्रश्न है शिक्षा पर राज्य का नियन्त्रण आवश्यक है किन्तु इसका यह तात्पर्य नहीं है कि व्यक्तिगत संस्थाओं की पूर्ण रूप से उपेक्षा कर दी जाए। शिक्षा पर राज्य का नियंत्रण तो होना चाहिए किन्तु उसे व्यक्तिगत संस्थाओं को भी कुछ स्वतंत्रता और आर्थिक सहायता प्रदान करनी चाहिए, जिससे जनता में आत्म निर्भरता की भावना सुदृढ़ हो सकेगी। उन्हें अपनी रूचि और क्षमता के अनुसार कार्य करने का अवसर प्राप्त हो सकेगा। जिससे व्यक्ति और समाज तथा राज्य दोनों का हित साध्य सम्भव हो सकेगा।

बोध प्रश्नः-

टिप्पणी-

i. नीचे की जगह आपके उत्तरों के लिए है।

ii. अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से करें।

प्रश्न ६- शिक्षा पर राज्य को नियन्त्रण पर अपने विचार लिखिए ?

उत्तर .....

.....

13.6 शैक्षिक अभिकरण के रूप में राज्य के कार्यः-

मनुष्य के व्यक्तित्व के विकास में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान है। शिक्षा ही राष्ट्रीय विकास की आधारशिला होती है। अतः एक शैक्षिक अभिकरण के रूप में राज्य के रूप में राज्य अनेक कर्तव्यों का सम्पादन करता है।

राष्ट्रीय शिक्षा योजना का निर्माण और उसका संचालनः-

एक शैक्षिक अभिकरण के रूप में राज्य का यह सर्व प्रमुख कर्तव्य है कि वह एक राष्ट्रीय शिक्षा योजना का निर्माण करे और भली-भाँति उसके संचालन की व्यवस्था करे। अब प्रश्न यह उठता है कि राज्य द्वारा बनाई गई राष्ट्रीय शिक्षा योजना का स्वरूप क्या हो? उसे किस प्रकार से कार्यान्वित किया जाए? इन प्रश्नों के उत्तर में हम कह सकते हैं कि राष्ट्रीय शिक्षा योजना ऐसी होनी चाहिए जिसमें सभी वर्गों का हित निहित हो तथा जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को अपने सर्वांगीण विकास हेतु समुचित अवसर उपलब्ध हो सकें, चाहे वह किसी भी जाति-धर्म अथवा वर्ग का क्यों न हो।

राज्य को शिक्षा योजना के निर्माण के समय यह भी ध्यान रखना चाहिए कि योजना शिक्षा के सभी स्तरों से सम्बन्धित होनी चाहिए। अर्थात प्राथमिक, माध्यमिक और उच्च शिक्षा सभी से इसे सम्बन्धित होना चाहिए। साथ ही साथ यह भी ध्यान देना चाहिए कि इस योजना में राष्ट्र की भावनात्मक एकता भी परिलक्षित होती हो।

राष्ट्रीय शिक्षा योजना ऐसी होनी चाहिए कि व्यक्ति के सर्वांगीण विकास का मार्ग प्रशस्त कर उसके व्यक्तित्व का पूर्ण विकास कर सके।

योजना का निर्माण सुरक्षा, तत्कालीन परिस्थितियों और आवश्यकता में ध्यान में रखकर किया जाना चाहिए। सबसे महत्वपूर्ण बात यह हो कि राज्य यह ध्यान रखे कि योजना ठीक प्रकार से संचालित हो रही है अथवा नहीं राज्य का यह प्रमुख दायित्व

है कि वह इसकी निगरानी करे कि क्या समाज और विद्यालय में बालक की समुचित प्रबन्ध है कि नहीं?

शिक्षक प्रशिक्षण की व्यवस्था करना:-

एक अध्यापक ही राष्ट्र का निर्माता होता है। वही राष्ट्र की सम्पत्ति 'विद्यार्थियों' को एक कुशल कारीगर की भाँति एक सुन्दर साँचे में ढालता है। यदि अध्यापक अयोग्य हो तो तो हम सुन्दर सृष्टि की कल्पना नहीं कर सकते। अत: राज्य का प्रमुख दायित्व बनता है कि वह योग्य और कुशल अध्यापकों की नियुक्ति करे तथा अध्यापकों को दक्ष बनाने हेतु उनके प्रशिक्षण की व्यवस्था करे।

सैन्य प्रशिक्षण की व्यवस्था करना:-

छात्रों में सैन्य गुणों का विकास करना एक प्रमुख दायित्व है। जिससे छात्र आवश्यकता पड़ने पर अपने देश की सेवा कर सके। इसके लिए राज्य को उनके प्रशिक्षण की व्यवस्था करनी चाहिए। सैन्य स्कूलों की स्थापना, सैन्य अविष्कारों एवं खोज हेतु प्रयोगशालाओं आदि की स्थापना राज्य को करनी चाहिए।

बेराजगारी दूर करने के लिए व्यवसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था:-

राज्य को इस बात का हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि आज की युवा पीढ़ी समाज पर बोझ न बने, बल्कि वह कुछ ऐसा करे कि समाज को वह कुछ दे सके। राज्य का दायित्व है कि उनके लिए ऐसे शिक्षण और प्रशिक्षण की व्यवस्था करे। जिससे उन्हें रोजगार के अवसर उपलब्ध हो सकें। राज्य को चाहिए कि वह विद्यालयों में तकनीकी शेक्षा का प्रबन्ध करे, व्यवसायिक विद्यालयों की स्थापना करे। राज्य का यह कर्तव्य है के वह व्यक्ति की रूचि या रूझान के अनुसार उसकी शिक्षा की व्यवस्था करे।

बौद्धिक विकास के प्रति राज्य के कार्य:-

राज्य का एक प्रमुख दायित्व यह भी बनता है कि वह ऐसी परिस्थितियाँ उत्पन्न करे जिसमें एक बालक अपना सर्वोत्म विकास कर सके। राज्य को सभी को उसकी रूचि और क्षमता के अनुसार विकास के अवसर प्रदान करने चाहिए। राज्य को चाहिए कि प्राथमिक और माध्यमिक स्तर की शिक्षा को सभी के लिए अनिवार्य कर दिया जाना चाहिए। इसके पश्चात यदि बालक की रूचि हो तो उसे आगे उच्च शिक्षा हेतु भेजना चाहिए अन्यथा उसकी रूचि और योग्यता के अनुसार उसे व्यवसायिक प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए।

राज्य को चाहिए कि वह समय-समय पर प्रदर्शिनियों, सेमिनार, प्रतियोगिताओं आदि का आयोजन और उनमें कलाकारों को सम्मानित करे तथा उन्हें संरक्षण पदान

करे। जिससे इन कलाकारों का मनोबल बढ़ेगा और उनकी प्रतिभा भली-भाँति निखकर कर सामने आ जाएगी। नये कलाकारों के लिए ये सब प्रोत्साहन का कार्य करेंगे।

राज्य को चाहिए कि वह अपने साधनों जैसे समाचार पत्र, पत्रिकाएं, टेलीवीजन, रेडियो, चलचित्रों और सांस्कृतिक कार्यक्रमों आदि का प्रयोग ठीक प्रकार से करे। अन्यथा इनके दुरूपयोग से समाज के नैतिक और बौद्धिक पतन की सम्भावनाएं प्रबल हो जाती हैं।

बोध प्रश्नः-

टिप्पणी-

i. नीचे की जगह आपके उत्तरों के लिए है।

ii. अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से करें।

प्रश्न ७- शैक्षिक अभिकरण के रूप में राज्य के कौन-कौन से कार्य हैं?

उत्तर .....

.....

13.7 सारांशः-

राज्य और शिक्षा का सम्बन्ध आपस में बहुत घनिष्ठ हैं शिक्षा के विकास और प्रसार में राज्य की महती भूमिका होती है। राज्य एक संगठित समुदाय होता है जो अपने भू-भाग के सम्पूर्ण व्यक्तियों और समुदायों पर नियन्त्रण रखता है। वह आंतरिक और वाह्य नियन्त्रण से मुक्त होता है। इसकी अपनी एक सरकार होती है तथा इसकी आज्ञा का पालन राज्य के निवासी स्वाभाविक रूप से करते हैं। अरस्तू ने राज्य के तीन रूप बताए- राजतंत्र, अल्पतंत्र और जनतंत्र। वर्तमान समय में मुख्यतया राज्य जनतंत्र और समाजवादी राज्य में रूप में ही है। इस प्रकार के राज्यों में शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। राज्य के विकास के साथ ही साथ शिक्षा का भी विकास जुड़ा हुआ है। वैदिक काल और बौद्ध काल में राज्य संरक्षक की भूमिका निभाते हुए शिक्षा के विकास में अपना योगदान दिया। मध्यकाल में साम्राज्य विस्तार और युद्धों के कारण शिक्षा की गति थोड़ा मंद पड़ गई किन्तु अंगेजों के समय में इसके विकास के लिए राज्य की ओर से काफी प्रयास किये गयें। स्वन्त्रता के पश्चात् शिक्षा और राज्य का मुख्य विषय बन गई और इसके विकास हेतु कई आयोगों की नियुक्ति की गई।

शिक्षा हमेशा राज्य के नियंत्रण में रही किन्तु इसमें कुछ व्यक्तिगत नियंत्रण की

जयरत है। क्योंकि बिना व्यक्तिगत स्वतन्त्रता के व्यक्ति का सम्पूर्ण विकास सम्भव नहीं। एक शैक्षिक अभिकरण के रूप में राज्य अनेक कार्यो को सम्पादित करता है जैसे- योजना का निर्माण, शिक्षक प्रशिक्षण की व्यवस्था, व्यवसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था, बौद्धिक विकास आदि।

13.8 अभ्यास कार्य:-

निम्न प्रश्नों के उत्तर लिखिए:-

प्रश्न १. 'राज्य' से आप क्या समझते हैं?

प्रश्न २. सभी प्रकार के राज्यों के नामों की सूची बनाइए।

प्रश्न ३. शिक्षा पर राज्य का नियंत्रण क्यों आवश्यक है?

प्रश्न ४. राज्य की राष्ट्रीय शिक्षा योजना पर टिप्पणी लिखिए।

13.9 बोध प्रश्नों के उत्तर:-

१. राज्य के चार प्रमुख तत्व है-

i. जनसंख्या

ii. निश्चित भू-भाग

iii. सरकार

iv. सम्प्रभुता

२. अरस्तू ने राज्य को मुख्य रूप से तीन वर्गों में बाटा है-

i. राजतंत्र

ii. कुलीनतंत्र

iii. जनतंत्र

३. जनतंत्रात्मक राज्य में शिक्षा उसकी आधारशिला होती है। क्यों कि जनतंत्र मे जनता द्वारा चुने गये प्रतिनिधि ही सत्ता का संचालन करते हैं। अत: प्रति निधियों के सत्ता संचलन और जनता द्वारा योग्य प्रतिनिधियों के चुनाव करते समय शिक्षा की महती भूमिका होती है। जनता के अशिक्षित होने के करण अयोग्य व्यक्ति भी चुना जा सकता है।

४. वुड के घोषणा पत्र को भारत का मैग्नाकार्टा कहा जाता है।

५. बौद्ध काल में शिक्षा के प्रमुख केन्द्र थे- बल्लभी विक्रमाशिला, नालन्दा आदि।

६. शिक्षा पर जहाँ तक राज्य के नियन्त्रण का प्रश्न है वह आवश्यक है। साथ ही साथ शिक्षा पर व्यक्तिगत नियंत्रण भी जरूरी है। क्योंकि इसमें व्यक्ति स्वतंत्र रूप से चिंतन करने का अवसर प्राप्त होता है। अत: राज्य के नियन्त्रण के साथ-साथ कुछ व्यक्तिगत नियंत्रण या स्वतंत्रताएं शिक्षा के विकास के लिए आवश्यक हैं।

७. शैक्षिक अभिकरण के रूप में राज्य के प्रमुख कार्य इस प्रकार हैं:-

i. राष्ट्रीय शिक्षा योजना का निर्माण करना

ii. शिक्षक प्रशिक्षण की व्यवस्था करना

iii. सैन्य प्रशिक्षण की व्यवस्था करना

iv. बौद्धिक विकास से सम्बन्धित कार्य

v. यवसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था करना

इकाई– 14 राष्ट्रीयता के लिए शिक्षा

इकाई की रूपरेखा :-

14.1 प्रस्तावना

14.2 उद्देश्य

14.3 राष्ट्रीयता से तात्पर्य

14.4 राष्ट्रीयता की आवश्यकता

14.5 भारतीय राष्ट्र

14.6 राष्ट्र के प्रति प्रेम

14.7 साहित्य और राष्ट्रीय एकता

14.8 भारत में राष्ट्रीयता के मार्ग में बाधाएं

14.8.1 क्षेत्रीयता या क्षेत्रियता की भावना

14.8.2 साम्प्रदायिकता

14.8.3 जातिवाद

14.8.4 भाषावाद

14.8.5 भारतीय संस्कृति के प्रति उदासीनता

14.8.6 आर्थिक असमानता

14.8.7 सरकार की दोषपूर्ण नीति

14.8.8 अज्ञानता और अशिक्षा

14.8.9 राष्ट्रीयता के मार्ग की बाधाओं को दूर करने के उपाय

14.9 शैक्षिक कार्यक्रम

14.9.1 भावात्मक एकता समिति के सुझाव

14.9.2 राष्ट्रीय एकता सम्मेलन के सुझाव

14.9.3 राष्ट्रीय एकता के लिए विभिन्न स्तरों पर शैक्षिक कार्यक्रम

14.10 शिक्षा और सामाजिक तथा राष्ट्रीय एकता

14.11 सारांश

14.12 अभ्यास कार्य

14.13 बोधप्रश्नों के उत्तर

14.1 प्रस्तावना

दिलों का एक अटूट बंधन व्यक्तियों के मन की एक भावना जो लोगों को एकता के सूत्र में बाँधती है राष्ट्रीयता कहलाती है। शिक्षा इस राष्ट्रीयता का एक महत्वपूर्ण आधार स्तम्भ है जो लोगों के दिलों को एकता के सूत्र में पिरो कर उन्हें खण्डित होने से रोकती है। इस इकाई में हम राष्ट्रीयता के परिप्रेक्ष्य में शिक्षा के महत्व और राष्ट्रीयता से उसके सम्बन्ध तथा उक्त पर पड़ने वाले प्रभावों के विषय में अध्ययन करेंगे।

इस इकाई में आप राष्ट्रीयता की आवश्यकता राष्ट्र के रूप में भारत, राष्ट्र के प्रतिप्रेम तथा साहित्य और राष्ट्रीय एकता के संदर्भ में प्रस्तुत विचारों के विषय में जानेंगे। भारत में राष्ट्रीयता के मार्ग में आने वाली प्रमुख बाधाओं इसके लिए चलाये गये विभिन्न शैक्षिक कार्यक्रमों, शिक्षा और सामाजिक तथा राष्ट्रीय एकता के मध्य सम्बन्धों के विषय में आप अध्ययन करेंगे।

14.2 उद्देश्य–

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य राष्ट्रीयता के लिए शिक्षा के महत्व और उसके प्रभावों की विवेचना करना है। इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- राष्ट्रीयता की आवश्यकता, राष्ट्रीयता के मार्ग में उत्पन्न होने वाली बाधाओं के विषय में जान सकेंगे।
- साहित्य और राष्ट्रीय एकता के मध्य सम्बन्धों की व्याख्या कर सकेंगे।
- विभिन्न स्तरों पर शिक्षा के कार्यक्रमों की तुलना कर सकेंगे।
- राष्ट्रीयता के लिए शिक्षा के महत्व की समीक्षा कर सकेंगे।

14.3 राष्ट्रीयता से ताप्पर्य

"राष्ट्रीयता एक ऐसी भावना है जिसके कारण एक देश के लोग एकता के सूत्र में बंधे रहते हैं और जो अपने देश और देशवासियों के प्रति वफादार रहने की प्रेरणा देती है।

जन्म और जाति का बोध कराने वाले लैटिन भाषा के शब्द 'नेशियो' (Natio) से राष्ट्रीयता की उत्पत्ति मानी जाती। राष्ट्रीयता एक सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक भावना है जो लोगों को एकता के सूत्र में बाँधती है। इसी भावना के कारण लोग अपने देश एवं भूमि तक से प्यार करते हैं। इस प्रकार

राष्ट्रीयता एक भावात्मक शब्द है। इसी भावना के कारण लोग अपने देश पर संकट आने की स्थिति में अपने तन, मन और धन का बलिदान करने से पीछे नहीं हैं। जिमर्न ने राष्ट्रीयता को परिभाषित करते लिखा है। "राष्ट्रीयता सामूहिक भावना का एक रूप है जो विशिष्ट गहनता, समीपता तथा महत्ता तथा महत्ता से एक निश्चित देश से सम्बंधित होती है।"

हेज के अनुसारः– "राष्ट्रीयता उन व्यक्तियों के समूह को कहते हैं जो या तो एक भाषा या परस्पर मिलती–जुलती बोलियाँ बोलते हैं तथा जिनकी समान ऐतिहासिक परम्पराएं होती हैं और इस प्रकार वे विशिष्ट संस्कृति की रचना करते हैं।"

14.4 राष्ट्रीयता की आवश्यकता

राष्ट्रीयता के सम्प्र..... को जान लेने के पश्चात अब हमारें समक्ष यह प्रश्न उठता कि राष्ट्रीयता क्यों आवश्यक है? राष्ट्रीयता की भावना किसी भी सभ्य राष्ट्र के लिए एक अनिवार्य तत्व है। राष्ट्रीयता की आवश्यकता को हम निम्न शीर्षकों के माध्यम से स्पष्ट कर सकते हैं।

देश प्रेम की प्रेरणा के लिएः–

राष्ट्रीयता की भावना लोगों में देश प्रेम का भाव उत्पन्न करती है और उन्हें देश हित के लिए अपना सर्वस्व बलिदान करने के लिए प्रेरित करती है। देशप्रेम के कारण ही व्यक्ति बड़े से बड़ा करने के लिए तत्पर हो जाता है।

राजनीतिक एकता की स्थापना के लिएः–

राष्ट्रीयता की भावना राजनीतिक एकता की स्थापना में महत्वपूर्ण योगदान देती है। राष्ट्रीयता से प्रेरित होकर ही विभिन्न जातियों व धर्मों के लोग एकता के सूत्र में संगठित हो जाते हैं और एक शक्तिशाली राष्ट्र का निर्माण करते हैं।

राज्यों के स्थायित्व के लिएः–

राष्ट्रीयता सभी राज्यों को स्थायित्व भी प्रदान करती है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि बीसवीं शताब्दी में अनेक ऐसे राज्य जिनका निर्माण राष्ट्रीयता के आधार पर न होकर जाति या भाषा के आधार पर हुआ था, वे अल्पकालीन ही रहे। इसके विपरीत राष्ट्रीय चेतना के आधार पर निर्मित राज्य अधिक स्थाई सिद्ध हुए।

सांस्कृतिक विकासः–

राष्ट्रीयता राष्ट्रयता देश के सांस्कृतिक विकास को प्रोत्साहित करती है। प्राचीन यूनान के महाकवि 'होमर' फ्रॉन्स के 'दान्ते' इंग्लैण्ड के 'टेनिसन, शैले, हामसपेन, जर्मनी के हींगेल आदि ने राष्ट्रीयता से प्रेरित होकर ही साहित्यक रचनाएं की हैं।

आत्म सम्मान की भावनाः–

राष्ट्रीयता व्यक्ति में आत्म सम्मान की भावना पैदा करती है और उसे गौरव की रक्षा के लिए प्रेरणा देती है।

विश्वबंधुत्व की भावना की पोषकः–

राष्ट्रीयता व्यक्ति के दृष्टिकोण को व्यापक बनाकर अंतर्राष्ट्रीय मैत्री और सहयोग को प्रोत्साहित करती है। इस प्रकार राष्ट्रीयता विश्वबंधुत्व की पोषक भी है।

आर्थिक विकास में योगदानः– राष्ट्रीयता राष्ट्र के आर्थिक विकास को भी प्रोत्साहित करती है। राष्ट्रींयता की भावना से प्रेरित होकर ही व्यक्ति अपने राष्ट्र को आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न बनाने के लिए एक जुट होकर कार्य करते हैं।

इस प्रकार उपरोक्त आधार पर स्पष्ट हो जाता है कि किसी भी देश अथवा राष्ट्र का स्थायित्व उसकी राष्ट्रीयता की भावना पर निर्भर करता है। राष्ट्र का विकास और प्रगति भी उसकी राष्ट्रीयता की भावना पर निर्भर करती है।

बोध प्रश्नः-

टिप्पणी-

i. नीचे की जगह आपके उत्तरों के लिए है।

ii. अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से करें।

प्रश्न १- राष्ट्रीयता से आप क्या समझते हैं?

उत्तर .....

.....

प्रश्न २- राष्ट्रीयता की भावना की आवश्यकता पर अपने विचार लिखिए?

उत्तर .....

.....

14.5 राष्ट्रीयता की आवश्यकता:–

आज विश्व परिदृश्य में भारत राष्ट्र अपने अन्दर विविधता में एकता को संजोए एक शक्ति के रूप में उभर रहा है। प्राचीन समय से ही भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना गहराई से समाई हुई है। हमेशा से ही सभी भारतीयों ने भारत को एक राष्ट्र के रूप में देखा है। किन्तु ब्रिटिस कालीन अनेक विद्वान इस बात को मानने को तैयार नहीं थे कि भारत एक राष्ट्र है अथवा उसमें एक राष्ट्र-राज्य बनने के लिए अपेक्षित राष्ट्रीय एकता विकसित करने की क्षमता है। इस प्रकार के विद्वानों में सीली जे० स्ट्रेशी प्रमुख थे।

यद्यपि हम यहाँ यह अवश्य मान सकते हैं कि भारत में आधुनिक राष्ट्रों की भांति शशक्त केन्द्र नहीं था। किन्तु फिर भी भारतीयों में वह भावना शुरू से विद्यमान थी जो राष्ट्रीयता के लिए आवश्यक थी। भारतीयों ने कश्मीर से लेकर कन्याकुमारी तक के क्षेत्र को एक राष्ट्र माना और इसे 'भारत वर्ष' की संज्ञा प्रदान की।

सम्पूर्ण भारत में चाहे वह कश्मीर हो या कन्याकुमारी, पश्चिम का सौराष्ट्र प्रान्त हो या पूर्व में असम या बंगाल, सभी जगह हमें एक ही प्रकार की संस्कृति और धर्म के दर्शन होते हैं। जिस तरह से राम और रहीम उत्तर भारत में पूजे जाते थे, उसी प्रकार से उनकी पूजा दक्षिण भारत में भी होती है।

इस तरह से स्पष्ट है कि भारत की पहचान हमेशा एक राष्ट्र के रूप में रही है। अत: इसकी राष्ट्रीयता में संदेह करना तर्कयुक्त प्रतीत नहीं होती है।

14.6 राष्ट्र के प्रति प्रेम:–

राष्ट्रीयता की भावना लोगों में अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम का भाव उत्पन्न करती है और उन्हें देश हित के लिए अपना सर्वस्व बलिदान करने को प्रेरित करती है। यह प्रेम की भावना ही राष्ट्रीयता का प्रमुख अनिवार्य तत्व है और इस राष्ट्र प्रेम की भावना को उत्पन्न करने का सर्वप्रमुख साधन शिक्षा है। शिक्षा व्यक्ति में देश-प्रेम का भाव जगाकर उसे राष्ट्रीयता की ओर उन्मुख करती है और वह व्यक्ति देश प्रेम या राष्ट्र प्रेम के कारण ही बड़े-से-बड़ा त्याग करने के लिए तत्पर हो जाता है।

भारतीयों में देश प्रेम की भावना प्राचीन समय से ही थी। किन्तु मध्य काल में यह भावना सुसुप्तावस्था में थी। ब्रिटिश काल में यह भावना और बलवती हुई। जिसका स्पष्ट प्रमाण हमें गाँधी आदि द्वारा चलाए गये आन्दोलनों से मिल जाता है।

शिक्षा प्रणाली इस प्रकार की होनी चाहिए जो लोगों में देश-प्रेम की भावना

उत्पन्न करे। लोगों को इस प्रकार शिक्षित करें कि लोग अपने तुच्छ स्वार्थों का त्याग कर अपने को राष्ट्र हित समर्पित करने हेतु प्रेरित हों।

यहाँ पर यह बात भी ध्यान देने योग्य है कि प्रायः राष्ट्र प्रेम और राष्ट्रीयता को एक दूसरे का पर्याय माना जाता है किन्तु दोनों में काफी अन्तर है। राष्ट्र-प्रेम से तात्पर्य देश के प्रति प्रगाढ़ प्रेम है। जब कि राष्ट्रीयता का विचार इससे विस्तृत अर्थ में लाया जाता है। राष्ट्रीयता में राष्ट्र के प्रति प्रेम के साथ ही भाषा, संस्कृति, परम्परा और इतिहास पर भी ध्यान दिया जाता है।

बोध प्रश्नः-

टिप्पणी-

i. नीचे दिये गये सीानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

ii. अपने उत्तरों को इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से कीजिए।

प्रश्न ३- क्या भारत को एक राष्ट्र कहा जा सकता है? क्यों?

उत्तर .....

.....

प्रश्न ४- राष्ट्रीयता और राष्ट्रप्रेम में क्या अन्तर है?

उत्तर .....

.....

14.7 साहित्य और राष्ट्रीय एकताः-

कहते हैं साहित्य समाज का दर्पण होता है। यही व्यक्ति को सही दिशा प्रदान करता है। साहित्य और राष्ट्रीय एकता का आपस में बड़ा गहरा सरोकार रहा है। साहित्यकारों ने अपने साहित्य के माध्यम से समय-समय पर राष्ट्रीय एकता के निर्माण एवं प्रोत्साहन में अपनी महती भूमिका अदा की है।

प्राचीन समय से ही विद्वानों ने राष्ट्रीय एकता के महत्व को समझा और यह राष्ट्रीय एकता उनके विचारों और कृतियों में अभिव्यक्त हुई। वैदिक ग्रन्थों में 'कश्मीर से कन्याकुमारी' तक के प्रदेश को एक मानकर राष्ट्रीय एकता के महत्व को स्वीकारा। जैन और बौद्ध के संदेशों में इस प्रकार की एकता के दर्शन होते हैं। मुहम्मद साहब ने प्रत्येक व्यक्ति को अल्लाह का नूर बताया और सभी को भाई-भाई की डोर में बाँधकर एक साथ चलने का आग्रह किया। महान मुगल सम्राठ अकबर ने इस एकता के महत्व

को समझा और सभी धर्मों की मूल बातों को अपने मंथन के पश्चात एक अलग धर्म की नींव डाली जिसमें प्रत्येक जाति एक थी हर धर्म समान था।

दाराशिकोह और अंतिम मुगल सम्राठ बहादुर शाह जफर ने सभी को अपना समझा देश भक्ति की अटूट भावना के साथ ये आग्र बढ़े। देश-प्रेम की भावना जफर के गीतों एवं शेरों में भी अभिव्यक्त हुई-

"मर कर भी न निकलेगी तेरी उल्फत,

मेरी मिट्टी से भी खुसवु-ए-वतन आऐगी।,,

मध्यकालीन भाक्ति आन्दोलन से सम्बंधित कवि जैसे कबीर, तुलसी, रैदास, मलूक दास आदि ने अपनी बाणी द्वारा तत्कालीन समाज को एकता में बाँधने का काम किया। कविवर तुलसी दास जी एक समन्वयकारी विचार धारा के कवि थे। इनकी रचनाओं में ऊँच-नीच और छोटे-बड़े की भावना के लिए कोई स्थान नहीं था-

तुलसी या संसार में, भाँति-भाँति के लोग,

सबसे हिलमिल चलिऐ, नदी-नाव संयोग।

संत मूलक दास ने सभी के मध्य प्रेम को आवश्यक माना है। उनका मानना है कि बिना प्रेम के सबकुछ बेकार है-

"मक्का, मदीना, द्वारका बदी और केदार

बिना प्रेम सब झूठ है, कहै मलूक विचार।''

राष्ट्रीय एकता की भावना आधुनिक कविता की प्रमुख प्रवृत्ति थी। जो कि तत्कालीन परिस्थितियों और समाज की माँग भी थी। आधुनिक काल में भारतेन्दु युग के प्रणेता भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने समाज सुधार, देश भाक्ति और भारतीय संस्कृति के गौरव को अपनी कविता का प्रमुख विषय बनाया। उन्होंने देश के लोगों में आशा का संचार करते हुए लिखा है-

"जिसे न निज भाषा, निज देश का अभिमान है,

वह नर नहीं, नर पशु के समान है।,,

भारतेन्दु ने अपनी कृति 'भारतवर्षोन्नति कैसे हो' नामक निबन्ध द्वारा भारतीयों को अपने गौरव और एकता को प्राप्त करने के लिए प्रेरित किया है।

छायावादी युग प्रमुख रचनाकार एवं लेखक जैसे श्रीधर पाठक, मैथिलीशरण गुप्त अयोध्या सिंह उपाध्याय, माखन लाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान आदि ने मातृभूमि के प्रति अपने हृदय की सम्पूर्ण अभिव्यंजना अभिव्यक्त कर दी है। छायावादी

कवि जैसे प्रसाद, पंत और निराला की रचनाएं राष्ट्रीयता की भावना से ओत-प्रोत हैं। जय शंकर प्रसाद निम्न पंक्तियों को उदाहरण स्वरूप ले सकते हैं-

"हिमाद्रि तुंग श्रृंग से प्रबुद्ध शुद्ध भारती।
स्वयंप्रभा समुज्ज्वला स्वतंत्रता पुकारती।।
आमर्त्य वीर पुत्र हो, दृढ़ प्रतिज्ञ सोंच लो।
प्रशस्त पुण्य-पंथ है, बढ़े चलो, बढ़े चलो।।

छायावादी रचनाओं के अतिरिक्त प्रगतिवादी साहित्य में भी राष्ट्रीयता की इसी भावना के दर्शन हमें होते हैं। इस काल के रचनाकारों ने विषमता और विक्षोभ को अपनी रचनाओं का प्रमुख विषय बनाया। इस काल के प्रमुख रचनाकार हैं- बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', 'दिनकर', सोहन लाल द्विवेदी, शिवमंगल सिंह 'सुमन' आदि। बालकृष्ण शर्मा क्रांति द्वारा समाज के नव निर्माण की आवश्यकता का अनुभव करते हुए लिखते हैं-

"कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ जिससे उथल-पुथल मच जाए।
एक हिलोर इधर से आये, एक हिलोर उधर से आए।''

इसके अतिरिक्त गाँधी, नेहरू, इकवाल आदि की रचनाओं में राष्ट्रीय एकता के दर्शन होते हैं। इस प्रकार से स्पष्ट हो जाता है कि आदि काल से आधुनिक काल तक सभी कालों में साहित्यकारों ने अपनी साहित्यिक रचनाओं द्वारा समाज में एकता लाने हेतु किसी न किसी रूप में प्रेरित करने का काम किया है। चाहे वह प्राचीन धार्मिक काल हो या मध्यकालीन संस्कृतिक संक्रमण का काल हो या फिर आधुनिक ब्रिटिश या फिर आजादी के बाद का समय हो राष्ट्रीयता साहित्य का प्रमुख विषय रहा।

14.8 भारत में राष्ट्रीयता के मार्ग में बाधाएं:-

जे० एच० रोज के अनुसार "राष्ट्रीयता हृदयों की वह एकता है जो एक बार बनने के बाद कभी खण्डित नहीं होती है।'' लेकिन कहते हैं इंसान परिस्थितियों का दास होता है। कभी-कभी कुछ ऐसी परिस्थितियाँ एवं घटनाएँ उत्पन्न हो जाती हैं जिसके कारण हमारी राष्ट्रीय एकता के लिए खतरे उत्पन्न हो जाते हैं। जातीयता, भाषा, सम्प्रदायिकता आदि ऐसे तत्व हैं जो राष्ट्रीयता के मार्ग में बाधाएं उत्पन्न करते हैं।

14.8.1. प्रादेषिकता या क्षेत्रीयता की भावना:-

अन्य प्रदेशों की अपेक्षा केवल अपने प्रदेश को ही महत्व देना प्रादेशिकता की

भावना कहलाती है। स्वतंत्रता के पश्चात इस भावना को समय विशेष का प्रोत्साहन मिला, जबकि प्रदेश की सरकारों ने अपने प्रदेश की संस्कृति का गुणगान करना प्रारम्भ कर दिया। अब तो एक प्रदेश के निवासी अपने यहाँ बसे दूसरे प्रदेश के निवासियों को निकालने का प्रयास करते हैं। बम्बई, बंगाल, तथा मद्रास में इस प्रकार के प्रयास अनेक बार किये जा चुके हैं। प्रादेशिकता की यह भावना राष्ट्रीय एकता के मार्ग में बाधा का काम करती है।

14.8.2. साम्प्रदायिकता :—

राष्ट्रीयता या राष्ट्रीय एकता के मार्ग में अन्य बाधक तत्व सम्प्रदायवाद है। देश के अन्दर रहने वाले विभिन्न सम्प्रदायों के मध्य स्वतन्त्रता के पश्चात सहयोग और प्रेम की भावना का विकास नहीं हो पाया है। राजनैतिक चुनावों में भी साम्प्रदायिकता का बोलबाला रहता है। हिन्दू-मुस्लिम दंगे कभी-कभी उग्रता का रूप धारण कर लेते हैं।

14.8.3. जातिवादः—

जतिवाद भारतीय समाज को पीड़ित करने वाला एक पुराना रोग है। इससे अभी भी भारतीय समाज को मुक्ति नहीं मिल पायी है। भारतीय राजनीति पूर्णतया जातिवाद से ग्रसित है। चुनाव भी जाति के आधार पर लड़े जाते हैं। राष्ट्रहित की अपेक्षा जातिहित को अधिक महत्व दिया जाता।

4.8.4. भाषावादः—

राष्ट्रीय एकता में बाधक अन्य तत्व भाषावाद है। भाषा के आधार पर प्रान्तों का निर्माण किये जाने की माँग उठती रहती है। विभिन्न प्रकार के प्रश्नों को लेकर अनेक प्रकार विवाद उठते हैं। इस प्रकार से विवाद राज्यों में परस्पर एकता की भावना उत्पन्न नहीं करते हैं।

4.8.5. भारतीय संस्कृति के प्रति उदासीनताः—

वर्तमान समय में स्वतन्त्रता के पश्चात भी पाश्चात्य शिक्षा तथा संस्कृति के प्रति विशेष आकर्षण बना हुआ है। भारतीय जनता अपनी मूल संस्कृति को भूलकर पाश्चात्य संस्कृति का अनुसंधान कर रही है। प्राय: प्रत्येक व्यक्ति पाश्चात्य सभ्यता से ओत-प्रोत है। पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित लोगों को भारतीयता से किसी भी प्रकार का लगभग नहीं है।

14.8.6. आर्थिक असमानताः—

आर्थिक असमानता जितनी हमारे देश में है उतनी विश्व के किसी देश में नहीं है। एक ओर तो अत्यन्त सम्पन्न व्यक्तियों का वर्ग है तो दूसरी ओर अत्यन्त निर्धन व्यक्तियों का। देश की विशाल जनसंख्या एक समय ही भोजन कर पाती है। इस प्रकार की आर्थिक असमानता देश में वर्ग संघर्ष को जन्म देती है। परिणामस्वरूप राष्ट्रीय एकता को गहरा आघात लगता है।

14.8.7. सरकार की दोषपूर्ण नीतिः—

स्तन्त्रता के पश्चात भी भारत सरकार दृढ़ता के साथ निश्चित भाषा-नीति नहीं अपना पायी है। कहने के लिए हिन्दी भारत की राष्ट्रभाषा है, परन्तु अभी भी अंग्रेजी का बोल-बाला है। कुछ प्रदेश तो हिन्दी को अपनाने को तैयार ही नहीं हैं तथा उसके साथ सौतेला जैसा व्यवहार करते हैं। तमिलनाडु इसका ज्वलंत उदाहरण है। इस प्रकार सरकार की दुर्बल भाषा नीति राष्ट्रीय एकता में बाधक होती है। अंगेजी पढ़े-लिखे लोगों का अपना अलग वर्ग बना हुआ है जो जन साधारण को हीनता की दृष्टि से देखता है।

14.8.8. अज्ञानता और अशिक्षाः—

राष्ट्रीयता के निर्माण में प्रमुख बाधक तत्व अज्ञानता और अशिक्षा है। शिक्षा के अभाव में व्यक्ति का दृष्टिकोण संकुचित हो जाता है और वह राष्ट्रीय हित के स्थान पर व्यक्तिगत हित को सर्वोपरि समझने लगता है। इस कारण ऐसे संकुचित दुष्टिकोण वाला व्यक्ति राष्ट्रीयता के विकास में बाधक सिद्ध होते हैं।

14.8.9. राष्ट्रीयता के मार्ग के बाधाओं को दूर करने के उपायः—

गौतम बुद्ध ने अपने 'प्रतीत्पसमुत्पाद' सिद्धान्त द्वारा बताया है कि किसी भी समस्या का कोई न कोई कारण अवश्य होता है यदि इन कारणों का निवारण कर दिया जाए तो समस्या अपने आप समाप्त हो जाएगी। राष्ट्रीयता के मार्ग में आने वाली बाध ाओं को हम निम्न उपायों द्वारा दूर कर सकते हैं:-

- संकुचित भावनाओं का त्याग और देश-प्रेम या देश भक्ति की प्रबल भावना का विकास किया जाना चाहिए।
- देश के विभिन्न भागों में भावनात्मक, साहित्यिक तथा सांस्कृतिक सम्पर्क बढ़ाने के लिए प्रयास किया जाना चाहिए।
- शिक्षा का व्यापक स्तर पर प्रचार तथा प्रसार किया जाना चाहिए तथा शिक्षा

प्रशासन का समुचित प्रबन्ध होना चाहिए।

- देश में भर में परिवहन तथा संचार के साधनों का विकास किया जाना चाहिए।
- देश के सभी क्षेत्रों का संतुलित आर्थिक विकास किया जाना चाहिए।
- संकीर्ण हितों तथा स्वार्थपूर्ण मनोवृत्तियों पर आधारित राजनीति पर नियन्त्रण लगाना चाहिए।
- देश में सुदृढ़ तथा-पापपूर्ण शासन व्यवस्था स्थापित की जानी चाहिए।

इस तरह से यदि उपरोक्त उपायों को अपनाया जाए तो राष्ट्रीयता के मार्ग में आने वाली बाधाओं से आसानी से निबटा जा सकता है।

बोध प्रश्न:-

टिप्पणी-

i. नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

ii. अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से कीजिए।

प्रश्न ५- राष्ट्रीय एकता के निर्माण में साहित्य की भूमिका पर अपने विचारों को लिखिए।

उत्तर .....

.....

प्रश्न ६- राष्ट्रीय एकता के लिए कौन-कौन से तत्व बाधक हैं?

उत्तर .....

.....

14.9. शैक्षिक कार्यक्रम:-

राष्ट्रीय एकता का तात्पर्य है- सम्पूर्ण राष्ट्र की जनता में एकता की भावना का विकास करना। इसके लिए राष्ट्रीय एकता के मार्ग की सभी बाधाओं को समाप्त करना आवश्यक है। दूसरे शब्दों में, जातिवाद, साम्प्रदायिकता, आर्थिक असमानता, निरक्षरता आदि का देश से उन्मूलन किया जाए। इनको दूर करने के लिए बहुत से साधनों में से सबसे महत्वपूर्ण साधन शिक्षा है। अत: राष्ट्रीय एकता की प्राप्ति के लिए शिक्षा का कार्यक्रम कैसा हो? इस पर विचार करना हमारा मनतव्य है। शैक्षिक कार्यक्रम कैसा है? इस पर भावात्मक एकता समिति तथा राष्ट्रीय एकता सम्मेलन ने अपने सुझाव प्रस्तुत किये हैं।

14.9.1. भावात्मक एकता समिति के सुझावः—

भावात्मक एकता समिति के सुझाव इस प्रकार है-

- पाठ्यक्रम की अभिरूचियों, रूझानों तथा भावों का विकास इस रूप में किया जाए कि वो भारतीय संस्कृति की विशेषताओं को भली भाँति समझ सके।
- पाठ्यक्रम में इतिहास को प्रमुख स्थान दिया जाए।
- इतिहास का शिक्षण करने की लिए सुयोग्य शिक्षकों का चयन किया जाए।
- इतिहास के पाठ्यक्रम में भारतीय संस्कृति के इतिहास को अवश्य स्थाना प्रदान किया जाए।
- इतिहास के पाठ्यक्रम में भारतीय संस्कृति के इतिहास को अवश्य स्थान प्रदान किया जाए।

14.9.3. राष्ट्रीय एकता सम्मेलन के सुझावः—

राष्ट्रीय एकता सम्मेलन के सुझाव निम्न प्रकार से हैं:-

- छात्रों को राष्ट्र के भौगोलिक, ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक तत्वों से अवगत कराया जाए।
- विभिन्न वर्गों, जातियों तथा प्रान्तों या राज्यों के लोगों का परस्पर सम्पर्क बढ़ाया जाए।
- विद्यालयों में पढ़ाई जाने वाली पाठ्य पुस्तकों की जाँच कराई जाए और राष्ट्रीय एकता की दृष्टि से उनमें समुचित संशोधन कराए जाएं।
- राष्ट्रीय एकता से सम्बन्धित नाटकों, चलचित्रों तथा अध्ययन गोष्ठियों की व्यवस्था कराई जाए।
- प्रशासकीय पदों पर नियुक्ति का आधार क्षेत्रियता, जाति, सम्प्रदाय आदि न होकर केवल योग्यता तथा अखिल भारतीय दृष्टिकोण है। राष्ट्रीय एकता के भावों का पोषण करने के लिए समाचार पत्रों, चलचित्रों, आकाशवाणी, दूरदर्शन आदि का अधिकाधिक प्रयोग किया जाए।

14.9.4. राष्ट्रीय एकता के लिए विभिन्न स्तरों पर शैक्षिक कार्यक्रमः—

विभिन्न स्तरों पर शैक्षिक कार्यक्रम इस प्रकार है:-

अ. प्राथमिक स्तरः-

- छात्रों के पाठ्यक्रम में कहानियों तथा लोकगीतों का प्रमुख स्थान किया जाए।

- कहानियाँ भारत के विभिन्न प्रान्तों से सम्बन्धित हों।
- विद्यालय में राष्ट्रीय त्योहार सामूहिक रूप से मनाए जांए।
- छात्रों को राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रीय गीत, राष्ट्रीय चिन्ह आदि से अवगत कराया जाए।

ब. **माध्यमिक स्तरः-**

- छात्रों को भारत की सामाजिक व्यवस्था का ज्ञान कराया जाए।
- इस स्तर के पाठ्यक्रम में विभिन्न क्षेत्रों की संस्कृतियों, भाषा, साहित्य, धर्म आदि के तुलनात्मक अध्ययन को स्थान प्रदान किया जाये।

स. **विश्वविद्यालय स्तरः-**

- छात्रों का विभिन्न क्षेत्रों के लोगों से सम्पर्क बढ़ाया जाये।
- छात्रों को देश के विभिन्न क्षेत्रों की भाषओं, साहित्य तथा संस्कृति से अवगत कराया जाए।
- सेमिनार तथा विचार गोष्ठियों का आयोजन किया जाए। जिसमें अन्य क्षेत्रों के छात्रों तथा शिक्षकों का आदान-प्रदान हो।
- युवक दिवसों का आयोजन कराया जाए।
- इस स्तर के पाठ्यक्रम में विभिन्न क्षेत्रों की संस्कृतियों, भाषा, साहित्य, धर्म आदि के तुलनात्मक अध्ययन को स्थान प्रदान किया जाए।

14.10. शिक्षा और सामाजिक तथा राष्ट्रीय एकताः-

राष्ट्रीय एकता के शिक्षा से अभिप्राय ऐसी शिक्षा से है जो विद्यार्थियों में अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम के भाव जाग्रत करे राष्ट्र का अर्थ है- भारतीय परम्पराओं, भारतीय सभ्यता (इसमें रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज तथा वेशभूषा आदि आ जाते हैं) तथा भारतीय संस्कृति के प्रति श्रद्धा और भक्ति के भाव उत्पन्न करना। इन सब के साथ उपनत्व का नाता जोड़ना।

'भगिनी निवेदिता' ने राष्ट्रीय शिक्षा के सम्बन्ध में ये विचार अभिव्यक्त किये हैं- "राष्ट्रीय शिक्षा का अर्थ है- ऐसी शिक्षा जिसका सम्बन्ध अपने परिवार तथा देश के साथ हो और जो घनिष्ठ रूप से अपने स्व पर आधारित हो।

'रवीन्द्रनाथ ठाकुर' के राष्ट्रीय शिक्षा के सम्बन्ध में ये विचार मनन करने योग्य हैं कि हमें अपनी शिक्षा में पश्चिम की नकल करने की प्रवृत्ति छोड़ देनी चाहिए।

हमें अपनी शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों में भारतीय संस्कृति को अभिव्यक्त करना है और पश्चिम को यह बता देना चाहिए कि विश्व को देने के लिए भारत वर्ष के पास बहुत कुछ है।

कोठारी आयोग ने शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य सामाजिक और राष्ट्रीय एकता को स्वीकार किया है। किसी भी देश अथवा राष्ट्र की एकता आर्थिक, राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक तत्वों पर आधारित होती है। ये सभी तत्व एक दूसरे से आबद्ध रहते हैं। एकता को प्राप्त करने के लिए राष्ट्र के भविष्य पर भरोसा करना बहुत आवश्यक है। इसके लिए सामाजिक आर्थिक व राजनीतिक क्षेत्रों मे अवसरों की समानता का विकास करना पड़ता है।

राष्ट्रीय एकता की प्राप्ति में सामान्य विद्यालयों की शिक्षा प्रणाली लाभदायक सिद्ध होगी। सभी को समान एक जैसी शिक्षा मिले। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो भिन्न-भिन्न प्रान्तों की भिन्न भाषा-भाषियों की भिन्न रीति रिवाजों वाले जनो का एक सूत्र में बाँध देती है। राष्ट्रीय शिक्षा लोगों की आत्म निर्भरता का पाठ पढ़ाती है और उन्हें पर निर्भरता से मुक्त होने को प्रेरित करती है। शिक्षा विद्यार्थियों में देश-प्रेम की भावना जाग्रत करने वाली हो। यह देश के निवासियों को आगे बढ़ने की प्रेरणा देने वाला होनी चाहिए।

बोध प्रश्नः-

टिप्पणी-

i. नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तरों को लिखिए।

ii. अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अन्त में दिये गये उत्तरों से कीजिए।

प्रश्न ७- प्राथमिक स्तर पर किन्हीं दो शैक्षिक कार्यक्रमों को लिखिए।

उत्तर .....

.....

प्रश्न ८- कोठारी आयोग ने शिक्षा प्रमुख लक्ष्य किसे स्वीकार किया है?

उत्तर .....

.....

14.11. सारांशः-

राष्ट्रीयता के लिए शिक्षा से अभिप्राय ऐसी शिक्षा जो व्यक्ति में राष्ट्र-प्रेम की भावना जाग्रत करती है। जिसमें व्यक्ति ऊँच-नीच आदि से ऊपर उठकर अपने राष्ट्र

के सभी लोगों को एक समझने लगता है। राष्ट्रीयता मनुष्यों की एक आध्यात्मिक भावना या सिद्धान्त है जिसकी उत्पत्ति उन लोगों में से होती है जो साधारण: एक जाति के होते हैं, जो एक भू-खण्ड पर रहते हैं तथा उनकी एक भाषा, एक सा धर्म, एक इतिहास; एक सी परम्पराएं तथा एक से हित होते हैं तथा जिनके राजनीतिक समुदाय तथा राजनीतिक एकता के एक-से आदर्श होते हैं।

वर्तमान समय में किसी भी देश व राज्य के अस्तित्व के लिए राष्ट्रीयता आवश्यक है। राष्ट्रीयता के कारण लोगों में देश-प्रेम की प्रेरणा उत्पन्न होती है, राज्य में स्थायित्व आता है और राजनीतिक एकता को बल मिलता है। राष्ट्रीयता व्यक्ति में आत्म सम्मान और विश्वबंधुत्व की भावन के विकास में योगदान देती है।

कतिपय विद्वान भारत को एक राष्ट्र नहीं मानते हैं। उनका मानना है कि भारतियों में राष्ट्रीयता की भावना नहीं थी किन्तु उनका यह मत तर्कसंगत प्रतीत नहीं होता है। भारतियों में राष्ट्रीयता हमेशा रही किन्तु इसमें सशक्त केन्द्र का अभाव रहा है।

राष्ट्रीयता का सबसे प्रमुख तत्व है- राष्ट्र के प्रति प्रेम। राष्ट्र-प्रेम का अर्थ है- केसी राष्ट्र या देश के निवासियों में अपने राष्ट्र की परम्पराओं सभ्यता (जिसमें हन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज तथा वेशभूषा आदि जा जाते हैं) तथा संस्कृति के ति श्रद्धा और भक्ति के भाव उत्पन्न करना। इन सब तत्वों के साथ अपनत्व का नाता ोड़ना। साहित्य ने हमेशा राष्ट्रीय एकता को प्रश्रय प्रदान किया है। साहित्य ने हमेशा शवासियों में राष्ट्रीयता की भावना जाग्रत करने का कार्य किया है। कभी-कभी कुछ रिस्थितियाँ या कारकों के कारण राष्ट्रीयता की भावना के विकास में बाधा पहुँचती है, से- जातीयता, साम्प्रदायिकता, भाषावाद आदि। यदि इन तत्वों का निवारण किया जाए ो राष्ट्रवाद या राष्ट्रीयता के मार्ग की बाधाओं को दूर कर सकते हैं।

राष्ट्रीयता के विकास में शिक्षा की बड़ी अहम भूमिका होती है। अत: राष्ट्रीय कता को ध्यान में रखते हुए हमें विभिन्न स्तरों पर शिक्षा के कार्यक्रमों को निर्धारित रना चाहिए। जिससे शिक्षा के प्रमुख उद्देश्य सामाजिक और राष्ट्रीय एकता के लक्ष्यों ो पाया जा सके।

4.12. अभ्यास कार्य:-

प्पणी-

i. रिक्त स्थानों की पूर्ति करो।

ii. रिक्त स्थानों की पूर्ति कोष्ठक में दिये विकल्पों से करें।

राष्ट्रीयता लैटिन भाषा के .....शब्द से बना है। (नेशियो, नेफियो)

- .....राष्ट्रीयता के विकास में बाधक तत्व है। (देश-प्रेम, जाति-प्रेम)
- हमाने देश में आर्थिक असमानता.....। (नहीं है, है)
- भाषावाद राष्ट्रीयता के विकास में .....है।
- भारतेन्दु ने राष्ट्रीयता को अपनी रचनाओं में .....स्थान दिया है। (प्रमुख/नगण्य)
- 'प्रतीत्यसमुत्पाय' सिद्धान्त का प्रतिपादन .....ने किया। (वुद्ध/महाबीर)

14.13. बोध प्रश्नों के उत्तरः–

१. राष्ट्रीयता एक ऐसी भावना है, जिसके कारण एक देश के लोग एकता के सूत्र में बँधे रहते हैं और जो अपने देश एवं देशवासियों के प्रति वफादार रहने की प्रेरणा देती है।

२. राष्ट्रीयता की भावना किसी भी राष्ट्र की स्थिरता के लिए एक अनिवार्य तत्व है। राष्ट्रीयता के कारण व्यक्ति अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम करता है और आवश्यकता पड़ने पर अपना सबकुछ बलिदान को तैयार हो जाता है। यह राष्ट्र को राजनीतिक स्थिरता एवं स्थायित्व प्रदान करती है।

३. हाँ, भारत को एक राष्ट्र कहा जा सकता है क्यों कि राष्ट्रीयता की भावना इसमें अतीत काल से विद्यमान रही है। जिसके कि हमारे पास अनेक साहित्यिक प्रमाण उपलब्ध है।

४. राष्ट्र-प्रेम से तात्पर्य अपने देश से प्रेम करने से है जबकि राष्ट्रीयता में राष्ट्र-प्रेम के साथ ही भाषा, संस्कृति परस्पर और इतिहास भी सम्मिलित हैं।

५. साहित्यकारों ने हमेशा अपनी कृतियों के माध्यम से राष्ट्र में एकता का संचार करने का प्रयास किया है। स्वतंत्रता आन्दोलन में प्रेमचन्द्र भारतेन्दु, गाँधी आदि की कृतियों ने लोगों में एकता का संचार किया।

६. राष्ट्रीय एकता में निम्न तत्व बाधा पहुँचाते हैं-

i प्रादेशिकता

ii साम्प्रदायिकता

iii जातिवाद

iv भाषावाद

v भारतीय संस्कृति के प्रति उदासीनता

vi आर्थिक असमानता

/ii सरकार की दोषपूर्ण नीति

/iii अज्ञानतना और अशिक्षा आदि

9. प्राथमिक स्तर के दो प्रमुख शैक्षिक कार्यक्रम हैं-

छात्रों के पाठ्यक्रम में कहानियों तथा लोकगीतों को प्रमुख स्थान प्रदान किया जाए।

ii कहानियाँ भारत के विभिन्न प्रान्तों से सम्बन्धित हों।

८. कोठारी आयोग ने सामाजिक और राष्ट्रीय एकता को शिक्षा का प्रमुख लक्ष्य स्वीकार किया है।

इकाई– 15 अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध के लिए शिक्षा

इकाई की रूपरेखा :-

15.1 प्रस्तावना

15.2 उद्देश्य

15.3 संकुचित राष्ट्रीयता

15.4 व्यापक राष्ट्रीयता

15.5 अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध का अर्थ

15.6 अंतराष्ट्रीय अवबोध की शिक्षा की आवश्यकता

15.6.1. राष्ट्रों के स्वतन्त्र अस्तित्व के लिए

15.6.2 युद्धों की समाप्ति के लिए

15.6.3 भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए

15.6.4 पिछड़े राष्ट्रों के विकास के लिए

15.6.5 मनुष्य मात्र के कल्याण के लिए

15.6.6 विश्वंधुत्व की भावना के विकास के लिए

14.6.7 सरकार की दोषपूर्ण नीति

14.6.8 अज्ञानता और अशिक्षा

14.6.9 राष्ट्रीयता के मार्ग की बाधाओं को दूर करने के उपाय

15.7 अंतर्राष्ट्रीय अवबोध की शिक्षा के सिद्धांत

15.8 अंतराष्ट्रीय अवबोध के लिए शिक्षा के उद्देश्य

15.9 पाठ्यक्रम तथा अंतर्राष्ट्रीय अवबोध

15.10 शिक्षण विधि और अंतर्राष्ट्रीय अवबोध

15.11 शिक्षक और अंतर्राष्ट्रीय अवबोध

15.12 यूनेस्को

15.13 सारांश

15.14 अभ्यास प्रश्न

15.15 बोध प्रश्नों के उत्तर

15.1 प्रस्तावना

अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध से तात्पर्य विश्व प्रेम की भावना से है। यह वह भावात्मक स्थिति है जिसके द्वारा व्यक्ति अपने को विश्व का नागरिक मानता है और शिक्षा इसके विकास का मूल साधन है। अतः इस इकाई 'अन्तर्राष्ट्रीयता के लिए शिक्षा' में आप अन्तर्राष्ट्रीयता और शिक्षा के प्रभावों एवं उससे सम्बन्धों के विषय में अध्ययन करेंगे।

इस इकाई में अन्तर्राष्ट्रीयता को भली-भाँति समझने हेतु राष्ट्रीयता के संकुचित और व्यापक अर्थों की चर्चा की गई है। अन्तर्राष्ट्रीयता की आवश्यकता विचार करते हुए अंतर्राष्ट्रीयता के के अवरोध के सिद्धांतों की भी चर्चा की गई है। इस इकाई में अंतर्राष्ट्रीय अवबोध के लिए शिक्षा के उद्देश्य, पाठ्यक्रम एवं शिक्षण विधियों की चर्चा की गई है। आप अंतराष्ट्रीय अवबोध में शिक्षक के योगदानों के विषय में जान सकेगें। साथ ही साथ इस भावना के विकास में यूनेस्कों की भूमिका के विषय में भी आप जान सकेंगे।

15.2 उद्देश्य–

प्रस्तुत इकाई का उद्देश्य अंतराष्ट्रीयता अवबोध के लिए शिक्षा की भूमिका को स्पष्ट करना है। इसके ध्यानपूर्वक अध्ययन के पश्चात आप-

- अंतराष्ट्रीयता के सम्प्रय और उसकी आवश्यकता क्यों है? जान सकेगें।
- अंतराष्ट्रीय अवरोध की शिक्षा के सिद्धान्तों की व्याख्या कर सकेगें।
- अंतराष्ट्रीय अवबोध के शिक्षा के उद्देश्यों, पाठ्यक्रम एवं विधियों को जान सकेंगे।

15.3 संकुचित राष्ट्रीयता–

जब किसी राष्ट्र के व्यक्ति केवल अपने राष्ट्र के हित की बात करते हैं, उसी के हित के बारे में सोंचते हैं तो इसे हम संकुचित या संकीर्ण राष्ट्रीयता कहते हैं। संकुचित राष्ट्रीयता (मेरा ही राष्ट्र श्रेष्ठ है) अंतर्राष्ट्रीयता के मूल सिद्धान्त- सहअस्तित्व एवं सहयोग में विश्वास नहीं करती है, वह व्यक्ति को केवल अपने राष्ट्र के हित तक सीमित रखती है। संकुचित राष्ट्रीयता नागरिकों में अनेक दुर्गुण पैदा करती है वे सोंचते हैं उनका राष्ट्र ही श्रेष्ठ है, उनका ही राष्ट्र आगे बढ़े, ऊँचा उठे, श्रेष्ठतम बने।

इस प्रकार की राष्ट्रीयता विस्तारवादी विचारधारा को जन्म देती है। ऐसे राष्ट्र शक्ति द्वारा अपने राष्ट्र के विस्तार में विश्वास करते हैं। यह संकुचित राष्ट्रीयता की विचारधारा अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध के विकास में सबसे बड़ा बाधक तत्व है।

अगर मायने में देखा जाए तो राष्ट्रीयता कभी भी अंतर्राष्ट्रीयता के मार्ग में बाधक नहीं होती है संकुचित राष्ट्रीयता की भावना ही अंतर्राष्ट्रीयता के अवबोध की सबसे बड़ी बाधा होती है। जर्मनी का नाजीवाद जिसके कारण कि हिटलर ने सम्पूर्ण यूरोप को युद्धों में झोंक दिया, इटली में मुसोलिनी की विचारधारा इसी संकुचित राष्ट्रीयता का परिणाम थी।

अत: स्पष्ट है कि इसमें व्यक्ति अपने राष्ट्र को ही श्रेष्ठ समझने लगता है। वह परिवर्तन और विकास को स्वीकार नहीं करता। दूसरे राष्ट्रों के अच्छे होने के बावजूद भी उन्हें हीन दृष्टि से देखता है।

15.4 व्यापक राष्ट्रीयता–

अपना घर किसे प्यारा नहीं होता। एक चिड़िया का घास-फूस से बना घर उसे स्वर्ग से भी ज्यादा आनन्द प्रदान करता है। इसी तरह प्रत्येक व्यक्ति को अपना देश व राष्ट्र प्यारा होता है। अपने राष्ट्र के प्रति प्रेम-भाव रखना कोई बुराई नहीं है। किन्तु अपने राष्ट्र से प्रेम और दूसरे राष्ट्र को तुच्छ समझ उससे ईष्या एवं द्वेष रखना गलत है। यह राष्ट्रीयता की संकीर्णता को प्रदर्शित करता है।

इसके विपरीत व्यापक राष्ट्रीयता की भावना विश्व बंधुत्वता को प्रश्रय देती है। यह व्यक्ति को अपने राष्ट्र के साथ-साथ दूसरे राष्ट्रों के सम्मान करने की आज्ञा देती है और अपने राष्ट्र हित में दूसरे राष्ट्रों के अहित की आज्ञा नहीं देती है। यह दृष्टिकोण राष्ट्रों के सहअस्तित्व एवं सहयोग को जन्म देती है। इसमें और अंतर्राष्ट्रीयता में कोई विरोध नहीं होता। सचमुच व्यक्ति अपने राष्ट्र के प्रति वफादार होते हुए भी दूसरे राष्ट्रों का हित कर सकता है। यही सच्ची राष्ट्रीयता और यही भावना अंतर्राष्ट्रीयता के विकास में योगदान दे सकती है।

राष्ट्रीयता का यही व्यापक दृष्टिकोण आज के वर्तमान समय एवं परिस्थियों में उपयोगी है। जो आये दिन होने वाले विवादों और संघर्षों से विश्व को निजात दिला सकती है और संसार को युद्ध की विभीषिका से बचा सकती है।

15.5 अन्तर्राष्ट्रीयता अवबोध का अर्थ–

अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध का अर्थ है संसार के विभिन्न राष्ट्रों के बीच समझ एवं सद्भाव। समझ का अर्थ है कि सभी राष्ट्र अन्य राष्ट्रों की संस्कृति, ज्ञान-विज्ञान तथा अन्य क्षेत्रों की जानकारी रखेंगे और सद्भाव का अर्थ है कि सभी राष्ट्र अन्य राष्ट्रों की संस्कृति के प्रति उदार दृष्टिकोण रखेंगे, ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में आदान-प्रदान करेंगे

और विकसित राष्ट्र पिछड़े और विकासशील राष्ट्रों के विकास में सहयोग प्रदान करेंगे। परन्तु कुछ लोग अंतर्राष्ट्रीयता का अर्थ कुछ दुसरे रूप में लेते हैं। उनके अनुसार अन्तर्राष्ट्रीयता वह भावना है जो मनुष्यों को राष्ट्र की सीमा से निकाल कर विश्व राष्ट्र का नागरिक बनाती है। गोल्ड स्मिथ के शब्दों में-

"अन्तर्राष्ट्रीयता एक भावना है जिसके अनुसार व्यक्ति केवल अपने राष्ट्र का सदस्य ही नहीं होता अपितु वह विश्व का नागरिक भी होता है।"

अत: राष्ट्रों के ऊपर एक विश्व राष्ट्र है और सभी व्यक्ति अपने-अपने राष्ट्रों के साथ-साथ इस विश्व राष्ट्र के भी नागरिक हैं। तब तो राष्ट्र और नागरिकता दोनों की परिभाषाएं बदलती होंगी। वास्तविकता यह है कि अंतर्राष्ट्रीयता की भावना विश्व राष्ट्र का सृजन नहीं करती, अपितु वह संसार के सभी देशों या राष्ट्रों के स्वतंत्र अस्तित्व में विश्वास करती हैं। यह एक राजनीतिक सम्प्रव्यय है जो निम्न पाँच मूलभूत सिद्धान्तों पर आधारित है-

i. शान्ति पूर्ण सहअस्तित्व

ii. सहयोग

iii. आन्तरिक मामलों में अहस्तक्षेप

iv. अनाक्रमण

v. शांतिपूर्ण ढंग से समस्याओं का समाधान

इस प्रकार अंतर्राष्ट्रीयता को परिभाषित करते हुए कह सकते हैं कि "जब विभिन्न राष्ट्रों के बीच समझ एवं सद्भाव होता है और वे सह-अस्तित्व एवं सहयोग में विश्वास करते हैं तो इसे अंतर्राष्ट्रीय अवबोध अथवा अन्तर्राष्ट्रीयता कहते हैं।"

बोध प्रश्न:-

टिप्पणी-

i. नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तर को लिखें।

ii. अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से करें।

प्रश्न १- राष्ट्रीयता के संकुचित और व्यापक अर्थों में क्या अन्तर है?

उत्तर .....

.....

प्रश्न २- अंतर्राष्ट्रीय अवबोध से आप क्या समझते हैं?

उत्तर .....

.....

15.6 अंतर्राष्ट्रीय अवबोध की शिक्षा की आवश्यकता:–

शिक्षा अंतर्राष्ट्रीय अवबोध का मूल स्थान है। शिक्षा द्वारा व्यक्ति अथवा बालकों में अंतर्राष्ट्रीयता की भावना को विकसित किया जा सकता है। अंतर्राष्ट्रीय अवबोध की शिक्षा वर्तमान समय और परिस्थितियों के परिप्रेक्ष में आवश्यकता बन चुकी है।

15.6.1. राष्ट्रों के स्वतंत्र अस्तित्व की रक्षा के लिए अंतर्राष्ट्रीय अवबोध की शिक्षा की आवश्यकता:–

संयुक्त राष्ट्र संघ का पहला सिद्धांत सहअस्तित्व है। वह सभी रोष्ट्रों के स्वतंत्र अस्तित्व में विश्वास करता है। यह तभी सम्भव है जब संसार के व्यक्तियों में अंतर्राष्ट्रीय अवबोध हो, वे संसार के समस्त राष्ट्रों के प्रति सद्भाव रखें। इस दृष्टि से आज संसार में अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध की शिक्षा का बड़ा महत्व है, उसकी बड़ी आवश्यकता है, क्योंकि शिक्षा व्यक्तियों के सद्भाव के विकास का महत्वपूर्ण साधन है।

15.6.2. युद्धों की समाप्ति के लिए:–

संयुक्त राष्ट्र संघ सह अस्तित्व के साथ-साथ अनाक्रमण का भी पोषक है। परन्तु स्थिति यह है कि हम तीसरे विश्व युद्ध की कगार पर खड़े हैं। किसी भी राष्ट्र के बजट को उठाकर देखें, उसके बजट का लगभग ५० प्रतिशत रक्षा पर व्यय हो रहा है। कुछ बड़े देशों के पास तो संहारक शस्त्रों-अस्त्रों का इतना बड़ा भण्डार है कि वे अकेले ही पूरे विश्व को चंद घण्टों में समाप्त कर सकते हैं। यह बात निश्चित है कि यदि यह तीसरा विश्व युद्ध न रोका गया तो संसार से मानव जाति समाप्त हो जाएगी। इस खतरे से बचने के लिए आज संसार में अंतर्राष्ट्रीय अवबोध की शिक्षा की बड़ी आवश्यकता है।

15.6.3. भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए:–

आज विज्ञान का युग है। इस युग में हमारी भौतिक आवश्यकताओं में काफी वृद्धि हुई है, इन आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संसार के सभी राष्ट्र एक दूसरे पर निर्भर करते हैं। यह आदान-प्रदान अंतर्राष्ट्रीय अवबोध की स्थिति में ही हो सकता है।

15.6.4. पिछड़े राष्ट्रों के लिए:–

अभी भी संसार में अधिकांश राष्ट्र बहुत पिछड़े हुए हैं। इन राष्ट्रों का विकास तभी हो सकता है जब विकसित राष्ट्र इनकी सहायता करें, इन्हें आर्थिक सहयोग दें, इन्हें तकनीकी सहयोग दें। यह सहयोग अंतर्राष्ट्रीय अवबोध की स्थिति में ही सम्भव है। इस

दृष्टि से भी संसार में आज अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध की शिक्षा की बड़ी आवश्यकता है।

15.6.5. मनुष्य मात्र के कल्याण के लिएः–

इस समय कुछ राष्ट्र भौतिक विकास की चरम सीमा पर है, वहाँ के लोगों का जीवन स्तर बहुत ऊँचा है, उन्हें सब सुख सुविधाएं उपलब्ध है, पर मन की शांति का उतना ही अभाव है। और आगे बढ़ने की इच्छा और दूसरे राष्ट्रों के शोषण की दुर्भावना ने उन्हें मार्नासक एवं आत्मिक शांति से बहुत दूर कर दिया है। शक्तिशाली राष्ट्रों को एक दूसरे से खतरा भी बहुत है, वे हर समय, हर क्षण एक-दूसरे से सावधान रहते हैं, बड़ी बेचैनी है उनके जनमानस में। इस स्थिति से उबरने का एक ही उपाय है- अन्तर्राष्ट्रीय अवबोध। उस स्थिति में राष्ट्र एक-दूसरे का शोषण तो करेंगे ही नहीं, साथ ही एक दूसरे का सहयोग करेंगे, एक-दूसरे की सहायता करेंगे और उससे मनुष्य मात्र का कल्याण होगा।

15.6.6. विश्व बन्धुत्व की भावना के विकास के लिएः–

विश्व बन्धुत्व की भावना अंतर्राष्ट्रीय का मूल तत्व है। शिक्षा द्वारा इस भावना का विकास बालकों में यह बता कर किया जा सकता कि वह स्वयं को और संसार के समस्त मनुष्यों को एक परिवार का सदस्य समझे। उनके कष्टों और सुखों को अपना सुख-दुख समझे। इस प्रकार शिक्षा द्वारा विश्व बन्धुत्व की भावना का विकास कर अंतर्राष्ट्रीय अवबोध को बढ़ाया जा सकता है।

15.7 अंतर्राष्ट्रीय अवबोध की शिक्षा के सिद्धान्तः–

अंतर्राष्ट्रीय अवबोध की भावना को विकास करने में शिक्षा का बड़ा महत्व है। शिक्षा द्वारा हम अपने छात्रों में अनेक ऐसे गुणों का अंकुर पैदा कर सकते हैं, परन्तु समस्या यह है कि इस प्रकार के कार्य साधारण शिक्षा से सम्पन्न नहीं किये जा सकते हैं। इस कार्य के लिए शिक्षकों को साधारण शिक्षा का व्यापक एवं विस्तृत दृष्टिकोण से वेवेचन करना पड़ेगा। इस कार्य हेतु शिक्षा की नये ढंग से रूपरेखा बनानी होगी। इस रूपरेखा का निर्माण करते समय अध्यापक को निम्नांकित सिद्धांतो को ध्यान में रखना पड़ेगा।

- अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना का विकास करने के लिए ऐसी शिक्षा की व्यवस्था की जाए जो छात्रों में स्वतन्त्र चिन्तन करने की शक्ति का विकास करें। इस प्रकार की शिक्षा द्वारा छात्र विभिन्न तथ्यों तथा समस्याओं के सम्बन्ध में अधिक से अधिक जानने की चेष्टा करें और स्तन्त्र चिंतन द्वारा विश्लेषण कर सकें। सही

निष्कर्ष निकाल सकें तथा उनमें निर्णय लेने की शक्ति का विकास हो सके।

- इस प्रकार की शक्तियों के विकास से छात्रों पर संकीर्ण दृष्टिकोण या अपनी स्वार्थ सिद्धि के उद्देश्य से प्रचारित की जाने वाली अफवाहों का प्रभाव नहीं होगा। वे स्वतंत्र चिंतन, निष्कर्ष निरूपण तथा निर्णय शक्ति की सहायता से तथ्य तथा अफवाहों में अन्तर कर सकेंगे।
- छात्रों में परस्पर निर्भरता का ज्ञान कराने वाली शिक्षा की व्यवस्था की जाए। शिक्षा द्वारा छात्रों को यह ज्ञान हो जाए कि विश्व के छोटे-बड़े सभी देश तथा व्यक्ति आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक दृष्टिकोण से एक-दूसरे पर निर्भर हैं। इसलिए हमें राष्ट्रीय स्तर पर ही सम्बन्धों की स्थापना नहीं करनी चाहिए, वरन विश्व-स्तर पर मानव सम्बन्ध बनाने चाहिए।
- ऐसी शिक्षा की व्यवस्था की जाए जो छात्रों को विश्व के अन्य देशवासियों के जीवन, जीवन-क्रियाएं, संस्कृति, सभ्यता, धरोधर तथा मूल्यों के सम्बन्ध में सही ज्ञान प्रदान कर सके। इस प्रकार की व्यवस्था से छात्र विश्व के अन्य राष्ट्रों के निवासियों से अधिक से अधिक यात्रा में परिचित होंगे। वे उनकी सीमाओं, कमजोरियों, शक्तियों तथा उनके कारणों से अवगत होंगे। यह ज्ञान छात्रों में उनके प्रति सद्भावना जाग्रत करेगा।
- इस प्रकार की शिक्षा की व्यवस्था की जाए जो छात्रों में स्वराष्ट्र तथा अन्य राष्ट्रों की प्रति नवीन, विकसित तथा व्यापक दृष्टिकोण का विकास करे। छात्रों में शिक्षा द्वारा अंतर्राष्ट्रीयता के प्रति उचित अभिवृत्ति का विकास करना होगा। उन्हें हमारे पुराने सिद्धान्त 'वसुधैव कुटुम्बकम' का पाठ पढ़ाना होगा। उन्हें बताना पड़ेगा कि सभी विश्व एक कुटुम्ब के समान व सभी मनुष्य तथा प्रकृति ईश्वर प्रदत्त है। 'सर्वभूमि गोपाल की' यदि छात्रों में इस प्रकार की भावनाओं का विकास हो जाता है तभी वे विश्व के नागरिकों के प्रति सद्भावना का विकास कर सकेंगे और तभी विश्व नागरिकता का विकास होगा।
- ऐसी शिक्षा की व्यवस्था की जाए जो छात्रों को विश्व के सम्बन्ध में अधिक से अधिक मात्रा में सही सूचना दे सकें। विश्व के आर्थिक, राजनैतिक, वैज्ञानिक तथा सामाजिक क्षेत्रों में घटित होने वाले विभिन्न घटना चक्रों को उनके कारणों सहित सही रूप में छात्रों के सम्मुख प्रस्तुत करना अनिवार्य है। शिक्षा व्यवस्था में इस प्रकार का ज्ञान प्रदान करने के लिए उचित सीन रखा जाए।
- शिक्षा व्यवस्था इस प्रकार की तैयार की जाए कि व छात्रों में मानवता का

विकास कर सकें, छात्रों में मानवीय दृष्टिकोण बन सके, वे मानव के महत्व को समझ सके, उनकी मानव-जाति में विश्वास और श्रद्धा पैदा हो सके तथा उनमें भविष्य के प्रति आशा का संचार हो सके। छात्रों को उज्जवल भविष्य से अवगत कराना आवश्यक है। इस प्रकार के ज्ञान के आधार पर वे भविष्य के लिए अच्छे कार्य करना सीखेंगे।

- इस भावना के विकाशार्थ ऐसी शिक्षा की व्यवस्था की जाए जो छात्रों में सहयोग, सहानुभूति, सहिष्णुता तथा सहनशीलता की भावना का विकास कर सकें। छात्रों को सह अस्तित्व का पाठ पढ़ाना अति आवश्यक है। उन्हें यह बताना आवश्यक है कि परस्पर सहयोग पर ही विश्वशांति तथा मानव कल्याण निर्भर करता है तथा परस्पर सहयोग पर ही विश्वशान्ति तथा मानव कल्याण पर निर्भर करता है तथा परस्पर सहयोग पर ही हम सब की उन्नति निर्भर करती है।
- शिक्षा में कुछ ऐसी व्यवस्था की जाए कि छात्र अभी से विश्वशांति तथा मानव कल्याण के लिए कुछ प्रयोगात्मक तथा व्यवहारिक कार्य कर सकें।
- प्रारम्भिक कक्षाओं में अन्तर्राष्ट्रीयता की भावना का विकास करने के लिए प्रदान की जाने वाली शिक्षा अत्यन्त सरल होनी चाहिए। इस स्तर के लिए सिद्वान्त निरूपण, विश्लेषण तथा तर्क चाहने वाली शिक्षा की व्यवस्था नहीं करनी चाहिए।

बोध प्रश्न:-

टिप्पणी-

i. नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तर को लिखें।

ii. अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से करें।

प्रश्न ३- अंतर्राष्ट्रीय अवबोध की शिक्षा की आवश्यकता के लिए किन्हीं दो तर्कों को लिखो?

उत्तर .....

.....

प्रश्न ४- अवबोध के लिए शिक्षा का मुख्य सिद्धान्त क्या होना चाहिए?

उत्तर .....

.....

15.8. अंतर्राष्ट्रीय अवबोध के लिए शिक्षा के उद्देश्यः–

हम कोई भी कार्य प्रारम्भ करते हैं उसके पीछे कुछ न कुछ उद्देश्य अवश्य होते हैं। उद्देश्यों का निर्माण कार्य सिद्वि हेतु किया जाता है। अंतर्राष्ट्रीय अवबोध के लिए दी जाने वाली शिक्षा के भी कुछ निश्चित उद्देश्य हैं। अंतर्राष्ट्रीयता की भावना का विकास करने के लिए दी जाने वाली शिक्षा के उद्देश्य अत्यन्त स्पष्ट है। इस प्रकार की शिक्षा का एक मात्र उद्देश्य है- छात्रों में विश्व नागरिकता की भावना पैदा करना। विश्व नागरिकता की भावना के विकासार्थ शिक्षा के निम्नांकित उद्देश्य हो सकते हैं।

- छात्रों को यह ज्ञान कराना कि विश्व युद्ध अत्यंत घातक रूप से लड़ा जाएगा।
- छात्रों को यह अनुभव प्रदान करना कि तृतीय विश्वयुद्ध सम्पूर्ण मानव जाति का विनास कर सकेगा।
- यह ज्ञान कराना कि विश्व में ऐसी शांति की आवश्यकता है जिसमें सभी व्यक्तियों को व्यक्तिगत स्वतन्त्रता तथा सम्मान प्राप्त हो।
- यह भावना पैदा करना है कि सभी के जूते तो पृथक-पृथक हैं, किन्तु जूतों के अन्दर सभी के पैर एक समान हैं। सभी राष्ट्र तो पृथक-पृथक हैं किन्तु उसमें रहने वाले मनुष्य एक समान हैं।
- यह ज्ञान देना कि प्रत्येक मनुष्य को मानव जाति के कल्याण तथा उत्थान में कुछ योगदान देना है।
- यह अनुभव करना है कि विश्व के सम्पूर्ण छोटे-बड़े राष्ट्र आर्थिक दृष्टिकोण से एक-दूसरे पर परस्पर निर्भर हैं।
- विश्व के अन्य देशों के निवासियों का जीवन, उनकी संस्कृति सभ्यता, धरोहर तथा जीवन दर्शन का ज्ञान प्राप्त करना।
- विभिन्न देशों में सह-अस्तित्व का ज्ञान प्राप्त करना।
- भौगोलिक, सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक दृष्टिकोण से मनुष्यों को पृथकताओं तथा समानताओं का ज्ञान प्राप्त करना।
- अनेक मानवीय गुणों का विकास करना।
- यह ज्ञान देना कि सभी मानव ईश्वर की संतान हैं।
- मनवता के कुछ सामान्य उद्देश्य होते हैं, उसके कुछ सामान्य मूल्य, आदर्श एवं मान्यताएं होती हैं। छात्रों को इन सबका ज्ञान कराना शिक्षा का कर्तव्य है।

15.9. पाठ्यक्रम तथा अंतर्राष्ट्रीय अवबोधः–

शिक्षा द्वारा अंतर्राष्ट्रीयता की भावना का विकास बड़ी सरलता से किया जा सकता है। यदि हमें बालकों में अंतर्राष्ट्रीयता की भावना का विकास करना है तो पाठ्यक्रम को व्यापक बनाना होगा। अतः पाठ्यक्रम में निम्न विषयों का समावेश होनो आवश्यक है-

- सम्पूर्ण पृथ्वी का ज्ञान।
- विश्व के सभी देशों के रहने वालों का रहन-सहन।
- विश्व की महान संस्कृतियों का ज्ञान।
- विभिन्न देशों के निवासियों में समानता एवं असमानता का ज्ञान।
- जीवन की विभिन्न शैलियों का परिचय।
- विश्व के बिखरे हुए सौन्दर्य का ज्ञान।
- विश्व के विभिन्न लोगों अन्योन्याचित होने की भावना का ज्ञान।
- विश्व के प्रमुख धर्मों एवं आदर्शों का परिचय।
- मानव ने शांति स्थापित करने के अब तक जो प्रयास किये हैं, उनका ज्ञान।

उपरोक्त सिद्धान्तों का पाठ्यक्रम में समावेश करने के पाठ्यक्रम में साहित्य, कला, विज्ञान, संगीत, विदेशी भाषा तथा सामाजिक विज्ञान- इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र आदि विषय का समावेश होगा।

15.10. शिक्षण विधि और अन्तर्राष्ट्रीयताः–

बालकों में अंतर्राष्ट्रीयता की भावना के विकास हेतु उपयुक्त शिक्षण विधियों का प्रयोग किया जाना चाहिए। शिक्षण-विधि का मनोवैज्ञानिक और संगठित होना आवश्यक है, जिससे बालक की अपनी बुद्धि के अनुसार तथ्यों का ज्ञान प्राप्त कर सकें। प्रारम्भिक कक्षा के बालकों को कहानियों के माध्यम से दूसरे देशों के निवासियों के रहन-सहन, रीति-रिवाजों और काम-काज की शिक्षा दी जानी चाहिए। इस अवस्था में मानवीय भूगोल के विषय जिसमें मनुष्य-जीवन, जलवायु, भौगोलिक दशा, व्यवसाय आदि की चर्चा ही बालक का अध्ययन विषय होना चाहिए। इससे बालकों को यह जानकारी होगी कि किसी विशेष राष्ट्र के निवासियों पर वहाँ की भौगोलिक दशा और जलवायु का क्या प्रभाव पड़ा और वहाँ किस प्रकार का वातावरण बना और उनके चरित्र और आचरण कैसे प्रभावित होते हैं। इससे राष्ट्रों की परस्पर निर्भरता का भी बालकों को ज्ञान प्राप्त

होगा। यह भी संभव है कि इस ज्ञान से बालक की रूचि अन्य देशों के लोगों से मैत्री बढ़ाने की भी हो। यह गुण अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र से भय और लगाव दूर करने के लिए आवश्यक है।

भूगोल के ज्ञान के उपरान्त इतिहास का ज्ञान भी महत्वपूर्ण है। इतिहास के अध्ययन का विशेष महत्व राष्ट्रीय भावना की चेतना उत्पन्न करने से है। पर इससे अन्य भावनाएं भी उत्पन्न होती हैं। यह दृष्टिकोण अंतर्राष्ट्रीयता के दृष्टिकोण से संकीर्ण और अनुदार है। अत: इसे व्यापकता और उदारता की दिशा देनी होगी। इसे व्यापकता और उदारता देने के लिए राजाओं और राष्ट्रों के संघर्षों की अपेक्षा इतिहास में समाज, सभ्यता और संस्कृति के अंगों को अधिक महत्व देना होगा। व्यक्तिगत राजाओं की चर्चा के सीन पर इतिहास के माननीय पक्ष को प्रकाश में लाना होगा। इस पाठ्यक्रम में विश्व इतिहास को विशेष सीन देना होगा, ताकि छात्र विभिन्न राष्ट्रों के सामाजिक और नैतिक उत्थान और पतन का ज्ञान प्राप्त कर अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्धों का मूल्यांकन करें और उसे ग्रहण करें। पाठ्यक्रम में विश्व के विभिन्न क्षेत्रों में यश प्राप्त करने वाले महान व्यक्तियों तथा धार्मिक, राजनीतिक, सामाजिक, साहित्यिक और वैज्ञानिक क्षेत्र के महान पुरूषों की जीवनियों और उपलब्धियों को करना होगा। बालकों को यह बताना होगा कि इन महापुरूषों में जो कुछ भी किया, वह मानवता के कल्याण के लिए किया है। उपने राष्ट्र विशेष के लिए नहीं। उनकी उपलब्धियाँ और उनके द्वारा दिया गया ज्ञान आज समस्त मानवता के कल्याण के लिए परिश्रम किया है।

एक अध्यापक के साहित्य पढ़ाते समय उसे विश्व-प्रेम से सम्बन्धित स्थलो पर विशेष बल देना चाहिए। "अयं निज: परोवेति गणना लघुचेतसाम् उदार चरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम'' जैसे स्थलों को पढ़ाते समय अंतर्राष्ट्रीय भावना का विकास ही लक्ष्य होना चाहिए।

कला के अध्ययन के समय भी इस बात पर बल चाहिए कि कलाकार की जाति, उसके सम्प्रदाय या उसके धर्म का महत्व नहीं होता वरन कला में निहित सौंदर्य का महत्व होता है।

नागरिक शास्त्र पढ़ाते समय छात्रों में विश्व सरकार की भावना उत्पन्न करनी चाहिए और उन्हें यह बताना चाहिए कि वे एक राष्ट्र के नागरिक होने के साथ ही साथ विश्व के नागरिक हैं।

विज्ञान शिक्षण के समय यह स्पष्ट कर देना चाहिए कि वैज्ञानिक आविश्कार मानव को सुखी बनाने के लिए है न कि दुखी। अत: वैज्ञानिकों को निरपेक्ष भाव से आविष्कार न करके उनके उपयोग की दृष्टि से करना चाहिए।

बोध प्रश्न:-

टिप्पणी-

i. नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तर को लिखें।

ii. अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से करें।

प्रश्न ५- अंतर्राष्ट्रीय अवबोध के लिए शिक्षा के किन्हीं दो उद्देश्यों को लिखिए?

उत्तर .....

.....

प्रश्न ६- अंतर्राष्ट्रीय अवबोध के लिए प्राथमिक स्तर के लिए शिक्षण विधि क्या होनी चाहिए?

उत्तर .....

.....

15.11. शिक्षक और अंतर्राष्ट्रीय अवबोध:-

अध्यापक के ऊपर अंतर्राष्ट्रीय भावनाओं के विकास का बड़ा भारी दायित्व है और बालकों में यह भावना विकसित करने में उसका व्यक्तिगत आचरण, विश्वास और प्रेरणा बड़ा काम करती है। अंतर्राष्ट्रीयता की शिक्षा की सफलता या असफलता बहुत कुछ अंशों तक शिक्षक के सहयोग और योग्यता पर निर्भर करती है।

अध्यापक में स्वयं अंतर्राष्ट्रीयता की दृढ़ भावना होनी चाहिए और उसके अनुरूप अपने व्यवहार को ढालना चाहिए। उसमें इस भावना को बालक में बिकसित करने की भी प्रबल इच्छा होनी चाहिए और साथ ही साथ उसे यह ज्ञान भी होना चाहिए कि किस ढंग से बालक का पथ प्रदर्शन करें, ताकि उसमें यह भावना विकसित हो सके। उसे बालकों के मन में यह बात बैठानी होगी कि विश्व एक है और समस्त प्राणी समान रूप से विश्व के नागरिक हैं। प्रत्येक को यह अधिकार है कि वह अपने को विश्व का नागरिक समझे और तद्नुसार आचरण करे। उसे यह भी समझना होगा कि किसी देश में जन्म लेने या शिक्षा प्राप्त करने से उसकी विश्व की नागरिकता नहीं समाप्त होती और विभिन्न जाति भाषा, धर्म और संस्कृति से व्यक्ति एक दूसरे से अलग नहीं होते, अलग होने के कारण व्यक्तिगत या सामुदायिक स्वार्थ, प्रेम और उदारता का आभाष, सहानुभूति और सहिष्णुता की कमी, द्वेष, अत्याचार, क्रूरता, शोषण आदि दुर्गुण होते हैं। इन दुर्गुणों को पास न फअकने देने से विश्व बंधुत्व की भावना का सरलता से प्रसार होगा।

15.12. यूनेस्कोः–

संयुक्त राष्ट्र संघ के अन्तर्गत अनेक परिषदें हैं। इनमें यूनेस्को का स्थान महत्वपूर्ण है। यूनेस्को का अर्थ अंतर्राष्ट्रीय शिक्षा-विज्ञान-संस्कृति संस्था है। जिसकी सीपिंना १९४५ में ४३ राष्ट्रों के हस्ताक्षर के परिणाम स्वरूप हुई। इसका उद्देश्य मानव मस्तिष्क को शिक्षित करना हे। क्योंकि ऐसा समझा जाता है कि युद्ध का कारण मानव मस्तिष्क की अशिक्षा है। युनेस्को अपने प्रयासों में निरंतर लगा हुआ है। तीन प्रकार से यह मानव मस्तिष्क को शिक्षित करने का प्रयास है-

- प्रथम 'युनेस्को' यह प्रयास करता है कि विभिन्न देशों में ज्ञान का परस्पर आदान-प्रदान हो, लोग एक दूसरे के समीप आने और समझने का प्रयास करें।
- इसका दूसरा उद्देश्य विभिन्न देशों की शिक्षा और संस्कृति के उत्थान में सहायता देना है।
- तृतीय उद्देश्य ज्ञान का विकास करना, उसे सुलभ बनाना तथा उसकी रक्षा करना है।

यूनेस्को के सभी कार्य-कलाप इस बात को संकेत करते हैं कि वह विश्व-समाज की भावना का निरंतर विकास करता है और यह सिद्ध भी करते हैं कि शिक्षा का क्षेत्र केवल एक ही राष्ट्र की सीमाओं तक निहित नहीं है और वह इस सीमा के बाहर भी जा सकता है। यूनेस्को शिक्षा संस्कृति और विज्ञान की उपलब्धियों को सार्वलौकिक रूप देने का प्रयास करता है और राष्ट्रों की अनेक शिक्षा सम्बन्धी समस्याओं को हल करने में सहायता देता है उदाहरणार्थ- कृषि, स्वास्थ्य, खगोल कला आदि से सम्बन्धित। उसका प्रयत्न है कि व्यक्ति रचनात्मक कार्यों में राष्ट्र को ही सीमा न मान सके, बरन उसके आगे बढ़े। वह प्रयास करता है कि इस प्रगति में राष्ट्र, संस्कृति, सभ्यता, भाषा आदि अवरोध न बने। इस प्रयास में वह अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर कार्य करने के लिए वैज्ञानिकों, साहित्यकारों, टेक्निशियनों, राज्यों, रेडियो तथा फिल्मों आदि को प्रोत्साहित करता है और आर्थिक तथा साज-सज्जा व उपकरणों की सहायता देता है। यूनेस्को शिक्षा के क्षेत्र में सार्वभूत शिक्षा को समस्त संसार में फैलाना चाहता है। वह सभी राष्ट्रों की शिक्षा के क्षेत्र में सहायता प्रदान करता है। जो यू०एन०ओ० के सदस्य हैं और इस प्रकार इन प्रयत्नों द्वारा वह अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र से तनाव दूर कर लोगों को परस्पर निकट लाने का प्रयास करता है।

शिक्षा द्वारा अंतर्राष्ट्रीयता की भावना बढ़ाने की दिशा में सन् १९४७ में यूनेस्को ने एक गोष्ठी का आयोजन किया जिसमें अंतर्राष्ट्रीयता के लिए शिक्षा के विषय पर

विचार किये जाने का आयोजन था। गोष्ठी ने विचार विमर्श द्वारा १० सिद्धान्त बनाए। सिद्धान्त के अनुसार सामाजिक विज्ञान के अध्ययन पर बल दिया और यह कहा गया कि माध्यमिक स्कूलों में इसी विषय की सहायता से अंतर्राष्ट्रीयता के लिए शिक्षा की पृष्ठीाूमि तैयार की जा सकती है। ये १० सिद्धान्त इस प्रकार हैं-

- संसार की समस्त मुख्य बातों का अध्ययन सामाजिक विज्ञान के माध्यम से होनी चाहिए।
- छात्र को सांसारिक समस्याओं के किसी भी अंग में रूचि के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए।
- राष्ट्र की प्राकृतिक निधियों का विशेष अध्ययन, विश्व भूगोल पढ़ते समय करने के लिए बालक को प्रोत्साहित करना चाहिए। इस संदर्भ में विश्व की खाद्य समस्याओं को भी समझना चाहिए।
- मानव व्यक्तित्व के विकास का अध्ययन सामाजिक विज्ञान के विषय को पढ़ते समय विशेष रूप से करना चाहिए। इससे आवश्यक मानव सम्बन्धों का विकास होता है।
- भिन्न-भिन्न मानव समुदायों के परस्पर अच्छे सम्बन्धों का अध्ययन विशेष रूप से करना चाहिए और जो भेद-भाव आर्थिक और शिक्षा के स्तर पर वर्ण, धर्म और संस्कृति के आधार पर उत्पन्न हो गये हैं। उन्हें दूर करने का प्रयास करना चाहिए।
- इस विषय के अध्ययन में अंतर्राष्ट्रीय तनाव और सहकारिता से सम्बंधित समस्याओं के हल करने का प्रयास करना चाहिए।
- इस विषय के अध्ययन में अंतर्राष्ट्रीय तनाव और सहकारिता से सम्बन्धित समस्याओं के हल करने का प्रयास करना चाहिए। इस संदर्भ में यू०एन०ओ० द्वारा किये क्रिया-कलापों का भी अध्ययन करना चाहिए।
- इस विषय के अध्ययन में सामाजिक घटनाओं और वर्तमान समस्याओं का भी अध्ययन कर उन्हें सुलझाने का विचार करना चाहिए।
- सामाजिक विज्ञान विषय के अध्ययन में प्रमुख बात यह होनी चाहिए कि सही तथ्यों को खोजना चाहिए और बालक को अपनी मनोवृत्ति और योग्यता अथवा कौशल के ठीक और सही विकास पर ध्यान देना चाहिए।
- बालक को अपना आलोचना और तर्क करने का कौशल बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए।

- नागरिकों का ज्ञान सामाजिक विज्ञान के अध्ययन का महत्वपूर्ण अंग है। इस विषय का व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रयोगशाला की आवश्यकता होती है। बालकों को अपने स्कूल कक्षा और समाज को इस कार्य के लिए प्रयोगशाला के रूप में समझना चाहिए।

उपरोक्त सिद्धान्तों से स्पष्ट है कि अंतर्राष्ट्रीयता के क्षेत्र में यूनेस्को किस प्रकार से सक्रिय है? और हम उनके कार्य तथा कार्य पद्धति से इस दशा में अपना पथप्रदर्शन कर सकते हैं।

बोध प्रश्न:-

टिप्पणी-

i. नीचे दिये गये स्थानों में अपने उत्तर को लिखें।

ii. अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से करें।

प्रश्न ७- युनेस्को की स्थापना कब हुई थी?

उत्तर .....

.....

प्रश्न ८- स्थापना के समय यूनेस्को के कितने सदस्य थे?

उत्तर .....

.....

15.13. सारांश:-

अंतर्राष्ट्रीयता की भावना के विकास में शिक्षा बड़ी महती भूमिका निभाती है। संकुचित राष्ट्रीयता अंतर्राष्ट्रीयता के विकास में बाधक का कार्य करती है। राष्ट्रीयता की व्यापक व्याख्या अंतर्राष्ट्रीयता को प्रश्रय देती है। वर्तमान परिपेक्ष्य में अंतर्राष्ट्रीयत के अवबोध की शिक्षा बहुत ही महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है। अंतर्राष्ट्रीयता की भावना के विकास हेतु शिक्षा के कुछ उद्देश्यों का निर्धारण किया गया है। जिनके लिए कुछ सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया गया है।

अंतर्राष्ट्रीयता के अवरोध की शिक्षा के लिए विद्वानों ने पाठ्यक्रम और शिक्षण विधियों का निर्धारण किया है। अंतर्राष्ट्रीयता के विकास में शिक्षक की महती भूमिका होती है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि उसकी योग्यता और सहयोग महत्पूर्ण

होते हैं।

सन् १९४५ में युनेस्को की स्थापना के परिणाम स्वरूप अंतर्राष्ट्रीय अवबोध की भावना के विकास हेतु संगठित रूप से अंतर्राष्ट्रीय प्रयास किये जाने लगे। आज अंतर्राष्ट्रीयता की भावना के विकास में यह अपना महत्वपूर्ण रोल अदा कर रहा है।

15.14. अभ्यास प्रश्नः–

अ. रिक्त स्थानों की पूर्ति करो-

१. संकुचित राष्ट्रीयता में व्यक्ति अपने देश या राष्ट्र को ही .....मानता है।

२..... अंतर्राष्ट्रीयता की भावना के विकास का मूल आधार है।

ब. निम्न प्रश्नों के उत्तर लिखो-

१. संकुचित राष्ट्रीयता से आप क्या समझते हैं?

२. अंतराष्ट्रीय अवबोध की शिक्षा के किन्हीं दो सिद्धान्तों को लिखिए।

15.15. बोध प्रश्नों के उत्तरः–

१. संकुचित राष्ट्रीयता में व्यक्ति अपने राष्ट्र को ही श्रेष्ठ मानता है और दूसरे राष्ट्रों से घृणा एवं ईर्ष्या करते हैं जबकि व्यापक राष्ट्रीयता में अपने राष्ट्र के साथ-साथ दूसरे राष्ट्रों के महत्व को भी स्वीकार किया जाता है।

२. अंतर्राष्ट्रीय अवबोध से तात्पर्य है स्वयं को विश्व राष्ट्र का नागरिक समझना। इसमें वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना निहित होती है।

३. i. राष्ट्रों के सह अस्तित्व की रक्षा के लिए

ii. मानव कल्याण के लिए

४. अंतर्राष्ट्रीय अवबोध के लिए शिक्षा का मुख्य सिद्धान्त यह होना चाहिए कि जो व्यक्ति में स्वतन्त्र चिन्तन का विकास कर सके।

५. अंतराष्ट्रीय अवबोध के लिए शिक्षा के दो प्रमुख उद्देश्य हैं-

i. छात्रों को यह ज्ञान देना कि विश्वयुद्ध अत्यन्त घातक रूप से लड़ा जायेगा

ii. छात्रों को यह अनुभव प्रदान करना कि तृतीय विश्वयुद्ध सम्पूर्ण मानव जाति का विनाश कर देगा।

६. अंतर्राष्ट्रीय अवबोध के लिए प्राथमिक स्तर पर कहानी विधि उपयुक्त होगी।

७. यूनेस्को की स्थापना सन् १९४५ में हुई।

८. स्थापना के समय युनेस्को के ४३ सदस्य थे।

इकाई– 16 भावात्मक एकता के लिए शिक्षा

इकाई की रूपरेखा:-

16.1 प्रस्तावना

16.2 उद्देश्य

16.3 भावात्मक एकता का अर्थ

16.3.1 परिभाषा

16.3.2 राष्ट्रीय एकता और भावात्मक एकता

16.4 भावात्मक एकता की आवश्यकता

16.5 भावात्मक एकता का स्तर

16.6 अन्तर सांस्कृति भावना

16.7 भावात्मक एकता और शैक्षिक कार्यक्रम

16.7.1 भावात्मक एकता समिति द्वारा निर्धारित कार्यक्रम

16.7.2 कुछ अन्य प्रमुख शैक्षिक कार्यक्रम

16.8 सारांश

16.9 अभ्यास कार्य

16.10 बोध प्रश्नों के उत्तर

13.11 कुछ उपयोगी पुस्तकें

16.1 प्रस्तावना

जब व्यक्ति भावात्मक रूप से एक दूसरे से जुड़े हुए होते हैं उसे हम भावात्मक एकता कहते हैं। इस इकाई में आप भावात्मक एकता और शिक्षा के मध्य के आपसी सम्बन्धों के विषय में अध्ययन करेंगे। भावात्मक एकता का अर्थ क्या है? वर्तमान में भावात्मक एकता की आवश्यकता क्यों है? आदि प्रश्नों के उत्तर हम इसमें जानने का प्रयास करेंगे। भावात्मक एकता के कई स्तर होते हैं। जिसमें कि भावात्मक एकता का विकास होता है। अंतर सांस्कृतिक भावना, भावात्मक एकता के विकास में सहायक होती है। इस इकाई में भावात्मक एकता के विकास के लिए विविध शैक्षिक कार्यक्रमों की चर्चा की गई है।

16.2 उद्देश्यः–

इस इकाई का उद्देश्य भावात्मक एकता के लिए शिक्षा के महत्व आवश्यकता एवं अन्य पहलुओं को प्रतिपादित करना है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आपः–

- भावात्मक एकता की आवश्यकता के विविध पहलुओं के विषय में जान सकेंगे।
- भावात्मक एकता के सम्प्रत्यय को समझ सकेंगे।
- विभिन्न स्तरों पर भावात्मक एकता के विकास की व्याख्या कर सकेगें।
- भावात्मक एकता के विकास में शिक्षा के महत्व की समीक्षा कर सकेगें।

16.3 भावात्मक एकता का अर्थः–

मनुष्य एक भावना प्रधान प्राणी है। भावना के कारण ही वे एक दूसरे से जुड़ते हैं और भावना के कारण ही वे एक दूसरे से अलग होते हैं। जब दो या दो से अधिक व्यक्ति रक्त, जाति, स्थान, रहन-सहन, खान-पान, रीति-रिवाज, भाषा, साहित्य, धर्म, आचार-विचार आदि किसी भी समानता के कारण एक दूसरे की ओर आकर्षित होते हैं और किसी अन्य कारण से उनमें सरलता से अलगाव की सम्भावना नहीं होती तो हम कहते हैं कि उनके बीच भावात्मक एकता है। प्रायः किसी जाति, समुदाय और राष्ट्र के व्यक्तियों के मध्य भावनात्मक एकता होती है और जब यह भावात्मक एकता समाप्त हो जाती है तो उनका अस्तित्व खतरे में पड़ जाता है।

भावात्मक एकता के अर्थ को दो दृष्टिकोणों के आधार पर समझा जा सकता है। जिसमें पहला है नकारात्मक अर्थ और दूसरा है- सकारात्मक अर्थ। भावात्मक एकता का नकारात्मक अर्थ है- विघटनकारी तत्वों से घृणा करना तथा राष्ट्रों को फूट से बचाना। इसका सकारात्मक अर्थ है- राष्ट्र को एकता के सूत्र में बॉधने का प्रयास करना तथा राष्ट्र से प्रेम करना। इसमें देश के सभी निवासियों के विचारों और भावनाओं की एकता पर बल दिया जाता है।

भावात्मक एकता के सम्बन्ध में कोई निश्चित धारणा नहीं है। इस शब्द का प्रयोग दो व्यक्तियों के मध्य व्यक्तिगत आधार पर विकसित एकता से लेकर जातीय, क्षेत्रीय, धार्मिक, आर्थिक, राजनैतिक, राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विकसित एकता से लिया जाता है।

16.3.1 परिभाषाः–

भावात्मक एकता के अर्थ को स्पष्ट करने के लिए विद्वानों ने अपनी-अपनी तरह से इसे व्याख्यायित करने का प्रयास किया है।

शिक्षा के क्षेत्र में भावात्मक एकता की चर्चा राष्ट्रीय एकता की प्राप्ति के संदर्भ में की जाती है। इस दृष्टि से पं० जवाहर लाल नेहरू के विचार उल्लेखनीय हैं। उनके शब्दों में:-

"भावात्मक एकता से मेरा अभिप्राय अपने मनों और हृदयों को एक करने और पृथकता की भावना को समाप्त करने से है।"

(By Emotional Integration , Indian the integration of our mind and gearts, the suppression of feelings of separatism)

कोई राष्ट्र कितना भी छोटा-बड़ा क्यों न हो असमें अनेक जाति और धर्मों के लोग रहते हैं। इनके रहन-सहन, खान-पान, आचार-विचार, मान्यता, विश्वास और मूल्यों में भिन्नता होती है। पर इन भिन्नताओं के होते हुए भी यदि किसी राष्ट्र के नागरिक राष्ट्र के नाम पर एक होते हैं तो हम कह सकते हैं कि उस राष्ट्र के व्यक्तियों में भावात्मक एकता है। इस संदर्भ में के०जी० सैयदेन साहब के विचार उल्लेखनीय हैं। उनके शब्दों में:-

"भावात्मक एकता का अर्थ विभिन्नताओं की समाप्ति नहीं है, इसका अर्थ तो यह है कि व्यक्तियों को मतभेद का अधिकार है और अपनी इस भिन्नता को वे बिना किसी भय के तर्क के आधार पर अभिव्यक्त कर सकते हैं, लेकिन राष्ट्रीय एकता और आधारभूत निष्ठाओं को दृष्टि में रखते हुए ही।"

(Emotional Integration does not mean a leveling down of difference. It mean's that the people have the right to differ and express their difference reasonable and fearlessly within the larger frame work of national unity and basic loyalties .)

16.3.2. राष्ट्रीय एकता और भावात्मक एकता:-

राष्ट्रीय एकता और भावात्मक एकता का एक विशिष्ट रूप है। भावात्मक एकता स्थान, जाति, भाषा, संस्कृति और धर्म आदि किसी भी आधार पर हो सकती है और इसका क्षेत्र दो मनुष्यों से लेकर संसार की सम्पूर्ण मानव जाति तक हो सकता है, परन्तु जब यही भावात्मक एकता किसी समान हित के आधार पर किसी-किसी राष्ट्र के सभी व्यक्तियों के बीच होती है और वे राष्ट्र हित के आगे अपने वैयक्तिक एवं सामूहिक हितों का त्याग करते हैं तो इसे राष्ट्रीय एकता कहते हैं। इस प्रकार राष्ट्रीय एकता का आधार एवं क्षेत्र दोनों निश्चित होते हैं और इसमें राष्ट्र हित के वैयक्तिक और सामूहिक हितों का त्याग आवश्यक होता है। परन्तु शिक्षा के क्षेत्र में जब हम भावात्मक एकता की

बात करते हैं तो हमारा तात्पर्य राष्ट्रीय एकता से ही होता है।

बोध प्रश्न:-

टिप्पणी-

i. नीचे की जगह आपके उत्तरों के लिए है।

ii. अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से करें।

प्रश्न १- राष्ट्रीय एकता और भावात्मक एकता में क्या सम्बन्ध है?

उत्तर .....

.....

16.4 भावात्मक एकता की आवश्यकता:-

किसी भी राष्ट्र के असतित्व के लिए पहली मूलभूत आवश्यकता उसके नागरिकों में राष्ट्रीय एकता या भावात्मक एकता का होना है। हमारे देश की कुछ विशेष स्थिति है, यहाँ विभिन्न जाति, भाषा, संस्कृति और धर्मों के लोग रहते हैं और इन आधारों पर वे वर्ग विशेषों में बॅटे हैं, सब अपने-अपने हित की बात सोचते हैं और देश हित अथवा राष्ट्र हित पीछे हो गया है। इन खतरों से बचाव के लिए हमारे देश अथवा किसी भी राष्ट्र में भावात्मक एकता या राष्ट्रीय एकता का विशेष महत्व है, उसकी बड़ी आवश्यकता है।

- **राष्ट्र के अस्तित्व के लिए:-** किसी भी राष्ट्र के अस्तित्व के लिए वहाँ के नागरिकों में भावात्मक एकता का होना अति आवश्यक है। प्रत्येक राष्ट्र अस्तित्व की रक्षा करना चाहता है, हमारा राष्ट्र भी। इसके लिए सर्वप्रथम आवश्यकता है- भावात्मक एकता की अर्थात देश के नागरिकों में राष्ट्र के नाम पर 'हम एक हैं' की भावना की और राष्ट्र हित में अपने वैयक्तिक एवं सामूहिक हितों के त्याग की भावना एवं शक्ति की।

- **राष्ट्र के शासन तंत्र में आस्था उत्पन्न करने के लिए:-** राष्ट्र के शासनतंत्र में नागरिकों की आस्था होना राष्ट्र का दूसरा मूल तत्व होता है। और हमारे देश की स्थिति यह है कि यहाँ के अधिकतर लोग लोकतंत्र का अर्थ ही नहीं समझते। और कुछ लोग तो इसके स्वरूप को विकृत करने में लगे हैं। हमारे राष्ट्र के सभी नागरिकों में लोकतंत्र में आस्था तभी सम्भव है जब राष्ट्र में भावात्मक एकता हो। इस दृष्टि से आज भी देश में भावात्मक एकता का बड़ा महत्व है, उसकी बड़ी आवश्यकता है।

विघटनकारी तत्वों के उन्मूलन के लिए:- यूँ हमारे देश में यदि लोग जाति के नाम पर भिन्न हैं तो भाषा, संस्कृति अथवा धर्म के नाम पर एक हैं, यदि भाषा के नाम पर भिन्न हैं तो जाति, संस्कृति अथवा धर्म के नाम पर एक हैं और यदि संस्कृति के नाम भिन्न हैं तो जाति अथवा भाषा के नाम पर एक हैं और यह श्रृंखला इतनी बहुमुखी एवं विस्तृत है कि भारत का प्रत्येक व्यक्ति किसी-न-किसी रूप में दूसरे व्यक्ति से जुड़ा है। परन्तु कुछ स्वार्थी तत्व, विशेषकर, वोट की राजनीति करने वाले लोग देश की जनता को क्षेत्र, जाति, धर्म अथवा भाषा के नाम पर विभाजित कर अपना उल्लू सीधा कर रहे हैं। आश्चर्य की बात तो यह है कि केन्द्रीय मंत्री होने के बाद भी कोई अपने को हिन्दू कहता है और हिन्दुओं के अधिकारों का रक्षक कहता है, कोई अपने को मुसलमान कहता है और अपने को उसका रक्षक बताता है, कोई अपने को पिछड़ा मानता है और कोई पिछड़ी जातियों के अधिकारों का रक्षक कहता है और इसी प्रकार कोई अपने को अनुसूचित जाति के अधिकारों का रक्षक, कोई अनुसूचित जनजातियों के अधिकारों का रक्षक और कोई दलितों का हितैषी कहता है। राष्ट्र के हित की बात सोचने और करने वाले अब अंगुलियों पर गिने जा सकते हैं। अत: आज आवश्यक है कि सभी को विशेषकर राष्ट्र के कर्णधारों को राष्ट्र हित से जोड़ने की और उन्हें राष्ट्रहित के आगे वैयक्तिक, जातीय, क्षेत्रीय अथवा अन्य हितों का त्याग करने के लिए तैयार करने की, उनमें भावात्मक एकता के विकास के लिए तैयार करने की, उनमें भावात्मक एकता के विकास की।

क्षेत्रीय संकीर्णता को करने के लिए:- हमारा देश कई प्रान्तों में बटा हुआ है। इन प्रान्तों का निर्माण भौगोलिक सीमाओं और भाषाओं के आधार पर किया गया है। एक तो इन प्रान्तो में यही आधारा भूत भिन्नता है। दूसरे स्वार्थी तत्व उनमें क्षेत्रीय संकीर्णता पैदा कर अपना स्वार्थ सिद्ध कर रहे हैं। परिणाम यह है कि इन्हीं प्रान्तों के बीच सीमा विवाद चल रहा है, किन्हीं में नदियों के पानी के बँटवारे का विवाद चल रहा है और कहीं में अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार विवाद चल रहा है। इतना ही नहीं अपितु एक ही प्रान्त के एक भाग के लोग आए दिन अलग-अलग प्रान्त की माँग करते रहते हैं। हरयाणा, हिमांचल प्रदेश, अरूणाचल प्रदेश, उत्तरांचल, छत्तीसगढ़ और झारखण्ड आज इसी के परिणाम हैं। इस विभाजन को रोकने के लिए आज देश में भावात्मक एकता की बड़ी आवश्यकता है।

वर्ग संघर्ष की समाप्ति के लिए:- भारत में क्षेत्र, जाति, संस्कृति और धर्म

के आधार पर तो वर्ग संघर्ष होत ही हैं साथ ही सरकार और सरकार से बाहर राजनैतिक दलों, सरकार और सरकारी कर्मचारियों, उद्योगपतियों और मिल मजदूरों आदि के बीच भी संघर्ष होते रहते हैं। और सबसे बुरी बात यह है कि इन संघर्षों में यथा क्षेत्रों में काम बंद हो जाता है, तोड़-फोड़ होती है। इस प्रकार अंकुश पाने के लिए राष्ट्र में भावात्मक एकता का होना आवश्यक है। जब तक लोग राष्ट्र से नहीं जुड़ते, रास्ट्र हित की बात नहीं सोचते तब तक स्थिति सुध ान नहीं सकती।

- **राष्ट्र की सुरक्षा के लिए:-** किसी भी राष्ट्र की सुरक्षा के लिए सैनिक शक्ति के साथ-साथ भावात्मक एकता आवश्यक होती है। फिर भी हमारे देश की सीमाएं तो आतंकवादी पाकिस्तान और विस्तारवादी चीन से लगी हैं। इतना ही नहीं अपितु हमारे देश में पाकिस्तान और चीन के हितैषियों की संख्या भी कुछ कम नहीं है। इन सबको जब तक भारत राष्ट्र से नहीं जोड़ा जाता और उन्हें राष्ट्र हित के लिए तैयान नहीं किया जाता तब तक राष्ट्र की सुरक्षा को खतरा रहेगा। इस दृष्टि से भी आज भारत में भावात्मक एकता का बड़ा महत्व है। उसकी बड़ी आवश्यकता है।
- **राष्ट्र के विकास एवं जीवन स्तर को उठाने के लिए:-** किसी भी राष्ट्र का किसी भी प्रकार का विकास उसकी नीतियों, रीतियों, और जन सहयोग पर निर्भर करता ह, उसका आर्थिक विकास भी। राष्ट्र की नीतियाँ और रीतियाँ लोक हित में तभी बन सकती हैं जब सरकार में बैठे लोग राष्ट्र हित में सोंचे अर्थात उनमें भावात्मक एकता या राष्ट्रीय एकता की भावना हो। ये नीतियाँ और रीतियाँ तभी सुचारू रूप से चल सकती हैं जब इनके अनुपालन और क्रियान्वयन में जन सहयोग हो, और जन सहयोग तभी सम्भव है जब लोगों में भावात्मक एकता है। तब कहना न होगा कि किसी राष्ट्र का विकास उसके नागरिकों में राष्ट्रीय एकता होने पर निर्भर करती है। अत: जीवन स्तर को उठाने के लिए भी आज भारत में भावात्मक एकता की बहुत आवश्यकता है।

16.5 भावात्मक एकता का स्तर:-

भावात्मक एकता के चार स्तर होते हैं-

प्रथम स्तर- पहले स्तर पर लोग एक दूसरे के साथ रहना प्रारम्भ करते हैं। इस स्तर पर लोगों में अकेले रहने की अपेक्षा समूह, समुदाय या राष्ट्र में रहने की आदत पड़ती है।

द्वितीय स्तर- दूसरे स्तर पर जो लोग एक-दूसरे के साथ रहते हैं, एक-दूसरे को समझना प्रारम्भ करते हैं इस स्तर के विपरीत पहले स्तर में एक-दूसरे को समझने की उत्सुकता नहीं होती है। उस स्तर पर केवल सामुहिक जीवन की आदत पड़ती है। दूसरे स्तर पर एक दूसरे को समझने की कोशिश की जाती है।

तृतीय स्तर- इस स्तर पर दूसरे को समझना ही पर्याप्त नहीं होता है। समझने का सम्बन्ध केवल बुद्धि से होता है। इसमें रागात्मक संबन्ध का अभाव पाया जाता है। यह तीसरा स्तर रागात्मक स्तर का है। हम इस स्तर पर दूसरों की प्रथाओं में रूचि लेने लगते हैं। इस स्तर पर दूसरे की प्रथाओं से घृणा समाप्त हो जाती है। और लोग शांतिपूर्वक रहते हैं।

चतुर्थ स्तर- इस स्तर पर सभी लोग जो एक-दूसरे के साथ रहते हैं, एक-दूसरे की परम्पराओं, रीतियों एवं मान्यताओं को अपना समझने लगते हैं। और उन सभी से प्रभावित होते हैं। इस चौथे स्तर में व्यक्ति एक-दूसरे से भावात्मक रूप से प्रेम करने लगता है।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि भावात्मक एकता का विकास इन चारों चरणों से होते हुए विकास की अपनी पूर्णता को प्राप्त कर लेता है। जिसमें व्यक्ति भावात्मक रूप से एक-दूसरे से जुड़ जाते हैं और एक-दूसरे से प्रेम करने लगते हैं।

बोध प्रश्नः-

टिप्पणी-

i. नीचे की जगह आपके उत्तरों के लिए है।

ii. अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से करें।

प्रश्न २- भावात्मक एकता की आवश्यकता के कोई दो कारण बताइए।

उत्तर .....

.....

प्रश्न ३- भावात्मक एकता का विकास कितने चरणों में होता है?

उत्तर .....

.....

16.6 भावात्मक एकता का स्तरः-

अन्तर सांस्कृतिक भावना से तात्पर्य उस भावना से है जिसमें भिन्न-भिन्न

संस्कृतियों के व्यक्ति भावात्मक रूप से आपस में जुड़े होते हैं और भावात्मक एकता का विकास करते हैं।

किसी भी देश की संस्कृति उस देश के व्यक्तियों की युग-युग की साधना का परिणाम होती है। वह संस्कृति ही है जो मनुष्यों को संसार के अन्य जीवों की श्रेणी से ऊपर उठाती है। हमारी भारतीय संस्कृति तो संसार की प्राचीनतम् संस्कृति है और सबसे अधिक समृद्ध संस्कृति है। इसमें ही मनुष्यों को सर्वप्रथम 'वसुधैवकुटुम्बकम्' का पाठ पढ़ाया था। यह चार पुरूषार्थ- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की संस्कृति है और मनुष्य के प्राकृतिक, सामाजिक और आध्यात्मिक तीनों पक्षों को संतुलित करने की संस्कृति है। हमारी यह संस्कृति मानव मात्र के शुभ, मंगल और कल्याण की संस्कृति है, इसमें 'हमें सर्वेभवन्तु सुखीनः' की ओर प्रवृत्त करता किया। यह संस्कृति ही है जो व्यक्ति को राष्ट्र के लिए ही नहीं अपितु पूरे संसार के लिए जीना सिखाती है। तब इसे भावात्मक एकता या राष्ट्रीय एकता के विकास में सहायक होना चाहिए।

परन्तु हमारे समय में हमारे देश में अनके संस्कृतियों के लोग रहते हैं जिनके रीति-रिवाज, भाषा, साहित्य, धर्म और दर्शन सभी एक दूसरे से भिन्न हैं। यहाँ तक कि उनके सामाजिक कानूनों में भी हमें एकदम भिन्नता दिखाई पड़ती है। लोगों के खान-पान भी भिन्न हैं। मद्रास में चावल अधिक खाया जाता है तो केरल की सामान्य जनता 'टपियोका' पर निर्भर है। पंजाब में गेंहू अधिक खाया जाता है तो बंगाल में मछली और चावल मुख्य भोजन है। दक्षिण की 'इदली और डोसा' उत्तर भारत का निवासी नहीं जानता है। खान-पान ही नहीं खाने का ढंग भी अलग है। उत्तर भारत का निवासी चावल और दाल जिस ढंग से खाता है, मद्रासी उस प्रकार नहीं खाता। वेष-भूषा में भी बड़ी भिन्नता है। दक्षिण में पुरूष जिस प्रकार धोती पहनते हैं वैसी लुंगी उत्तर भारत में केवल घर के अन्दर ही पहनते हैं, बाहर समाज में नहीं। महाराष्ट्र में स्त्रियाँ जिस ढंग से धोती पहनती हैं, उत्तर प्रदेश में कोई भी स्त्री उस तरह की धोती नहीं पहनती। पंजाबी लड़कियों के सलवार और कुर्ते को केरल की बालिका पसंद नहीं कर सकती। अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोग यूरोपियन ड्रेस पहनते हैं और उन्हीं के परिवार में उनके पिता, चाचा जो गाँवों में रहते हैं, उस ड्रेस से घृणा करते हैं। भाषा की दृष्टि से भी भिन्नता पायी जाती है। भारतीय उप महाद्वीप में अनेक प्रकार की भाषाए बोली जाती हैं। कहीं पंजाबी बोली जाती है तो कहीं असपियां। कहीं के लोग मराठी बोलते हैं तो कहीं पर उड़िया और तमिल भाषाएं बोली जाती हैं। भारतीय संविधान में चौदह (१४) मुख्य भाषाओं की गड़ना की गयी है। इनके अतिरिक्त राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी तथा अंग्रेजी भाषा का भी चलन है।

धर्म एवं सम्प्रदाय की दृष्टि से भी यहाँ भिन्नता पाई जाती है। यहाँ हिन्दू, मुस्लिम, सिख्ख, इसाई, पारसी, आदि धर्मों को मानने वाले मिल जाएंगे। यहाँ के लोगों में आदर्शों मूल्यों एवं मान्यताओं में भी अन्तर पाया जाता है।

इस प्रकार से हम देखते हैं कि भिन्न-भिन्न संस्कृतियों में उनके खान-पान, वेश-भूषा, रीति-रिवाज, भाषा, पहनावा धर्म एवं दर्शन आदि सभी में भिन्नता पाई जाती है। यहाँ तक कि उनके सामाजिक कानून भी भिन्न हैं। हमारी यह सांस्कृतिक भिन्नता हमें एक दूसर के निकट नहीं आने देती है और सांस्कृतिक विरासत के नाम पर राष्ट्रीय एकता की बात भी कोरी कल्पना सी लगती है।

अत: व्यक्ति के लिए किसी वेश-भूषा, रहन-सहन, खान-पान, भाषा आदि से घृणा करना ठीक नहीं है। सही को अपनी वेश-भूषा, रहन-सहन प्रिय होता है। अत: बालक में सभी प्रकार की संस्कृतियों और उपसंस्कृतियों की समझ उत्पन्न की जाए जिससे यह भिन्न मान्यताओं को समझ कर उनकी सराहना कर सके। इससे अन्तर सांस्कृतिक भावना का विकास होता है। अंतर सांस्कृतिक भावना से राष्ट्र सुदृढ़ होगा। इससे अंतर्राष्ट्रीय दृष्टि के विकास में भी सहायता मिलती है। बालक अन्य देशों की संस्कृतियों से भी परिचय प्राप्त करने की इच्छा करता है।

16.7 भावात्मक एकता और शैक्षिक कार्यक्रम :–

शिक्षा एक ऐसा साधन है जिसके प्रयोग से धीरे-धीरे विघटनकारी तत्वों एवं मनोवृत्तियों को समाप्त किया जा सकता है और भावात्मक राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाया जा सकता है। भावात्मक एकता समिति ने भावात्मक एकता के विकास के लिए शिक्षा के महत्व को इन शब्दों में व्यक्त किया है-

"भावात्मक एकता को सुदृढ़ बनाने में शिक्षा महत्वपूर्ण भूमिका कर सकती है। यह अनुभव किया गय है कि शिक्षा का उद्देश्य ज्ञान देना ही नहीं वरन छात्र के व्यक्तित्व के सभी पक्षों का विकास करना है। इसको चाहिए कि छात्रों के दृष्टिकोण को व्यापक बनाए, एकता और राष्ट्रीय तथा त्याग एवं सहिष्णुता की भावना का विकास करे, जिससे कि संकीर्ण दलगत स्वार्थों को विशाल देश हित में समाहित किया जा सके।

16.7.1. भावात्मक एकता समिति द्वारा निर्धारित शैक्षिक कार्यक्रम:–

शिक्षा हमारे विचार और व्यवहार में परिवर्तन करने का मुख्य साधन है। डा० सम्पूर्णानन्द भावात्मक एकता समिति के प्रतिवेदन में भी यह स्वीकार किया गया है कि भावात्मक एवं राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ बनाने में शिक्षा एक बड़ी भूमिका अदा कर सकती

है। इसके लिए भावात्मक एकता समिति ने निम्नलिखित सुझाव दिये हैं-

- विद्यालय तथा कालेजों के पाठ्यक्रमों का निर्माण धर्म निरपेक्ष राज्य की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया जाए।
- पाठ्यक्रम में पाठ्य सहगामी क्रियाओं को स्थान दिया जाए।
- शिक्षा के सब अवसरों पर सामाजिक अध्ययन को महत्ता प्रदान की जाए।
- प्रत्येक विद्यालय में राष्ट्रीय त्याहारों को पूर्ण तैयारी के साथ मनाया जाए।
- प्रत्येक विद्यालय के छात्रों के लिए एक जैसी पोशाक निर्धारित की जाए।
- विद्यालय के छात्रों को राष्ट्रीय गीत गाने का अभ्यास कराया जाए।
- विद्यालय में समय-समय पर देश की एकता, देश-प्रेम पर भाषण कराये जाएं।
- हिन्दी भाषा को लोकप्रिय बनाने के लिए अहिन्दी क्षेत्रों में हिन्दी की पुस्तकों को रोमन लिपि में प्रकाशित किया जाए।
- छात्रों द्वारा वर्ष में दो बार देश-प्रेम, त्याग एवं बलिदान की प्रतीज्ञा करायी जाए।
- एक राज्य के छात्र दूसरे राज्यों में भ्रमण के लिए जाएं।
- प्रत्येक विद्यालय द्वारा छात्रों से वर्ष में चार बार खुले मैदानों में नाटकों का अभिनय कराया जाए।
- विश्वविद्यलयों द्वारा शिक्षकों का आदान-प्रदान किया जाए।
- युवक कार्यक्रमों में सामन्जस्य स्थापित करने के लिए अखिल भारतीय युवक परिषद (All India youth council) की स्थापना की जाए।
- प्राथमिक, मिडिल तथा माध्यमिक विद्यालयों में शिक्षकों का सम्पूर्ण देश में एक ही न्यनतम वेतन निर्धारित किया जाए।
- समस्त छात्रों को राष्ट्रीय झण्डे का आदर एवं सम्मान करना सिखाया जाए।
- समस्त वर्गों, धर्मों तथा जातियों के लोगों को समान राजनैतिक अधिकार प्रदान किये जाएं।
- रेडियो, चलचित्रों, समाचारपत्रों आदि का प्रयोग करके प्रौढ़ों के विचारों तथा व्यवहारों को स्वस्थ दिशाओं में मोड़ा जाए।
- मानव जीवन को प्रेरित करने वाले विभिन्न साधनों का प्रयोग किया जाए जैसे- धर्म, साहित्य, विज्ञान, दर्शन, सामाजिक आदि।

- अच्छी तथा विस्तृत शिक्षा-प्रणाली द्वारा लोगों में वैज्ञानिक दृष्टिकोणों का विकास किया जाए।

16.7.2. कुछ अन्य प्रमुख शैक्षिक कार्यक्रमः–

भावात्मक एकता समिति उपरोक्त सुझाव १९६२ में दिये हैं। तब से आजतक एन०सी० ई०आर०टी० दिल्ली और विभिन्न विश्व विद्यालयों ने 'राष्ट्रीय एकता के विकास में शिक्षा की भूमिका' पर न जाने कितनी गोष्ठियाँ की हैं और कितना शोर मचाया है राष्ट्रीय एकता के लिए शिक्षा में सुधार का, परन्तु अभी तक सबकुछ सतही कार्यवाहियाँ हो रही हैं, बातें अधिक और काम कम। हम इस सब अध्ययन और अपने अनुभव के आधार पर भारत में भावात्मक अध्ययन और अपने अनुभव के आधार पर भारत में भावात्मक एवं राष्ट्रीय एकता में विकास के लिए निम्नलिखित शैक्षिक कार्यक्रम आवश्यक समझते हैं।

- **शिक्षा के उद्देश्य स्पष्ट हों**- आज हमारे देश में सैद्धान्तिक रूप में शिक्षा के अनेक उद्देश्यों को स्वीकार किया गया है। पर हम देख रहे हैं कि हमारी शिक्षा परीक्षा प्रधान है, उसमें बच्चों के स्वास्थ्य, आचरण और भावनाओं की ओर कोई ध्यान नहीं दिया जाता। अतः आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा के उद्देश्य स्पष्ट हों और उसके उद्देश्यों में एक उद्देश्य भावात्मक एवं राष्ट्रीय एकता का विकास भी हो।

- **शिक्षा की पाठ्यचर्या में सुधारः**- विद्यालयों की पाठ्यचर्या में परिवर्तन किया जाए और उसमें समाज सेवा और राष्ट्र सेवा के कार्यों को अनिवार्य किया जाए। राष्ट्रीय पर्व एवं राष्ट्रीय त्यौहारों का मनाना भी इसमें शामिल होना चाहिए। प्राथमिक स्तर की पाठ्यचर्या में लोकगीतों और देश के विभिन्न भागों की कहानियों को विशेष स्थान दिया जाए। इसमें देश के भिन्न-भिन्न भागों का भौगोलिक ज्ञान और वहाँ की सांस्कृतिक झाँकी प्रस्तुत करने वाली सामग्री होनी चाहिए। माध्यमिक स्तर की पाठ्यचर्या में धार्मिक और नैतिक शिक्षा ओर सांस्कृतिक एवं राष्ट्रीय महत्व की सहपाठ्यचारी क्रियाओं को स्थान दिया जाए। इस स्तर पर भारत के औद्योगिक एवं आर्थिक विकास से सम्बन्धित विषयों को भी रखा जाना चाहिए। विश्वविद्यालयी स्तर पर भारत की विभिन्न भाषाओ, धर्मों और संस्कृतियों के तुलनात्मक अध्ययन की व्यवस्था की जाए।

- **शिक्षण विधियों में सुधारः**- शिक्षण विधियों का सम्बन्ध परोक्ष रूप में शिक्षक के छात्रों के साथ व्यवहार से होता है। अतः शिक्षण की उन विधियों का चुनाव

करना चाहिए जिसमें शिक्षक और बच्चे समूह में एक दूसरे के सहयोग से कार्य करें, शिक्षक सभी बच्चों की समान रूप से सहायता करें और सभी बच्चों को अपनी-अपनी योग्यताओं को विकसित करने के समान अवसर मिलें। कक्षा समूह की सामूहिक क्रियाओं में भाग लेने से बच्चों में सामूहिकता की भावना का विकास होगा और वे 'हम' की भावना में बँधेंगे।

- **पाठ्य पुस्तकों में सुधार:-** पाठ्यपुस्तकों में आवश्यक संशोधन किया जाए और उनमें से ऐसी विषय सामग्री निकाल दी जाए जो राष्ट्रीय एकता में बाधक होती है। इन पुस्तकों में राष्ट्रीय एकता में सहायक होने वाली सामग्री का समावेश होना चाहिए। इसके लिए देश की विभिन्न सभ्यता एवं संस्कृतयों से सम्बन्धित विषय सामग्री का चुनाव करना चाहिए।

- **समान व्यवहार:-** शिक्षा के क्षेत्र में जाति, धर्म, सम्प्रदाय और अन्य किसी प्रकार के वर्ग भेद को समाप्त किया जाए विद्यालयों में शिक्षक आदि के चयन और बच्चों के प्रवेश योग्यता के आधार पर हो और छात्रवृत्तियाँ भी योग्यता के आधार पर दी जाएं। अगर विद्यार्थियों के गणवेश में कोई राष्ट्रीय महत्व का चिन्ह विशेष लगवाना अनिवार्य कर दिया जाए तो इससे राष्ट्रीय एकता के विकास में सहायता मिलेगी।

- **दैनिक सामुहिक सभा का कार्यक्रम:-** विद्यालयों का कार्यक्रम १५ मिनट की दैनिक सामूहिक सभा से होना चाहिए। इस समय ईश प्रार्थना और अन्त में राष्ट्रगान होना चाहिए और इन दोनों के बीच के १० मिनट के समय में कभी स्वास्थ्य रक्षा सम्बन्धी नियम बनाए जाएं, कभी सामूहिक स्वास्थ्य निरीक्षण हो, कभी धार्मिक और नैतिक उपदेश दिये जाएं, कभी राष्ट्रीय महत्व के विषयों पर प्रकाश डाला जाए, कभी राष्ट्रध्वज और राष्ट्रगान के सम्मान की शिक्षा दी जाए और कभी राष्ट्रीय एकता और अंतर्राष्ट्रीय भावना की आवश्कता पर बल दिया जाए।

- **सामाजिक धार्मिक और राष्ट्रीय पर्वों को मनाना:-** हमारे विद्यालयों में प्रायः राष्ट्रीय पर्व ही मनाए जाते हैं। सामाजिक एवं धार्मिक पर्वों पर तो अवकाश रहता है। अगर विद्यालयों में ये पर्व भी मनाए जाने लगें और सभी बच्चे उनमें भाग लें तो उनमें धर्म के प्रति उदार भावना जाग्रत होगी, वे 'हम' की भावना से बँधेगें। विद्यालयों में राष्ट्रीय पर्वों २६ जनवरी, १५ अगस्त और २ अक्टूबर को तो बडत्री धूम-धाम और श्रद्धा के साथ मनाना चाहिए।

- **राष्ट्रीय स्तर की भाषाओं का सम्मान और राष्ट्रभाषा हिन्दी का विकास:-** हमारे देश में १५ भाषाओं को राष्ट्रीय महत्व की भाषा स्वीकार किया गया है। इन सब भाषाओं को बोलने वालों की संख्या बहुत है और इनके अपने-अपने समुद्ध साहित्य हैं। इन साहित्यों में भारत की संस्कृति सुरक्षित है। हमें इन सब भाषाओं का सम्मान करना चाहिए, परन्तु राष्ट्र भाषा के विकास पर सबसे अधिक ध्यान देना चाहिए। राष्ट्रभाषा हमें एकता के सूत्र में बाँधती है।

- **नेताओं के जन्म दिन:-** विद्यालय में राष्ट्रीय स्तर के सामाजिक, धार्मिक एवं राष्ट्रीय एवं राष्ट्रीय नेताओं के जन्म दिन मनाने चाहिए। जब पूरे देश के विद्यालयों में भिन्न-भिन्न प्रान्तों में जन्में इन नेताओं के जन्मदिन मनाए जाएंगे, तो छात्र-छात्राओं में राष्ट्रीय एकता का विकास होगा ही।

- **अन्तर्प्रान्तीय खेलकूद:-** विद्यालयी बच्चों की अन्तर्प्रान्तीय खेलकूद प्रतियोगिताए होनी चाहिए। इनके द्वारा बच्चों का सम्पर्क क्षेत्र बढ़ेगा, वे एक-दूसरे से परिचित होगें और उनमें भावात्मक समझ विकसित होगी और उनमें एकपन की भावना का विकास होगा।

- **अन्तर्प्रान्तीय सांस्कृतिक कार्यक्रम:-** अन्तर्प्रान्तीय खेल-कूद प्रतियोगिता के साथ-साथ अन्तर्प्रान्तीय सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन भी किया जाना चाहिए। इन कार्यक्रमों में जब छात्र अपनी-अपनी संस्कृतियों की झाँकी प्रस्तुत करेंगे तो वे एक दूसरे की संस्कृति (लोकगीत और लोकनृत्य आदि) से परिचित होंगे। इसके एक ओर तो उनका मनोरंजन होगा और दूसरी ओर उन्हें देश की सांस्कृतिक झाँकी देखने को मिलेगी। २६ जनवरी को दिल्ली में निकलने वाले जुलूस में वह सब देखने को मिलता है और इन्हें टेलीविजनों पर प्रसारित कर अधिक से अधिक लोगों को देखने का अवसर प्रदान किया जाता है।

- **अन्तर्प्रान्तीय प्रदर्शनियाँ:-** विद्यालयों में अन्तर्प्रान्तीय स्तर पर प्रदर्शनियाँ लगाई जानी चाहिए। इस प्रकार की प्रदर्शनियाँ क्षेत्रीय खेल-कूद प्रतियोगिताओं के अवसर पर लगाई जाए तो एक बार में ही अनेक विद्यालयों के बच्चों को इन्हें देखने का अवसर मिलेगा। इन प्रदर्शनियों में देश की सभ्यता और संस्कृतियों की झाँकी प्रस्तुत करनी चाहिए।

- **रेडिया और टेलीविजनों का प्रयोग:-** रेडियो और टेलीवीजन पर ऐसे शैक्षिक

कार्यक्रम प्रसारित किये जाएं जो राष्ट्रीय एकता और भावात्मक एकता के विकास में सहायक हो, हमें प्रसन्नता है कि हमारे देश में रेडियो और टेलीवीजन पर विभिन्न भाषाओं के पाठ तथा विभिन्न भाषाओं, धर्मों और सभ्यता एवं संस्कृतियों से सम्बन्धित कहानी, नाटक, गीत और कविताएं आदि प्रसारित होते हैं। इससे हमें पूरे देश की झाँकी घर बैठे देखने को मिलती है। आवश्यकता है इन कार्यक्रमों एवं विद्यालयों के कार्यक्रमों में ताल-मेल बैठाने की।

- **राष्ट्र की विभिन्नताओं का आदर:-** हमें बच्चों में देश की विभिन्न जातियों, धर्मों और संस्कृतियों के प्रति प्रेम उत्पन्न करना चाहिए। उस स्थिति में विघटन के लिए अवसर नहीं मिलेगा। परन्तु हम अन्धी श्रद्धा एवं अंधी राष्ट्रीयता के विकास का समर्थन नहीं कर सकते। हम चाहते हैं कि हमारे देश के नागरिक देश की बुराईयों के प्रति सजग हों और उन्हें दूर करने का प्रयत्न करें। सच्ची राष्ट्रीयता एवं भावात्मक एकता इस बात की माँग करती है।

- **राष्ट्रीय स्तर पर शिक्षकों का आदान-प्रदान:-** शिक्षकों का राष्ट्रीय स्तर पर आदान-प्रदान होना चाहिए। जब भिन्न-भिन्न भाषा-भाषी और भिन्न-भिन्न जाति, धर्म, सम्प्रदायों के शिक्षक एक स्थान से दूसरे स्थान के विद्यालयों में जाएंगे तो इनके माध्यम से सांस्कृतिक उदारता का विकास होगा और राष्ट्रीय एकता के विकास में सहायता मिलेगी।

- **राष्ट्रीय स्तर पर छात्रों के अध्ययन की व्यवस्था:-** पूरे देश में शिक्षा का स्तर समान होना चाहिए और एक प्रान्त के बच्चों को दूसरे प्रान्तों में अध्ययन करने की सुविधा प्रदान की जानी चाहिए विश्वविद्यालयी स्तर पर यह सुविधा विशेष रूप से दी जानी चाहिए। इससे अन्तर्सांस्कृतिक भावना का विकास होगा और राष्ट्रीय एकता के विकास में सहायता मिलेगी।

- **देश भ्रमण:-** शिक्षक एवं छात्रों को देश के विभिन्न भागों, विशेषकर ऐतिहासिक सांस्कृतिक, औद्योगिक और राष्ट्रीय महत्व के स्थानों का भ्रमण करने के अवसर देने चाहिए। इससे उन्हें अपने देश की विशालता और राष्ट्र के भिन्न-भिन्न संस्कृतियों का ज्ञान होगा, वे एक-दूसरे को समझेंगे और उनमें एकपन की भावना का विकास होगा।

बोध प्रश्नः-

टिप्पणी-

i. नीचे की जगह आपके उत्तरों के लिए है।

ii. अपने उत्तरों की जाँच इकाई के अंत में दिये गये उत्तरों से करें।

प्रश्न ४- भावात्मक एकता समिति के किन्हीं दों सुझावों को बताइए।

उत्तर .....

.....

प्रश्न ५- भावात्मक एकता के विकास में शिक्षा के किन्हीं चार प्रमुख कार्यों को लिखिए।

उत्तर .....

.....

16.8. सारांशः-

किसी भी देश के एकीकरण का आधार निवासियों की भावात्मक एकता है। यदि देश की जनता आपस में अपने को एक संवेगात्मक सूत्र में बंधा हुआ न अनुभव करे, तो लाखों प्रयासों के होते हुए भी राष्ट्रीय एकीकरण सम्भव नहीं। राष्ट्र की एकता, उसके अस्तित्व एवं सुरक्षा के लिए भावात्मक एकता का विकास आवश्यक है। भावात्मक एकता की भावना का यह विकास विभिन्न चरणों से होकर गुजरता है जिसें हम भावात्मक एकता के स्तर कहते हैं। इन्हीं स्तरों में भावात्मकता अपने चरम विकास पर पहुँच जाती है।

भावात्मक एकता के विकास के लिए एक सबसे प्रमुख अनिवार्य तत्व है- अन्तर सांस्कृतिक भावना का होना। अंतर सांस्कृतिक-भावना के विकास द्वारा विभिन्न संस्कृतियों के लोग भावात्मक रूप से जुड़ जाते हैं और उनके मध्य भावात्मक एकता का विकास हो जाता है।

भावात्मक एकता के विकास में शिक्षा बड़ी महती भूमिका अदा करती है। डा० सम्पूर्णानन्द ने भावात्मक एकता समिति के संदर्भ में शिक्षा महत्व की व्याख्या की है। शिक्षा के उचित पाठ्यक्रम, सहगामी क्रियाओं, और योग्य शिक्षकों की भूमिका, राष्ट्र की भावात्मक एकता के विकास में अति महत्वपूर्ण होती है।

16.9. अभ्यास कार्यः–

निम्न प्रश्नों के उत्तर लिखोः-

१. भावात्मक एकता के आप क्या समझतें हैं?

२. वर्तमान समय में भावात्मक एकता की आवश्यकता क्यों है?

३. अन्तर सांस्कृतिक भावना से आप क्या समझते हैं?

- रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिएः-

१. भावात्मक एकता का विकास.....स्तरों में होता है।

२. शिक्षा के उद्देश्य .....होने चाहिए।

16.10. बोध प्रश्नों के उत्तरः–

१. भावात्मक एकता में कोई सीमा निर्धारित नहीं होती है। सम्पूर्ण संसार के व्यक्ति इसकी परिधि में आ जाते हैं जबकि राष्ट्रीय एकता का क्षेत्र सीमित होता है जिसमें कि किसी राष्ट्र या देश के व्यक्ति भावात्मक रूप से जुड़े होते हैं।

२. भावात्मक एकता की आवश्यकता के निम्न कारण हैं–

क. राष्ट्र के अस्तित्व के लिए

ख. विघटनकारी तत्वों के उन्मूलन के लिए

३. भावात्मक एकता का विकास चार चरणों में होता है।

४. भावात्मक एकता समिति के प्रमुख सुझाव इस प्रकार हैं–

क. पाठ्यक्रम में पाठ्यसहगामी क्रियाओं को स्थान दिया जाए।

ख. शिक्षा के सभी स्तरों पर सामाजिक अध्ययन को महत्ता प्रदान की जाए।

13.10. कुछ उपयोगी पुस्तकेंः–

- Foundation of Education by Sharyu Prshad Chawbey/Dr. Akhilesh Chawbey
- Ram Bihari Lal- Philosophical and Sociological Principles of Education
- Ram Shakal Pandey- Shiksha Ke Mool Siddhant